ओ३म्

हिन्दू शतकम्

हिन्दू कौन है और हिन्दू धर्म क्या है
मूल वैदिक–सनातन सिद्धांतों का विवेचन

आँग्ल भाषा मूल लेखक
दीनबन्धु चन्दोरा

हिन्दी अनुवादक मण्डल
डॉ० नरेश चन्द्र वाचस्पति,
बद्रीप्रसाद आर्य
वीरेन्द्र सिंह

गोविन्दराम हासानन्द



श्री आदित्य चन्दोरा

मार्च 18, 1969 - सितम्बर 5, 2002

समर्पण

इस पुस्तक की नींव रखनेवाले स्व॰ आदित्य चन्दोरा के प्रेरणादायी एवं परोपकारी जीवन को यह कृति समर्पित है। **'चरैवेति चरैवेति'– 'निरन्तर कर्म करते रहो'** के सन्देश को जीवन में चरितार्थ करनेवाले स्वनामधन्य स्वर्गीय आदित्य चन्दोरा, अपनी पाँचवीं सिनेमा–फिल्म की एडिटिंग करने हेतु न्यूयार्क से भारत के आधुनिकतम टेक्नॉलोजी वाले हैदराबाद–स्थित रमण नायडू स्टुडियो गए थे। कुछ समय निकालकर वहाँ से पितामह से मिलने जोधपुर चले गए। जोधपुर में मोटर साइकिल से आकस्मिक दुर्घटना के कारण बेहोश होने पर, एयर ऐम्बुलेन्स द्वारा तुरंत दिल्ली ले–जाए गए। दिल्ली के 'अपोलो अस्पताल' में अपने हृदय, यकृत, चक्षु, गुर्दे इत्यादि अंगों का दान कर, तैंतीस वर्ष की अल्प आयु में अपने प्राणों की दिव्य ज्योति से अनेक परिवार- जनों में जीवन–ज्योति ज्वलंत कर, उन्होंने 5 सितम्बर 2002 को परम गति प्राप्त की।

यह रचना सुपुत्र स्व॰ आदित्य चन्दोरा के स्वार्थहीन सामाजिक कार्यों की एक झलक है।

सुपुत्र के वियोग से माता सावित्री, बहन मुक्ता, भाई आलोक, पिता दीनबन्धु तथा समस्त चन्दोरा-परिवार के अति कष्टमय शोकातुर जीवन होने के उपरांत भी इस पुस्तक के हिन्दी–अनुवाद को पुनः संशोधित कर आपको प्रस्तुत कर रहे हैं, ताकि हिन्दू धर्म के शुद्ध स्वरूप का सुगमता से बोध हो सके। इस कृति में सबसे अधिक योगदान माता सावित्री का रहा है, जिन्होंने दुःखमय जीवन को झेलते हुए पुस्तक पूर्ण करने में अमूल्य सहायता की है।

यह रचना उन सभी धर्मप्रेमी महानुभावों को समर्पित है जो वेदों में निहित सत्य को हृदयंगम कर, मानव–कल्याण हेतु, आगे आनेवाली पीढ़ियों के लिए संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार करने को इच्छुक हैं।

दीनबन्धु चन्दोरा, एम॰डी॰, मार्च 18, 2005

आभार प्रदर्शन

डॉ॰ शशि तिवारी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; डॉ॰ रवि प्रकाश आर्य, दिल्ली; बार्बरा जोन्स ग्लेज, डॉ॰ ऑफ एजुकेशन, डाल्टन; मुक्ता, आलोक तथा सावित्री चन्दोरा; डॉ॰ विजय अरोड़ा तथा डॉ॰ ओम अरोड़ा, प्रो॰ भूदेव शर्मा, क्लार्क विश्वविद्यालय; डॉ॰ मधुसूदन चन्दोरा, एटलांटा, जार्जिया; प्रो॰ राजेन्द्र सिंह, क्लेमसन विश्वविद्यालय, साउथ केरोलिना, अमेरिका; श्री अमर ऐरी, टोरंटो, कनाडा; भारत-स्थित रामकृष्णन् मिशन, केरल के संन्यासी, स्वामी ज्योतिर्मयानंद, प्रसिद्ध पुस्तक *'विवेकानंद ए कॉम्प्रीहैन्सिव स्टडी'* के लेखक, तथा श्री रोमेश वडेरा, राजस्थान, भारत; डॉ॰ हरीश्चन्द्र, हैदराबाद, भारत—इन सभी के प्रति मैं उनके अमूल्य योगदान के लिए आभारी हूँ।

श्री चरणजीत सिंह, राष्ट्रीय सिख संगत, भारत और श्री शमशेर सिंह पुरी, एटलांटा, जार्जिया, यू॰एस॰ए॰ द्वारा गुरु गोविन्दसिंह जी के उपयुक्त संदर्भ प्राप्त कराने, श्री विजय पराशर द्वारा बाली मन्दिर का पुन: चित्रण-कार्य करने, श्री श्याम तिवारी का इंटरनेट एक्सप्लोरर द्वारा नवीनतम आनुसंधानिक आंकड़े प्राप्त कराने के लिए धन्यवाद। डॉ॰ शजीहा मुहान्ना ने प्रो॰ अलबटल, अरेबिक स्टडीज, एमरी यूनीवर्सिटी, एटलांटा, जार्जिया, अमेरिका, द्वारा अनूदित दुर्लभ अरबी पुस्तक *'निसान अल अरब'* को उपलब्ध करवाने में विशेष योगदान किया। मैं वास्तव में डॉ॰ मुहान्ना के 'हिन्दू' शब्द के अरबी अर्थ के मूल को ज्ञात करने के लिए किए गए गहन प्रयासों के प्रति विशेष कृतज्ञ हूँ। जून 1999 में अपनी एटलांटा-यात्रा के दौरान विश्वदीप माधव आश्रम, जाडन, राजस्थान, भारत के अस्सी-वर्षीय

श्री माधवानंद ने राजा भर्तृहरि की वंशगाथा की पुनर्व्याख्या की, इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ। अन्तर्राष्ट्रीय पथिक, श्री वसुव्रज, जिनके जीवन का उद्देश्य सम्पूर्ण संसार में संस्कृत-ज्ञान का प्रचार-प्रचार करना है, एटलांटा पधारे थे तथा वैदिक धर्म के विषय में बहुत आवश्यक और प्रामाणिक सन्दर्भ स्रोत प्रदान किए। श्री वी॰डी॰ कोटिके, डॉ॰ मिहिर लाल तथा श्री विश्रुत आर्य की सहायता के लिए मैं इनका आभारी हूँ तथा जिनका भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष इस कृति को परिणाम तक पहुँचाने में सहयोग रहा है, उन सबके प्रति कृतज्ञ हूँ।

मैं सभी स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं के प्रति उनके सम्पादकीय और परीक्षण द्वारा दिए गए महत्त्वपूर्ण सुझावों की प्रशंसा करता हूँ। श्रीमती लेसलि खन्ना और श्री विनोद शर्मा एटलांटा, जार्जिया, अमेरिका, तथा जोधपुर, राजस्थान के श्री मोहन लाल शर्मा को उनके कला-कार्य और श्री धीरूशाह को उनके सम्पादकीय योगदान के लिए विशेष धन्यवाद देना चाहूँगा। मैं श्री '*अजय कुमार, विजय कुमार गोविन्दराम हासानंद, प्रकाशक*', 4408 नई सड़क, दिल्ली, भारत के प्रति '*हिन्दू शतकम्*' के प्रकाशन के लिए विशेष कृतज्ञ हूँ।

हिन्दू धर्म के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए पाठक इस पुस्तक के अन्त में दी गई स्रोत-सूची की सहायता ले सकते हैं। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि इस रचना द्वारा लोगों को धर्म के वास्तविक स्वरूप एवं अर्थ की जानकारी मिले जिससे उग्रवाद से सन्तप्त इस विश्व में सुख, समृद्धि, शांति व समरसता और मानवता का कल्याण हो सके।

सहायक हिन्दी अनुवादकगण डॉ॰ नरेश चन्द्र वाचस्पति, बद्री प्रसाद आर्य तथा वीरेन्द्र सिंह; हिन्दी सम्पादकीय परामर्शदाता श्री सत्यानन्द शास्त्री, न्यूयार्क; पंडित सत्यप्रकाश बीगू, मॉरिशस; तथा डॉ॰ महेन्द्र पाल शेखावत, पिलानी, राजस्थान; डॉ॰ रवि प्रकाश

आर्य, दिल्ली; डॉ॰ शशि तिवारी, मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली; श्री वागीश आचार्य, श्री रूपचन्द दीपक तथा डॉ॰ सुशीला कमलेश, डॉ॰ हरीश्चन्द्र, हैदराबाद, भारत के अथक परिश्रम के कारण ही मूल अंग्रेजी भाषा का यह शुद्ध रूपान्तरण, पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा सका। श्रीमती कुसुम लता शर्मा, एटलांटा, जार्जिया, यू॰एस॰ए॰ के परोपकार-भाव से किए गए पारखीय प्रयास के लिए परमात्मा उन्हें स्वस्थ तथा समृद्ध करे। इन सभी के अनोखे सहयोग और समर्पण-भाव के लिए मैं अपने अन्तःकरण से कृतज्ञ हूँ।

मार्च 18, 2005 **दीनबन्धु चन्दोरा, एम॰डी॰**

प्राक्कथन

धर्म शब्द का अर्थ बहुत गहन है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पदार्थ का अपना एक स्वाभाविक धर्म होता है। मनुष्यों को अपने स्वाभाविक दायित्वों व कर्तव्यों का बोध करानेवाला धर्म ही है। सभी मनुष्यों का समाज के प्रति एवं स्वयं के प्रति एक विशेष दायित्व है--यही मानव-धर्म है। स्वाभाविक मानवधर्म का बोध केवल हिन्दू धर्म ही करा सकता है। मनुष्य को अपने स्वाभाविक दायित्वों को समझने के लिए प्रयास अथवा पुरुषार्थ की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति को प्राकृतिक सिद्धान्तों अथवा धर्म की जानकारी प्राप्त हो—इस उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की गई है। हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझने में यह रचना बहुत उपयोगी होगी। जो व्यक्ति, अभिभावक, संस्था अथवा विभिन्न समूह, हिन्दू दर्शन, परम्पराओं और मान्यताओं को सही रूप से समझना चाहते हैं, उनके लिए यह कृति बहुत लाभदायक सिद्ध होगी।

प्रो॰ भूदेव शर्मा

अध्यक्ष, वर्ल्ड एसोसिएशन फॉर वैदिक स्टडीज;

अध्यक्ष, हिन्दू एजुकेशनल एण्ड रिलिजिअस सोसायटी ऑफ अमेरिका:

प्रो॰ गणित विभाग क्लर्क यूनिवर्सिटी, एटलांटा, जार्जिया, यू॰एस॰ए॰।

पुरोवाक्

हिन्दू–शतकम् को मैंने आद्योपान्त पढ़ा। मुझे यह लिखते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है कि प्रस्तुत पुस्तक हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की यथार्थ व्याख्या करनेवाला लघुकाय प्रामाणिक कोष है। यह ग्रन्थ हिन्दू धर्म के विषय में गवेषणा का नया भाव उत्पन्न कर देता है। ग्रन्थ में दिए गए उदाहरण, आर्ष प्रमाण एवं उद्धरण इसकी प्रामाणिकता को बढ़ा देते हैं। इस ग्रन्थ में हिन्दू धर्म एवं संस्कृति से सम्बन्धित मौलिक पहलुओं की समीचीन व्याख्या की गई है। पाठकवृन्द 'हिन्दू शतकम्' को पढ़कर लाभान्वित ही नहीं अपितु महान् हिन्दू संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर अपने–आपको गौरवान्वित अनुभव करेगा। धर्म की परिभाषा से लेकर हिन्दू धर्म के परिप्रेक्ष्य में धर्म के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालनेवाली यह पुस्तक अपने–आप में अद्भुत कृति है। प्रत्येक हिन्दू धर्मावलम्बी तथा हिन्दू धर्म में जिज्ञासा रखनेवाले व्यक्ति को 'हिन्दू–शतकम्' को अपने निजी पुस्तकालय का अंग बनाना चाहिए।

डॉ॰ रविप्रकाश आर्य

प्रधान सम्पादक : इण्डियन फाउँडेशन फॉर वैदिक साइँस

दिल्ली, भारत।

vedicscience@rediffmail.com

www.vedascience.com

यथार्थ कथन

हिन्दू धर्म अत्यन्त प्राचीन है। इसे शाश्वत रूप का वरदान मिला है। **'न ममार न जीर्यति'**–'यह न कभी मरता है और न ही जीर्ण–शीर्ण होता है'। 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन दौरे–ज़माँ हमारा।' यह आत्मानुभूति इसके लम्बे संघर्षमय अतीत की याद दिलाती है।

हिन्दू धर्म **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** का पाठ पढ़ाता है; प्रातः–सायं **'भद्रं वद........पुण्यं वद'**–प्रभु से भद्र भावनाओं और पुण्य प्रेरणाओं की याचना का जाप करता है; पर्यावरण की रक्षार्थ 'शांतिः शांतिः शांतिः' का पक्षपाती है; प्राणिमात्र को अहिंसा का उपदेश देता है; मानव मात्र को सहिष्णु होने की प्रेरणा देता है; समता, समरसता, सर्वमंगल–कारिणी विचारधारा के प्रचार–प्रसार के लिए ही 'हिन्दू–शतकम्' की रचना की गई है।

'हिन्दू–शतकम्' सशक्त, सर्वशंकानिवारण करनेवाली उत्कृष्ट रचना है। मैं डॉ॰ दीनबन्धु चन्दोरा को इस सराहनीय प्रयत्न के लिए भूरि–भूरि साधुवाद कहता हूँ।

सत्यानन्द शास्त्री,

न्यू हायड पार्क, न्यूयार्क 11040,

यू॰एस॰ए॰,

मार्च 2004

प्रस्तावना

'हिन्दू-शतकम्' हिन्दू धर्म पर सौ मूलभूत प्रश्नों के विषय में है। जो शिक्षित व्यक्ति हिन्दू धर्म पर वर्तमान में प्रासंगिक सामान्य ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए इसमें सारगर्भित और प्रामाणिक उत्तर दिए गए हैं। इस कृति में हिन्दू धर्म के वास्तविक सिद्धान्त, धारणाएँ, आधारभूत और अन्य सम्बन्धित जानकारियाँ उपलब्ध हैं। प्रश्न सरल और संक्षिप्त हैं तथा उत्तर भी उतने ही प्रभावी और स्पष्ट हैं। लेखक ने ग्रन्थ-निर्माण में सुविस्तृत तथा गहन अध्ययन एवं मनन-मन्थन किया है—यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

'हिन्दू-शतकम्' में मूलभूत धार्मिक ग्रन्थों, अन्य सहायक धार्मिक ग्रन्थों, समालोचन-ग्रन्थों, वेदांगों, दर्शनों और उपनिषदों के बारे में बताया गया है। लेखक स्मृति, नीति-शास्त्र, ऐतिहासिक महाकाव्य और हिन्दू धर्म में दी गई पराभौतिक धारणाओं पर व्याख्या प्रस्तुत करता है। पृथिवी की आयु और पुरातन इतिहास पर उपलब्ध कराए गए आंकड़े तथ्यपरक हैं।

रोमेश वडेरा,
अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षाविद्,
चितौड़गढ़, राजस्थान, भारत

भूमिका : अध्ययन-निर्देश

शतकम् एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है एक सौ। संस्कृत सभी आधुनिक इण्डो-यूरोपियन भाषाओं की जननी है। अंग्रेजी और लैटिन भाषा का उद्भव संस्कृत से हुआ है। सभी वैदिक सनातन हिन्दू धर्म-ग्रंथ संस्कृत भाषा में ही हैं।

वैदिक-सनातन-हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को स्पष्ट एवं प्रामाणिक बनाने के लिए मूल धार्मिक संस्कृत-ग्रन्थों के उद्धरण देकर उनका सरल अर्थ भी साथ में दिया गया है। इसके लिए लेखक और सम्पादक-मण्डल ने विशेष प्रयास किया है।

लेखक निष्ठापूर्वक आशा करता है कि पाठक इस पुस्तक को खुले दिमाग से पढ़ेंगे। यह पुस्तक विशेष रूप से हिन्दू धर्म के विषय में सभी संशयों को दूर करने के लिए लिखी गई है।

पाठकों को चाहिए कि वे प्रश्न-1 से आरम्भ कर क्रमशः 100 तक पढ़ें। इससे वैदिक हिन्दू-सनातन धर्म के सिद्धान्तों को मूलभूत विशुद्ध रूप में समझने में सरलता होगी।

धन्यवाद,

सम्पादक मण्डल

विषय-सूची

1

हिन्दू धर्म सम्बन्धित प्रश्नोत्तरी

एक सौ प्रश्न और उत्तर

प्रश्न–1. धर्म क्या है ?

उत्तर : माता-पिता, कुटुम्ब तथा सम्पूर्ण मानवता के प्रति स्वयं का स्वाभाविक तथा स्वार्थ–हीन कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व धर्म कहलाता है। **प्राचीन संस्कृत शब्द 'धर्म' का अंग्रेजी भाषा में कोई शुद्ध अनुवाद नहीं है, जो 'धर्म' के अर्थ को पूर्णतः प्रकट कर सके।** धर्म का स्रोत ईश्वरीय है जो कि प्रकृति के शाश्वत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। 'धर्म' का आध्यात्मिक और दार्शनिक अर्थ निम्न प्रकार से महाभारत में है :

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यत्स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

—महाभारत 12-31-9

'धारण करना ही धर्म है। धर्म से प्रजा टिकी रहती है। जो धारण से युक्त है, वह धर्म है। धर्म वह है जो सभी प्राणियों, परिवार, समाज, राष्ट्र, प्रकृति और ब्रह्माण्ड को सजीव, सुरक्षित और समायोजित करता है।'

मैंने इण्डोनेशिया-भ्रमण के समय इण्डोनेशिया की राजधानी जकार्ता में बहुत-से अंग्रेजी विज्ञापन-बोर्डों पर 'धर्मो वनिता' लिखा देखा। उत्सुकतावश मैंने टैक्सी-चालक से इसका अर्थ पूछा। टैक्सी-चालक ने उत्तर दिया—"धर्म का अर्थ है दूसरों की मदद करना और वनिता का अर्थ है—'औरत'। यह केवल सरकारी विभाग के विज्ञापन का एक साइन-बोर्ड है जो कि महिलाओं की सहायता

करता है, इसे आप महिला-कल्याण भी कह सकते हैं।" मैंने उससे पूछा-"आपका क्या धर्म है?" उसने उत्तर दिया "मुस्लिम।" इस इण्डोनेशियन मुस्लिम टैक्सी-चालक के अनुसार उसका निजी धर्म 'मुस्लिम' है, लेकिन उसके लिए धर्म शब्द का अर्थ है-'वह कर्तव्य जिसके द्वारा दूसरों की सहायता होती है।'

व्यक्तिगत तौर पर जो दूसरों की निःस्वार्थ सेवा करता है, उसे धर्म-कार्य समझा जाता है।

कणाद ऋषि ने वैशेषिक दर्शन में धर्म का वर्णन निम्न प्रकार से किया है :

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः॥ वैशेषिक दर्शन 1.2

'धर्म वह उत्तम व्यवहार है, जिससे सार्वभौम अर्थात् भौतिक, सामाजिक, और आत्मिक उन्नति के साथ-साथ यश एवं सफलता की प्राप्ति हो।'

धर्म शब्द संस्कृत धातु धृ से बना है, जिसका अर्थ है 'धारण करना'। उदाहरणार्थ सूर्य का धर्म प्रकाश देना है। पृथिवी का धर्म सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाना है। इसी तरह जो कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त कहे गए नैसर्गिक कर्तव्यों को दैनिक जीवन में निभाता है तो यह कह सकते हैं कि उसने 'धर्म'-कार्य आरम्भ कर दिया है, जैसे-'पढ़े-लिखे समझदार व्यक्ति का धर्म दूसरों को सही मार्ग-निर्देशन करना है।'

मनु ने धर्म के 10 लक्षण इस प्रकार बताए हैं :

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ मनु 6-92

'**धृति**-धैर्य रखना, **क्षमा**-माफ करना, **दम**-मन को काबू में करना, **अस्तेय**-छल-कपट, विश्वासघात अथवा चोरी से पर-वस्तु प्राप्त न करना, **शौच**-शरीर एवं मन को साफ रखना अथवा बाह्य एवं आंतरिक स्वच्छता अर्थात् पवित्रता बनाए रखना, **इन्द्रिय-निग्रह**-भावुकता अथवा अनैतिक कार्यों से दूर रहकर इन्द्रियों

को अनुशासन में रखना, **धीः**—सत्यवादी विद्वानों एवं उत्तम पुरुषों के संग से बुद्धि बढ़ाना, **विद्या**—यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना, **सत्य**—वाणी, कर्म, मन और आचार से सच्चा उचित आचरण करना, **अक्रोध**—सबसे शान्त, स्नेह और प्रेम से व्यवहार करना। जो व्यक्ति उपर्युक्त 10 गुणों को धारण करता है, वह धार्मिक है।

दसवें सिक्ख गुरु श्री गोविन्दसिंह जी ने उग्रदन्ती छके छन्द-वाणी वर्णन के अन्तर्गत 'चांदी की वार' में कहा है :

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे,
जगे धर्म हिन्दू सकल भांड भाजे।

छके छंद 39

पूरे विश्व में हिन्दू धर्म के उत्थान, जागरण के लिए ख़ालसा पंथ, अथवा सत्य धर्म का आचरण सर्वव्यापक हो, ताकि पाखण्ड, अंधविश्वास, अन्याय, अज्ञान को दूर किया जा सके। गुरु गोविन्द सिंह ने आगे सवैया छके छंद 40 में कहा :

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे,
जागे धर्म हिन्दुका तुर्क डन्डे भाजे।

उग्रदंती सवैया छके छंद 1, पंक्ति 40

उपर्युक्त छंद में 'हिन्दुका' शब्द प्रवचन में था, उससे पता चलता है कि उस समाज में 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग होता था।

निष्कर्ष—*प्राकृतिक सिद्धांतों को जीवन में अपनाकर उत्तम जीवन-यापन करना ही धर्म है।*

प्रश्न-2. रिलिजन क्या है ?

उत्तर : विभिन्न समुदायों ने अपने विचारों एवं सुविधा हेतु 'मत-मतान्तर' अर्थात् 'रिलिजन' का निर्माण किया और अपनाया। 'धर्म' शब्द अंग्रेजी भाषा में नहीं है। अगर 'धर्म' शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद करने की कोशिश करें तो उसके समानान्तर अंग्रेजी का शब्द केवल 'रिलिजन' ही मिल पाता है। 'रिलिजन' को साधारण तौर पर 'मजहब' भी कह सकते हैं। 'रिलिजन' व्यक्ति

को केवल एक प्रकार का जीवन जीने का निर्देश देता है। कोई भी व्यक्ति उस रास्ते से अलग होने का साहस कभी भी नहीं कर सकता। उसे डराने-धमकाने हेतु 'रिलिजन' में मनघड़न्त भयंकर सजाएँ लिखी हैं, जिनसे डरकर कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र विचार-धारा से कभी भी सोच नहीं सकता।

मनुष्यों ने अपनी सुविधानुसार 'मत-मतांतरों' अर्थात् 'रिलिजन' और 'मजहब' को बनाया, जबकि 'धर्म' शब्द प्राकृतिक सिद्धान्तों, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को प्रकट करता है, और मनुष्यों को स्वतंत्र सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सर्वहितकारिणी विचारधारा प्रदान करता है।

प्रश्न-3. 'हिन्दू' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर : यथार्थ में 'हिन्दू' शब्द की उत्पत्ति आज भी अज्ञात है। 'हिन्दू' शब्द हिन्दुओं के किसी भी प्राचीन धर्म-ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। 'हिन्दू' शब्द पर अनेक टिप्पणियाँ निम्न प्रकार से हैं :

1. विद्वानों का कहना है कि हिन्दू शब्द दो भिन्न-भिन्न शब्दों से उत्पन्न हुआ है। पहला शब्द है 'हिमालय' और दूसरा शब्द है 'सिन्धु'। हिमालय विश्व की सर्वाधिक 5.5 मील ऊँची और 15,000 मील लम्बी पर्वत-शृंखला है। यह भारत के उत्तर-पूर्वी, उत्तरी तथा उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र की सीमा निश्चित करती है। 'सिन्धु' का अर्थ समुद्र है और समुद्र भारत की अधिकतर दक्षिणी सीमा की तरफ संकेत करता है। हिमालय शब्द से 'हि' और 'सिन्धु' शब्द से 'इन्दू' के मिश्रण से एक नये शब्द 'हिन्दू' का जन्म हुआ है। हिमालय से लेकर भारतीय महासागर अथवा हिन्द महासागर तक फैले क्षेत्र में रहनेवाले लोग 'हिन्दू' कहलाए, इस प्रकार से 'हिन्दू' शब्द स्वदेशी ढंग से उत्पन्न हुआ है।

2. अन्य विद्वानों के अनुसार 'हिन्दू' शब्द की उत्पत्ति सिन्धु शब्द से हुई है। उनके अनुसार 'हिन्दू' शब्द सिन्धु का अपभ्रंश

है। सिन्धु प्राचीन भारत की सबसे लम्बी नदी का भी नाम है, जो हिमालय से आरम्भ होकर भारत के पश्चिमी सागर तक बहती है। प्राचीन काल में हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला, हिमालय की पर्वत-शृंखला तथा बृहद् भारत की पश्चिमी सीमाओं से परे अन्य देशों को जाने के लिए सिन्धु नदी को पार करना होता था। यात्रियों को प्राय: अति आनन्द अथवा महान् कष्टदायक रुकावटें याद रहती हैं। चूँकि हिन्दूकुश पर्वतों की शृंखला, भारत की पश्चिमी दिशा से बाहर जानेवाले यात्रियों के लिए एक विशेष अड़चन थी, अत: उन्हें हिन्दूकुश पर्वत से 'हिन्दू' शब्द अच्छी तरह याद रहने लगा। पश्चिम के देशों में सिन्धु अथवा इन्दु घाटी के 'हिन्दू' लोग व्यापार, आनन्द और समृद्धि के लिए जाने जाते रहे। मुख्यत: पश्चिम के देश पर्सिया (फारस), ग्रीस (यूनान), मध्य एशिया अथवा यूरोप थे जहाँ सिन्धु नदी और हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला के लोगों को यात्री अपनी भाषा के अनुसार हिन्द, इन्द, इन्तू अथवा इन्दू आदि शब्दों से सम्बोधित करते रहे।

अत: हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला के निवासियों तथा सिन्धु घाटी के लोगों को विदेशी यात्री 'हिन्दू' नाम से पुकारने लगे। इसी प्रकार यूरोप और एशिया के मध्य स्थित कॉकेसस (Caucasus) पर्वत-शृंखला के लोगों को कॉकेसियन (Caucasian) कहने लगे। 'कॉकेसियन' शब्द कालान्तर में श्वेत लोगों के लिए प्रयोग होने लगा।

3. 'हिन्दू' शब्द 800 ई॰ के आरम्भ में प्रकाशित अरब लोगों का पवित्र शब्दकोष- पुस्तक **'लिसान अल अरब'** में 'हिन्दुका' के नाम से है, जहाँ 'हिंन्दुका' का अर्थ है भारत के लोग।

अक्षर-विज्ञान के अनुसार अगर अन्य भाषाओं के शब्दों की उत्पत्ति पर खोज की जाए तो यह सिद्ध होता है कि वैदिक संस्कृत विश्व की सभी भाषाओं जैसे आर्ष, हेमिटिक, सेमिटिक, और तुरानी भाषाओं की जननी है। आर्ष भाषा में वैदिक संस्कृत के पश्चात्

दूसरा स्थान जन्दावस्था—पारसियों के प्राचीन साहित्य का आता है। जन्द भाषा और आधुनिक फारसी, वैदिक संस्कृत की ही एक अपभ्रंश शाखा है। अनेक स्थानों पर संस्कृत का 'स' जन्द और आधुनिक फारसी में 'ह' हो गया है, उदाहरणतया :

संस्कृत भाषा	**जन्द भाषा/आधुनिक फारसी**
असुर	अहुर
सोम	होम
सप्त	हप्त
सेना	हेना

संस्कृत भाषा	**हेमिटिक भाषा/प्राचीन मिश्र की भाषा**
श्वेत	हूत (संस्कृत भाषा में 'व' के स्थान पर 'उ' होने को सम्प्रसारण कहा जाता है)

संस्कृत भाषा	**सेमिटिक भाषा/अरबी भाषा**
सुर	हूर
सिंह	हैसिम
सरकत (सृ)	हरकत

संस्कृत भाषा	**यूनानी भाषा/ग्रीक भाषा**	**English meaning**
सप्त	हप्त hepta	seven
सामि (अर्ध)	hemi	half
सशूर	heros	hero
षष्ट (षट्)	hex	six
सुरुकुलेश	Hercules	Hercules

भारत-भू पर पिछली कुछ शताब्दियों में अरबी, फारसी और यूनानी (ग्रीक) लोगों का बहुत प्रभाव रहा है। अत: 'सिन्धु' शब्द

का अपभ्रंश शब्द 'हिन्दू' अथवा 'हिन्दुका' होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

4. दसवें सिक्ख गुरु श्री गोविन्दसिंह ने दशम ग्रन्थ में भी 'हिन्दुका' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ हिन्दुओं से है।

5. मध्यकाल में 'हिन्दुका' शब्द का प्रचलन था। ब्रिटिश काल में 'हिन्दू' शब्द 'इन्डो' के नाम से प्रयोग में आया। इस प्रकार ब्रिटिश शब्द 'इन्डो' आधुनिक काल में 'हिन्दू' शब्द के लिए प्रचलित हुआ।

6. 'हिन्दू' शब्द का अर्थ कुछ लोग ऐसा भी लगाते हैं जो 'हि' अर्थात् हिंसा 'न्दु' अथवा जो न करे, अत: हिंसा न करने वाले, सार्वभौम प्रेम से जुड़े शान्तिप्रिय हिंसा-रहित लोग 'हिन्दू' कहलाए।

प्राचीन काल में हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला के निवासियों को अरेबियन, परशियन, ग्रीक अथवा यूनानी और विदेशी' लोगों ने 'हिन्दुका' अर्थात् 'हिन्दू' कहा। हिन्दूकुश पर्वत-शृंखला से जुड़े हिमालय पर्वत-माला की भूमि को 'हिन्दुस्तान" अर्थात् 'हिन्दुओं की भूमि' कहा तथा उनके 'धर्म' को 'हिन्दू धर्म' से संबोधित किया।

प्रश्न-4. हिन्दू धर्म की स्थापना किसने की ?

उत्तर : हिन्दू धर्म की स्थापना किसी एक व्यक्ति, पैगम्बर, गुरु, समुदाय, अथवा समिति ने नहीं की। हिन्दू धर्म का स्रोत वेद है। जैसा कि मनुस्मृति में उल्लिखित है-**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।** अर्थात्, मनुष्यमात्र के लिए जो कुछ भी धर्माचरण है, उसका मूल वेदों में है। **धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः** अर्थात्, धर्म के जिज्ञासुओं के लिए परम प्रमाण वेद हैं।

---

1. सर मोनियर विलियम्स कृत 'संस्कृत अंग्रेजी भाषा शब्दकोष' के अनुसार कुश का अर्थ पवित्र घास है, अत: हिन्दूकुश पर्वत से तात्पर्य हुआ-'हिन्दुओं की पवित्र घास का पर्वत'। इससे यह अटूट रूप से सिद्ध होता है कि 'हिन्दुओं' का अतीत में निवास हिन्दूकुश पर्वत पर था।

निष्कर्ष– *हिन्दू धर्म का संस्थापक कोई व्यक्ति-विशेष नहीं है। अपितु मानवीय सनातन वैदिक (वेदों से उद्भूत) परम्परा ही वास्तविक हिन्दू धर्म है।*

प्रश्न-5. वेद क्या हैं ?

उत्तर : वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है। मानव-सभ्यता के आरम्भ में जो दिव्य ज्ञान प्रकट किया गया था उसे 'वेद' कहते हैं। यथार्थ वैदिक ज्ञान 'वैदिक सनातन हिन्दू धर्म' का आधार चार पुस्तकों के रूप में उपलब्ध है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चार वेद हैं।

ऋग्वेद में कुल मन्त्र-संख्या :	10,522
यजुर्वेद में कुल मन्त्र-संख्या :	1,975
सामवेद में कुल मन्त्र-संख्या :	1,875
अथर्ववेद में कुल मन्त्र-संख्या :	5,977
चारों वेद की कुल मन्त्र-संख्या :	20,349

वेद शब्द की उत्पत्ति 'विद्' धातु (Verb) से हुई है। 'विद्' धातु के पाँच अर्थ हैं, सभी अर्थों के आधार पर संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि 'जिस ज्ञान को सभी लोग, अपने गुणों के आधार पर जान सकते हैं, प्राप्त कर सकते हैं, विचार कर सकते हैं, जी सकते हैं, और व्यवस्थित हो सकते हैं, उसको वेद कहते हैं।'

वेद आधुनिक विश्व के वैज्ञानिक ज्ञान के प्रमुख स्रोत हैं। सौभाग्य की बात यह है कि हिन्दुओं ने 'वेद' को पैतृक सम्पत्ति मानकर, सर्व मानव हित हेतु, एक धरोहर के रूप में सभी मनुष्यों के लिए आज तक सुरक्षित रखा है।

प्रश्न-6. हिन्दू धर्म का मौलिक नाम क्या है ?

उत्तर : हिन्दू धर्म की शिक्षा वेदों पर आधारित है, इसलिए 'हिन्दू धर्म' वैदिक धर्म कहलाता है। आदि शंकराचार्य ने 'विवेक चूड़ामणि' में इसे 'वैदिक धर्म' कहा है :

जन्तूनां नरजन्मदुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता
तस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरमं विद्वत्त्वमस्मात्परम्।
आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थितिर्-
मुक्तिर्नो शतजन्मकोटिसुकृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते॥2॥

—विवेक चूड़ामणि 2

प्राणियों की योनि में मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, पुरुषत्व से बुद्धिमत्ता प्राप्त करना कठिन है। विद्वत्ता द्वारा **वैदिक धर्म** का अनुसरण करना अत्यधिक कठिन है। आत्म-अनात्म का विवेचन, परमात्मा का साक्षात्कार तथा ब्रह्म में लीन होना, सौ जन्मों में भी करोड़ों पुण्यकर्मों के बिना प्राप्त नहीं हो सकते।

हिन्दू धर्म का मौलिक नाम वैदिक धर्म है। — आदि शंकराचार्य

अधिकतर उपदेशों का उद्गम नैसर्गिक शाश्वत नियमों से होता है। ये शाश्वत नियम आदि से अंत तक विद्यमान रहते हैं। चूँकि सनातन का अर्थ शाश्वत होता है, इसलिए हिन्दू धर्म सनातन धर्म के नाम से जाना जाता है। मनु ने सनातन धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं, एक परिभाषा निम्न प्रकार से है:

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

—मनुस्मृति 4-138

अर्थात् सत्य बोलो, वह सत्य बोलो जो प्रिय हो, वह सत्य न बोलो जो अप्रिय हो, वह झूठ न बोलो जो दूसरे को प्रसन्न अथवा चापलूसी करनेवाला हो -यही सनातन धर्म है।

'हिन्दू धर्म' का शुद्ध एवं पूर्ण नाम 'वैदिक सनातन धर्म' है।

प्रश्न-7. सर्वप्रथम वेदों का ज्ञान किसको मिला ?

उत्तर : सृष्टि के आरम्भ में अति-चेतन समाधिस्थ अवस्था-प्राप्त अंत:द्रष्टा ऋषियों, योगियों को वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ। अंत:द्रष्टा योगीजनों को अन्त:करण की चरम जागरूक स्थिति में पहुँचने पर यह ज्ञान उपलब्ध हो सका। पवित्र तथा गुणवान होने

के कारण समाधिस्थ योगियों ने अपने हृदय तथा मन में परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव किया, तब वेदमंत्र उनके हृदय में अवतरित हुए अर्थात् उन्हें वैदिक ज्ञान प्राप्त हुआ। आदि-ऋषियों ने भी वेदमंत्रों की ध्वनि को अपने हृदय में सुना। अतः वेदमंत्रों को श्रुति भी कहते हैं।

वेद अपौरुषेय हैं, जिसका अर्थ है—व्यक्ति द्वारा नहीं बनाए गए। इसी कारण आज तक किसी भी मनुष्य ने वेदों का लेखक होने का दावा नहीं किया, जैसा कि अन्य मत, रिलिजन और मजहबों के विषय में हुआ है। वेद मानव-सभ्यता की सबसे प्राचीनतम दिव्य वाणी हैं।

पारम्परिक मान्यता है कि वेद-ज्ञान अनादि एवं सनातन है।

अति-चेतन समाधिस्थ अवस्था-प्राप्त ऋषियों, योगियों, अर्थात् अंतःद्रष्टाओं को जो दिव्य शब्दार्थ प्राप्त हुए, वही ज्ञान 'वेद' हैं।

प्रश्न-8. पीढ़ी दर पीढ़ी वेदों का प्रवाह कैसे हुआ ?

उत्तर : स्वयं की स्मृति से मन्त्रों का मौखिक रूप से प्रतिदिन उच्चारण करके, वेदों को कंठस्थ करके पीढ़ी दर पीढ़ी उसे सुरक्षित रखा गया। ऋषियों तथा विद्वानों ने मन्त्रों को स्वरों के आरोहावरोह के साथ गाकर याद किया। गाने में प्रत्येक मन्त्र स्वर-शुद्धता के अनुसार था। मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक वेदों का प्रचार इस भाँति लगातार चलता रहा।

केवल वैदिक पद्यों को ही 'मन्त्र' कहा जाता है तथा अन्य ग्रन्थों के पद्यों को 'श्लोक' कहा जाता है। मन्त्र वह छंदोबद्ध रचना है, जिसके मनन-चिन्तन करने से अर्थ अधिक स्पष्ट होता है। मन्त्र के उच्चारण से मन को एकाग्रचित्त करना सरल होता है तथा ईश्वरीय प्रेरणा भी प्राप्त होती है।

वेदों का मौखिक उच्चारण करके, पढ़कर, सुनकर, याद करने से ही अगली पीढ़ी तक वेदों का ज्ञान अक्षरशः पहुँचाया गया। इसलिए वेदों को 'श्रुति' भी कहते हैं। मन्त्र के उच्चारण के आरम्भ

में ओ३म् बोला जाता है, इसका उद्देश्य मन्त्र के अर्थ को समझने के लिए ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त करना है तथा वेदमन्त्र के अपौरुषेयत्व का आभास बनाए रखना है।

प्रश्न-9. उन ऋषियों अथवा पुण्य आत्माओं के नाम बताइए, जिन्हें वेदों का सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त हुआ, तथा इन ऋषियों ने वेदों को लिखित रूप क्यों नहीं दिया ?

उत्तर : अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, वायु ऋषि को यजुर्वेद, आदित्य ऋषि को सामवेद और अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद का दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। चूँकि वेदों को प्रतिदिन उच्चारण कर, सुनकर, स्मरण करके सुरक्षित रखा गया, इसलिए वेदों को 'श्रुति' कहा जाता है। जब श्रुतियों को गीत के रूप में लिखा गया तब वेदों को 'संहिता' का नाम दिया गया। संहिताओं को आग, बाढ़, पशुओं तथा व्यक्तियों द्वारा नष्ट किया जा सकता है, इसलिए मौखिक रूप से गाने तथा याद करने के आधार पर ही ऋषियों तथा विद्वानों ने वेदों को आज तक सुरक्षित बनाए रखा। वेदमंत्रों के शब्दों को और उनके सही उच्चारण को सुरक्षित रखने का यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है- वेदों को कण्ठस्थ करना। यह परम्परा आदिकाल से भारत में चली आ रही है और वर्तमान काल में भी कई परिवार वेदों को अक्षुण्ण रखने में संलग्न हैं। अपितु, वेदों के एक अक्षर का भी परिवर्तन न हो जाए, तदर्थ उन्होंने मंत्रपाठ के कई प्रकार बना लिये, यथा- पदपाठ, शिखापाठ, जटापाठ, घनपाठ इत्यादि।

जब वेदों को लिखित रूप में तैयार किया गया तो वेद 'संहिता' कहलाए। श्रुति और संहिता वेद के अन्य नाम हैं।

प्रश्न-10. मूलतः वेद किस भाषा में लिखे गए ?

उत्तर : जब वैदिक-संस्कृत भाषा में 'श्रुति अथवा वेद' को लिखा गया तो 'संहिता' के रूप में 'वेद' पाठकों के सामने प्रस्तुत हुए। वैदिक-संस्कृत भाषा में उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाता है, क्योंकि प्रत्येक अक्षर का उच्चारण एक विशेष अर्थ रखता है।

इसी कारण उच्चारण में तनिक भी बदलाव होने से अर्थ बदल जाता है। किसी भी बदलाव को रोकने के लिए प्रत्येक 'अक्षर' का शुद्ध उच्चारण करने की परिपाटी अभी भी सुलभ रूप से विद्यमान है। आधुनिक संस्कृत को अमेरिकन हैरीटेज डिक्शनरी अथवा शब्दकोश के अनुसार इण्डो-यूरोपियन तथा इण्डो-जर्मन भाषा की जननी माना गया है।

भारत की सभी आधुनिक भाषाएँ तथा 'थाई', 'इण्डोनेशियन' इत्यादि पूर्वी-देशों की बहुत सी भाषाएँ संस्कृत से ही उत्पन्न हुई हैं। जोरो-राष्ट्रियन की धार्मिक पुस्तक 'अवेस्ता' को पुरानी फारसी में लिखा गया था; इसमें ऋग्वेद के मन्त्र भी हैं। जैसे-जैसे समय बीता, वैसे-वैसे अनेक राष्ट्रों का उत्थान एवं पतन हुआ, तब राष्ट्रों की भाषा तथा लिपि भी बदली। इसी तरह वेद भी ब्राह्मी तथा खरोष्ठी जैसी विभिन्न लिपियों में भी लिखे गए। प्राचीन भारत तथा मध्य एशिया में ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियाँ प्रचलन में थीं। इन लिपियों के लुप्त होने के उपरान्त भी 'ओ३म्' तथा 'स्वस्ति' के प्रचलित उपलब्ध चिह्न 'ॐ' तथा '卐' खरोष्ठी लिपि की ही देन हैं।

वेदों की वर्तमान भाषा तथा लिपि 'वैदिक संस्कृत' है।

प्रश्न-11. संस्कृत भाषा की समृद्धि का कोई उदाहरण दीजिए।

उत्तर : भाषाएँ संस्कृति और जन-समुदाय की क्रिया-प्रतिक्रिया को व्यक्त करती हैं। संस्कृत सभी आधुनिक इण्डो-यूरोपियन भाषाओं की जननी है—यह पश्चिमी देशों के भाषा-विशेषज्ञों ने भी सिद्ध किया है। संस्कृत भाषा में विचारों, संवेगों और सामाजिक क्रियाओं को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्द हैं। संस्कृत भाषा में उपसर्ग और प्रत्यय के प्रयोग से असंख्य नए शब्दों का सृजन होता है। संस्कृत-साहित्य में मन के भावों को नौ 'रसों' से प्रदर्शित किया गया है, जैसे वात्सल्य, शृंगार, भक्ति, वैराग्य इत्यादि। पश्चिमी देशों की भाषाएँ 'रस' रूपी भाव से पूर्णतः अनभिज्ञ ही हैं। रॉबर्ट

ए० जॉनसन के अनुसार संस्कृत में 'प्रेम' शब्द को व्यक्त करने के लिए 96 शब्द हैं। प्राचीन पर्शियन भाषा पारसी या ईरानी में 80, ग्रीक में 4 और अंग्रेजी में केवल एक शब्द है 'लव'।

आँग्ल भाषा का 'लव' (Love) शब्द संस्कृत में 96 तरह से दर्शाया गया है।

वियतनाम के सुदूर पूर्व दक्षिणी भाग में स्थित नह्-तरांग नगर के निकट वो-चानला गाँव में प्राचीन संस्कृत के शिलालेख मिले, जिनका वर्णन जे०सी० शर्मा द्वारा लिखी पुस्तक 'वियतनाम के हिन्दू मन्दिर, 1998' में किया गया है। संस्कृत में वियतनाम का मौलिक नाम 'चम्पा' है, जैसे थाईलैंड को 'स्याम' नाम से सम्बोधित किया जाता है। सुदूर पूर्वी भाषाएँ विशेषत: इण्डोनेशियाई, वियतनामी और थाई भाषा, संस्कृत शब्दों से इतनी प्रभावित हैं कि मानो उनका उद्भव संस्कृत से हुआ है। जे०सी० शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक 'वियतनाम के हिन्दू मन्दिर, 1998' में प्राचीन वैदिक सभ्यता का गहरा प्रभाव पढ़ने को मिलता है। नवीं शताब्दी के शिलालेख के अनुसार 'चम्पा' या वियतनामी लोग संस्कृत के महान् विद्वान् भृगु ऋषि के वंशज हैं।

प्रश्न-12. वेदों की शिक्षा पर आधृत क्या और भी धर्मग्रन्थ हैं?

उत्तर : चूँकि वेद प्राचीन गूढ़ वैदिक भाषा में लिखे हैं, इसलिए सामान्य व्यक्तियों द्वारा उनको आसानी से समझना कठिन है। इस कारण से प्राचीन ऋषियों अथवा सिद्ध पुरुषों ने अनेक व्याख्या-ग्रन्थ लिखे हैं; चूँकि ये पुस्तकें वेदों को भलीभाँति समझने में सहायक हैं, इसलिए इनको सहायक ग्रन्थ कहा जाता है।

वेदार्थ जनाने हेतु विभिन्न सहायक धर्म-ग्रन्थ हैं—उपनिषद्, आरण्यक, षड्-दर्शन, मनुस्मृति, ब्राह्मण-ग्रन्थ, सूत्रग्रन्थ आदि।

कुछ अरण्यवासी प्राचीन ऋषियों ने आत्मविषयक, पारलौकिक विज्ञान और दार्शनिक विषयों से सम्बन्धित अंश वेदों से लेकर अधिक विस्तार से अर्थ स्पष्ट करने के लिए पुस्तकें लिखीं, अत:

ये आरण्यक और उपनिषद् के रूप में विख्यात हैं। इनका विषय आध्यात्मिक चिन्तन है। उसी प्रकार से वेदों के कर्मकाण्ड एवं संस्कारों वाले विषयों की व्याख्या ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं सूत्र-ग्रन्थों में की गई है। इन सभी सहायक प्राचीन शास्त्रों का संक्षिप्त विवेचन सातवें अध्याय में 'हिन्दूधर्म की झलकियों' में किया गया है।

कभी-कभी कुछ लोग गलती से उपनिषदों, आरण्यकों और ब्राह्मण-ग्रन्थों को भी वेदों के नाम से उद्धृत करते हैं, किंतु वेद ही सर्वोच्च प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। सहायक धार्मिक ग्रन्थों की मान्यताएँ यदि वेदों की मान्यताओं के अनुरूप हैं तभी मान्य हैं, अन्यथा नहीं। क्योंकि स्मरण-परम्परा के प्रयोग से ही वेदों के वास्तविक स्वरूप को सुरक्षित रखा गया और 'श्रुति' के नाम से जाना गया, इसी कारण से उनमें कोई प्रक्षिप्त अथवा छद्म रूप से परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु सहायक धर्म-ग्रन्थों के लिए 'स्मरण परम्परा' प्रयोग में नहीं थी, इसलिए उनमें प्रक्षेप अर्थात् मिलावट रूपी परिवर्तन सम्भव था, अत: वेद ही उपलब्ध सर्वमान्य प्रामाणिक मुख्य ग्रन्थ हैं।

वेद ही सर्वमान्य सर्वोच्च प्रामाणिक मूल धर्म-ग्रन्थ हैं।

प्रश्न-13. अगर वेद ही सर्वमान्य सर्वोच्च प्रामाणिक मूल धर्म-ग्रन्थ हैं, तो स्मृति, पुराण, रामायण और महाभारत कौन-सी श्रेणी में आते हैं ?

उत्तर : स्मृति ग्रंथ : समाज को समृद्ध और सुचारु रूप से चलाने हेतु प्राकृतिक नियमों के आधार पर जो संविधान बना, उसे 'स्मृति' कहते हैं। यद्यपि स्मृति-ग्रंथ अनेक हैं, किन्तु उनमें केवल मनु-स्मृति ही सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जाती है। यदि 'वेद' सृष्टि का ज्ञान है तो 'पुराण' सृष्टि का इतिहास है। पुराणों में सृष्टि-उत्पत्ति का इतिहास लाक्षणिक गाथाओं के रूप में सुरक्षित है। पुराणों के पाँच प्रमुख विषय कहे जाते हैं :

1. सृष्टि-उत्पत्ति।

2. प्रलय।

3. सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न मानव तथा उनकी वंश-परम्परा का संरक्षण।

4. मन्वन्तर अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक के समय का लेखा-जोखा, युगों, मन्वन्तरों तथा कल्पों तक सुरक्षित रखना।

5. ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करना।

रामायण और महाभारत भी ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। कुछ लोग इनकी वास्तविकता पर संदेह करते हैं, पर यह उनकी भयंकर भूल है, जैसे कि आगे के अध्यायों से स्वत: ही सिद्ध हो जाएगा। वाल्मीकि रामायण ही मूल मान्य रामायण है। अन्य लेखकों ने इसी रामायण का अनुवाद अनेक भाषाओं में किया, अत: समयानुसार उनमें परिवर्तन भी आए। आरम्भ में श्री तुलसीदास ने रामचरितमानस छ: अध्यायों में लिखी थी, अब वही रामचरितमानस नौ अध्यायों में मिलती है। ऐसा ही महाभारत ग्रंथ के साथ हुआ। सर्वप्रथम महाभारत अष्ट साहस्री अर्थात् 8000 श्लोकों वाला ग्रंथ था। कालान्तर में यह 24000 श्लोकों वाला तथा आज 100000 श्लोकों वाला ग्रंथ बन गया है।

प्रश्न-14. वेदान्त क्या है ?

उत्तर : वेदान्त से अभिप्राय है--वेद का अन्तिम भाग। वेदों में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ज्ञान के सन्दर्भ में बहुत-से दर्शन-ग्रन्थ हैं। भारतीय दर्शनों में 6 मुख्य दर्शन हैं, जिनको षड्दर्शन कहते हैं। इन दर्शनों की श्रेणी में अन्तिम दर्शन का नाम वेदान्त है, जो ईश्वर अथवा ब्रह्म के स्वरूप का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत करता है। इन दर्शनों का विवेचन इस पुस्तक के षड्दर्शन वाले भाग में देखा जा सकता है।

आजकल 'वेदान्त' का अर्थ 'अद्वैतवाद' से होने लगा है। अद्वैतवाद की व्याख्या पाँच प्रमुख आचार्यों- शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, निम्बार्काचार्य, एवं वल्लभाचार्य ने की थी। परन्तु कालांतर

में इन आचार्यों के नाम से अलग-अलग सम्प्रदाय भी प्रचलित हो गए और ये सभी आचार्य वेदान्ती आचार्य कहलाने लगे।

आधुनिक विद्वानों से भी विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं का बोध होता है, जैसे महर्षि दयानन्द सरस्वती ने त्रैतवाद, स्वामी विवेकानन्द ने व्यावहारिक वेदान्त, और योगी अरविन्द ने सर्वांग वेदान्त का बोध कराया।

'वेदान्त दर्शन' वेदों के अन्तिम भाग उपनिषदों के विवेच्य विषय-'ईश्वर अथवा ब्रह्मज्ञान' का दार्शनिक विवेचन करता है।

प्रश्न-15. वेदों से कौन-कौन-सी विद्याएँ अथवा विज्ञान की शाखाएँ उत्पन्न हुई हैं ?

उत्तर : विद्याएँ दो प्रकार की होती हैं-पहली 'परा विद्या' और दूसरी 'अपरा विद्या'। भौतिक विज्ञान से परे ज्ञान को 'परा विद्या' अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान कहा जाता है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित, खगोल, ज्योतिष, दर्शन, औषधि-विज्ञान, एवं यांत्रिक विज्ञान इत्यादि 'अपरा विद्या' है। परा-विद्या के अन्तर्गत सभी आत्म-विषयक ज्ञान एवं ब्रह्म-विद्या हैं। ये सभी ज्ञान-विज्ञान वेदों से ही निकले हैं। प्राचीन ऋषि 'नक्षत्र शास्त्र, गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, तकनीकी विज्ञान, दर्शन तथा चिकित्सा-शास्त्र को भलीभाँति समझते थे।

प्रश्न-16. संकल्प क्या है ?

उत्तर : किसी भी आयोजन के प्रारम्भ में काल-गणना की स्थिति व निश्चित समय, स्थान एवं आयोजन का प्रयोजन अर्थात् उद्देश्यों को बतानेवाले वाक्य-समूह के उच्चारण को संकल्प कहते हैं। संकल्प-उच्चारण में सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान आयोजन-उत्सव तक की काल-गणना बताई जाती है। संकल्प में नक्षत्रों और ग्रहों की तथा समकालीन भौगोलिक स्थिति, उत्सव के यजमानों तथा उत्सव में भाग लेनेवाले लोगों का भी विवरण होता है। संकल्प-उच्चारण के प्रारम्भिक भाग में आयोजन-कर्ता अथवा यजमान

एवं अतिथियों का परिचय भी कराया जाता है। संकल्प में आयोजन-कर्ता की पीढ़ियों की सही गणना से इतिहास का अधिकृत परिचय होता है। संकल्प की यह प्राचीन वैदिक परम्परा 'रिकॉर्ड'–लेखा-जोखा सुरक्षित रखने की एक अनुपम विधि है। संकल्प–उच्चारण की मौखिक परम्परा के कारण ही तथ्यों और घटनाओं को भावी पीढ़ी तक सुरक्षित रखा जा सका। संकल्प-उच्चारण के द्वारा ही एक सन्तति का ज्ञान दूसरी संतति को प्राप्त हुआ। श्रुति–परम्परा से रिकॉर्ड अथवा लेखा-जोखा सुरक्षित रखने की प्रक्रिया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिली, इस कारण संकल्प को 'देशकाल संकीर्तन' के नाम से भी जाना जाता है। संकल्प निम्न रूप में पढ़ा जाता है।

'ओ३म् तत् सत्। श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्धे श्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे ऽमुकसंवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्त्तेऽत्रेदं कर्म क्रियते चेति।'

उपर्युक्त संकल्प के अनुसार इस पुस्तक के विमोचन/वितरण का समय निम्न है :

ब्रह्माण्डोत्पत्ति वर्ष 155, 521, 972, 949, 107; पृथिवी पर जीवन धारण/सृष्टि–रचना 51वाँ श्वेतवाराह कल्प का 1,972, 949, 107 वर्ष; सातवें वैवस्वत मन्वन्तर का 120, 533, 107वाँ वर्ष; 28वें कलियुग का 5107 वर्ष; विक्रम संवत् 2062; शक संवत् 1928, ज्येष्ठ शुक्ल 14, दक्षिणायन प्रारम्भ, जून 21 ईसवी सन् 2005। देखिए प्रश्न 17–21 के उत्तर।

संकल्प मौखिक रूप से काल आदि के विवरण संजोने, 'रिकॉर्ड लेखा-जोखा सुरक्षित' रखने की एक प्रामाणिक, अद्वितीय तथा प्राचीन वैदिक परम्परा है।

प्रश्न–17. हिन्दू धर्म कितना पुराना धर्म है ?

उत्तर : विश्व में सर्वाधिक पुराना धर्म 'हिन्दू धर्म' है। सर्वप्रथम धरती पर 1.97 बिलियन वर्ष पहले, अथवा 1 अरब, 97 करोड़

वर्ष पूर्व इस मानव-धर्म-'हिन्दू धर्म' का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिक विज्ञान ने भी काल की इस लम्बी अवधि अथवा समय के इतने लम्बे अन्तराल को स्वीकार किया है। कॉरनेल युनिवर्सिटी, न्यूयार्क के 'स्पेस साइँस अथ्वा अन्तरिक्ष और खगोल विज्ञान' (Astronomy & Aerospace Science) विभाग के स्वर्गीय प्रोफेसर एवं पुलिट्जर पुरस्कार से सम्मानित प्रसिद्ध वैज्ञानिक कॉर्ल सेंगन, स्वर्गवास 1996, ने भी अपनी गणना में सूर्य का जन्म पाँच अरब वर्ष पहले तथा धरती को 4.5 बिलियन अथवा 4 अरब 50 करोड़ वर्ष पुरानी बतलाया है। उन्होंने यह भी बतलाया कि विश्व में केवल 'हिन्दू धर्म' ही ऐसा धर्म है जो पृथिवी की आयु की गणना बिलियन अथवा अरबों वर्षों में करता है।

नोट : बिलियन एक महत्त्वपूर्ण संख्या है जो अमेरिका में एक अंक के बाद नौ शून्य चिह्न के रूप में है, जबकि ब्रिटिश लोग इसे एक अंक के बाद बारह शून्य चिह्न के रूप में मानते हैं। इस पुस्तक में एक बिलियन को अमेरिका में उपयोग हो रहे एक अंक के बाद नौ शून्य लगाकर प्रयोग किया गया है। अत: भारतीय आँकड़ों के अनुसार एक बिलियन सौ करोड़ के बराबर हुआ। एक ट्रिलियन वर्ष 1000 बिलियन वर्ष का होता है।

अत: किसी को भी हिन्दुओं की इस बात पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि मानव-सभ्यता 1.17 अरब वर्ष पुरानी है।

प्रश्न-18. हिन्दू धर्म के अनुसार सृष्टि-उत्पत्ति से लेकर अब तक कितना समय व्यतीत हो चुका है ?

उत्तर : प्रसिद्ध संविधान-वेत्ता, कानून के जनक, मनु की गणना के अनुसार, जब से पृथिवी पर मानव-जीवन का प्रादुर्भाव हुआ है, अर्थात् सृष्टि प्रारम्भ हुई है, तब से सृष्टि-संवत् का 1,97,29,49,107वाँ वर्ष 2005 ईसवी सन् के समानान्तर चल रहा है। सृष्टि के एक चक्र में 14 मन्वन्तर होते हैं। वर्तमान मन्वन्तर सातवाँ मन्वन्तर है। इसको वैवस्वत मन्वन्तर कहते हैं। एक मन्वन्तर

में 71 चतुर्युगों सहित एक सतयुग के 1,728,000 वर्ष भी होते हैं अर्थात् एक मन्वन्तर में कुल 308,448,000 वर्ष होते हैं। चतुर्युग में चार युग होते हैं। पहले युग को सत्युग, दूसरे को त्रेता, तीसरे को द्वापर, और चौथे युग को कलियुग कहते हैं। कलियुग 18 मार्च, 1998 ईसवी सन् को 5100 वर्ष पूरे करके चतुर्युग में वर्षों की संख्या निम्न प्रकार से है :

सतयुग	1,728,000
त्रेतायुग	1,296,000
द्वापरयुग	864,000
कलियुग	432,000

वर्तमान सृष्टि की रचना में चतुर्युग का अट्ठाइसवाँ क्रम चल रहा है। गणनाओं के अनुसार वर्तमान कलियुग ने 5106वाँ वर्ष बृहस्पतिवार, फरवरी 17, सन् 2005 ई॰ को पूरा कर, 5107वाँ नव वर्ष आरम्भ कर लिया है। उत्तर भारत में फाल्गुन के समाप्त होते ही अर्थात् चैत्र माह के कृष्ण पक्ष प्रतिपदा/एकम् से विक्रम संवत् का 2062वाँ वर्ष तथा शक संवत् का 1927वाँ वर्ष आरम्भ हुआ जो वर्तमान ईसवी सन् 2005 के शुक्रवार, मार्च 26 का दिन होता है। परन्तु दक्षिण भारत में विद्वानों के अनुसार चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से विक्रम सम्वत् का 2062वाँ वर्ष तथा शक सम्वत् का 1927वाँ वर्ष प्रारम्भ होता है जो वर्तमान ईसवी सन् 2005 के शनिवार अप्रैल 9 का दिन होता है।

हिन्दू पद्धति में तिथियों का प्रथम माह चैत्र से होता है। हर एक माह को चन्द्रमा की स्थिति पर आधारित दो भागों में बाँटा जाता है। महीने के पूर्वार्द्ध को कृष्ण पक्ष (कृष्ण अथवा प्रकाशहीन-काला), तथा उत्तरार्द्ध को शुक्ल पक्ष कहा जाता है। कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का प्रकाश धीरे-धीरे क्षय होता हुआ 15वें दिन के अन्त में पूर्णतया समाप्त हो जाता है जिसे अमावस्या कहते हैं। पूर्णिमा का अर्थ पूर्ण चन्द्रमा से है। शुक्ल पक्ष के अन्तिम दिन को पूर्णिमा

अर्थात् पूर्णमासी कहा जाता है। पूर्णिमा के दिन ही चन्द्रमा पूर्णरूप से प्रकाशित होता है। उत्तर भारत में विक्रम संवत् के प्रत्येक नव वर्ष का प्रारंभ होली के दूसरे दिन अर्थात् चैत्र मास के कृष्ण पक्ष से आरम्भ होता है। लेकिन गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होता है।

महीने की प्रथम तिथि को प्रतिपदा या पड़वा कहा जाता है। दूसरे दिन को द्वितीया, तीसरे दिन को तृतीया कहा जाता है, क्रमशः इस प्रकार गणना करने से 15 दिन पूर्ण होते हैं। वर्ष प्रतिपदा को नव वर्ष का प्रथम दिन माना जाता है। वर्ष प्रतिपदा को बड़े हर्ष और उल्लास से मनाया जाता है, देखिए 'प्रश्न 60, होली का वर्णन'। काल-गणक सूची के अनुसार एक वर्ष में निम्न महीने होते हैं :

चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ तथा फाल्गुन।

सामान्य रूप से ये भारतीय महीने, ग्रीगेरियन अर्थात् ईसवी सन् के महीनों से निम्न प्रकार मेल खाते हैं :

मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी तथा फरवरी।

वर्तमान में पृथिवी पर सृष्टि अथवा जीवन-रचना का 1,97,29,49,108वाँ वर्ष चल रहा है, परन्तु ईसवी सन् का केवल 2006वाँ वर्ष ही है।

प्रश्न-19. 'ब्रह्मा के एक दिन' से आपका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : एक हजार चतुर्युगी से ब्रह्मा का एक दिन बनता है और उतनी ही चतुर्युगियों से ब्रह्मा की एक रात होती है। सृष्टि-रचना अथवा सृष्टि-विस्तार का समय भी ब्रह्मा का एक दिन होता है। सृष्टि के संकुचन अथवा विघटन को ब्रह्मा की निद्रा, रात अर्थात् प्रलय कहा जाता है। खरबों वर्षों तक ब्रह्माण्ड का विस्तार और उसके बाद संकुचन होता है। ब्रह्मा का एक दिन=4,320,000,000 वर्ष, ब्रह्मा की एक रात=4,320,000,000 वर्ष। एक अहोरात्र (दिन

तथा रात) 8,640,000,000 वर्ष, ब्रह्मा का एक वर्ष 360 अहोरात्र, ब्रह्मा की आयु 100 ब्राह्म वर्ष। अभी ब्रह्मा का 51वाँ वर्ष (द्वितीय प्रहरार्ध) चल रहा है। एक सौ वर्ष पश्चात् ब्रह्माण्ड पुनः अन्य सृष्टि-रचना के लिए फैलता है और यह चक्र अनिश्चित काल तक लगातार चलता रहता है, कारण—ब्रह्माण्ड अनन्त और अनादि है। 'ब्रह्मा के दिन' की गणना के लिए प्रश्न 21 का उत्तर भी देखिए।

1929 में एडविन हब्बल ने सिद्ध किया कि यह वैदिक सूत्र (नियम) सही है। अलबर्ट आइंस्टीन को इस सूत्र की सत्यता पर संदेह था, परन्तु हब्बल ने इसे सत्य सिद्ध कर दिया। निःसन्देह यह जानकारी हब्बल के जन्म से पूर्व निश्चित रूप से वेदों में थी।

प्रश्न–20. कल्प क्या है ?

उत्तर : सूर्य के आकाशगंगा में परिभ्रमण का काल एक मन्वन्तर कहलाता है तथा आकाशगंगा के स्वायम्भुव-मण्डल के परिभ्रमण-काल को एक कल्प कहते हैं। दूसरे शब्दों में 'एक सृष्टि-रचना की अवधि को कल्प कहते हैं।' प्राचीन वैदिक खगोलीय 'सूर्य सिद्धान्त' गणना के अनुसार चार अरब, तीन सौ बीस करोड़ वर्ष (4,320,000,000) से एक कल्प बनता है।

सृष्टि-रचना का एक पड़ाव एक कल्प कहलाता है। इसे ब्रह्मा का एक दिन भी कहते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा की एक रात अर्थात् प्रलय की अवधि भी एक कल्प कहलाती है। एक भारतीय सन्त–सिद्धार्थ गौतम 'महात्मा बुद्ध' के नाम से ईसा से 15वीं शताब्दी पूर्व विख्यात हुए थे। उन्होंने कल्प का अति सुन्दर उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया : 'हिमालय की सर्वाधिक ऊँची चोटियों से भी विशाल, लम्बी, और कठोर पर्वत की अत्यधिक ऊँची चोटी की कल्पना करो। अब सोचिए—एक व्यक्ति इसे मात्र दर्शन करने के लिए वाराणसी अथवा काशी से एक सौ वर्ष में एक बार इस पर्वत को रेशम के धागे से लपेटने के लिए जाता है। जितना समय

उस पहाड़ को पूरा लपेटने में लगेगा, वह समय एक कल्प कहलाता है।'

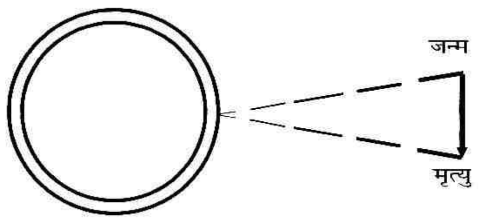
सृष्टि रचना की दीर्घ सृजनात्मक अवधि की तुलना में एक सौ वर्ष की मानवीय आयु केवल एक पलक झपकने के समान है। अगर रेडियम छड़ की विकिरण-क्रिया 700,000 वर्षों तक लगातार चल सकती है, और भूवैज्ञानिक समय-मापदण्ड के अनुसार प्री-कैम्ब्रियन काल 600,000,000 वर्ष पहले हो सकता है, तथा कार्ल सेगॉन, जिनके कार्यों को 'नासा-राष्ट्रीय विमान विज्ञान तथा अंतरिक्ष प्रशासन, अमेरिका' ने प्रामाणिक मानकर उन्हें सम्मानित किया गया है, उन्होंने कल्प पर गम्भीर सोच-विचार करके अनुसंधान द्वारा सिद्ध किया है कि 'कल्प का काल कल्पना से परे नहीं है।' (देखें उ॰ नं॰ 17)

'सूर्य सिद्धान्त' गणना के अनुसार चार अरब, तीन सौ बीस करोड़ वर्ष (4,320,000,000) से एक कल्प बनता है। विश्व में केवल हिन्दू धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसकी काल-गणना ही आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर सही उतरी है। हिन्दुओं को अपने ग्रंथों पर मान है।

प्रश्न-21. समय-गणना के मापदंड क्या हैं ?

उत्तर : वैदिक विचारों के अनुसार समय विराटाकार चक्रों में चलता रहता है। सृष्टि-निर्माण के साथ ही समय आरम्भ होता है और सृष्टि के अन्त होते ही समय-गणना भी समाप्त हो जाती है, और उसी समय विघटन अथवा प्रलय प्रारम्भ होता है। सृष्टि और प्रलय एक चक्र की भाँति हैं, क्योंकि चक्र में न तो कोई आरम्भ है और न ही अन्त। ये दोनों अति शनैः-शनैः, सूक्ष्म से सूक्ष्म गति से निर्विघ्न चले आ रहे हैं, जिनका बोध मनुष्यों को अनेक कालों तथा देव-युगों (प्र॰ 21 का नोट देखें) तक नहीं हो सकता। एक व्यक्ति का जीवन-चक्र तो अति सूक्ष्म है और जो केवल एक अति छोटी-सी सीधी रेखा से अंकित किया जा सकता है।

अगर अति विशालकाय समय-चक्रों से मानव-जीवन की सरेखीय अवधि की तुलना की जाए तो पता चलता है कि मानव-जीवन की अवधि सात समुद्रों में जल की एक बूँद की भाँति अति सूक्ष्म है। तथापि पाश्चात्य जगत् में इस सरेखीय समय-अवधि को मानक माना जाता है। पाठकों के लिए, इस अति-विशालकाय समय-चक्र की इकाई तथा मापक मानदण्ड नीचे दिए जा रहे हैं :



विराटाकार काल चक्र
वैदिक सिद्धान्त के अनुसार
(सनातन से सनातन)

सरेखीय समय अवधि
पाश्चात्य विचारधारा
(जन्म से मृत्यु)

समय का सबसे बड़ा माप 'कल्प' 4.32 बिलियन वर्ष
= 4,320,000,000 वर्ष

त्रुटि	–	एक क्षण का 33,750वाँ भाग
निमेष	–	एक क्षण का 3000वाँ भाग
विपल	–	एक क्षण का 2/5वाँ भाग
क्षण	–	1 सैकंड
पल	–	24 सैकंड
मिनट	–	60 सैकंड
घटी	–	24 मिनट
होरा	–	घण्टा (60 मिनट)
दिवस	–	एक दिन (24 घंटे)
सप्ताह	–	7 दिन
मास	–	चार सप्ताह (महीना)
वर्ष	–	12 मास
शताब्दी	–	एक सौ वर्ष
सहस्राब्दी	–	एक हजार वर्ष
देवयुग*	–	12000 देववर्ष अथवा 4320000 मानव-वर्ष अथवा एक महायुग
चतुर्युग/महायुग	–	सत्+त्रेता+द्वापर+कलियुग
चतुर्युगी	–	4,322,000 वर्ष
सतयुग	–	1,728,000 वर्ष
त्रेतायुग	–	1,296,000 वर्ष
द्वापरयुग	–	864,000 वर्ष
कलियुग	–	432,000 वर्ष

---

*नोट=देवयुग Geological times का, तथा मानव-वर्ष समय का द्योतक है। कुल नक्षत्र 27 हैं; सप्तर्षि एक-एक नक्षत्र में 100-100 वर्ष का निवास करते हैं (बृहत्सं॰ 13.4), तथा सप्तर्षियों का एक वर्ष मनुष्यों के 2700 वर्षों के तुल्य होता है। इसको सप्तर्षि संवत् कहते हैं।

('भारतीय कालगणना', डॉ॰ रविप्रकाश आर्य, 1998)

ईसवी सन् 2005, जून 21 को कलियुग ने 5106 वर्ष पूर्ण किए और कलियुग अथवा युगाब्द के 5107 नूतन वर्ष आरम्भ हुए। इसी भाँति, ईसवी सन् 2005, मार्च 25 को विक्रम संवत् के 2061 वर्ष पूर्ण किए तथा नूतन वर्ष, चैत्र, शुक्ल पक्ष, वर्ष–प्रतिपदा अर्थात् मार्च 26 से विक्रम संवत् के 2062 वर्ष आरम्भ हुए। पृथिवी वर्तमान समय में सूर्य के चारों ओर एक लाख कि॰मी॰ प्रति घंटे की गति से 96,60,00,000 कि॰मी॰ की परिक्रमा 365 ¼ दिन में करती है। पृथिवी 197 करोड़ वर्ष पहले, सूर्य के चारों ओर चक्कर काटने में 360 दिन लगाती थी, इसी कारण वैदिक ऋषियों ने एक वृत्त को 360^0 में विभाजित किया। वर्ष में 360 दिन अथवा 720 दिन-रात के अनुसार ही पंचांग बनाए। उस समय पृथिवी सूर्य से 92,955,630 मील दूर थी। चूँकि पृथिवी के सूर्य से निरन्तर दूर खिसकने के कारण पृथिवी की गति में परिवर्तन आया और ई॰स॰ 2003 में सूर्य से 93,926,384 मील दूर होने से (फ्लोरिडा विश्वविद्यालय ऐस्ट्रॉनॉमी विभाग वेब साइट) सूर्य की परिक्रमा में ज्यादा समय लगने के कारण करीब 5 ½ घंटे का समय बढ़ गया है, पृथिवी द्वारा सूर्य की परिक्रमा का सही समय 365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनट और 47.8 क्षण है। डॉ॰ आर्य के अनुसार पृथिवी का ध्रुव भी निरन्तर पीछे खिसकता रहता है, 72 वर्ष में लगभग एक अंश पीछे खिसक जाता है। अत: वर्तमान पंचांग अथवा कैलेण्डर में संशोधन की अति आवश्यकता है। यह संशोधन हर 72 वर्षों में अनिवार्य हो जाता है। वर्तमान काल में यह संशोधन 1738 वर्ष पूर्व कलि संवत् 3361 अथवा 259 ख्रिस्ताब्द (क्रिश्चियन सन् A.D.) में हुआ था। उनका यह भी कहना है कि सम्भव है आर्यभट्ट ने ही वर्तमान स्वरूप पंचांग को प्रदान किया हो। तदनुसार वर्तमान पंचांग अथवा कैलेण्डर-संशोधन की अति आवश्यकता है।

भारतीय मासों और विदेशी कैलेण्डर के महीनों की तुलनात्मक तालिका :

वर्तमान प्रचलित रूप	संशोधित नूतन रूप
चैत्र=21 मार्च-20 अप्रैल	चैत्र=21 अप्रैल-21 मई
वैशाख=21 अप्रैल-20 मई	वैशाख=22 मई-21 जून
ज्येष्ठ=21 मई-21 जून	ज्येष्ठ=22 जून-21 जुलाई
आषाढ़=22 जून-22 जुलाई	आषाढ़=22 जुलाई-21 अगस्त
श्रावण=23 जुलाई-23 अगस्त	श्रावण=22अगस्त-21 सितम्बर
भाद्रपद=24 अगस्त-23 सितम्बर	भाद्रपद=22 सितम्बर-21 अक्तूबर
आश्विन=24 सितम्बर-23 अक्तूबर	आश्विन=22 अक्तूबर-21 नवम्बर
कार्तिक=22 अक्तूबर-21 दिसम्बर	कार्तिक=22 नवम्बर-21 दिसम्बर
मार्गशीर्ष=22 नवम्बर-21 दिसम्बर	मार्गशीर्ष=22 दिसम्बर-21 जनवरी
पौष=22 दिसम्बर-21 जनवरी	पौष=22 जनवरी, 20 फरवरी
माघ=22 जनवरी-20 फरवरी	माघ=21 फरवरी-21 मार्च
फाल्गुन=21 फरवरी-20 मार्च	फाल्गुन=20 मार्च-21 अप्रैल

एक मन्वन्तर=71 महायुग+एक सत्युग=308448000 वर्ष

एक कल्प=14 मन्वन्तर+एक सत्युग=4.32 अरब वर्ष

एक कल्प = 1000 चतुर्युग = ब्रह्मा का एक दिन = पृथिवी का सृष्टि/प्रलय काल = 4.32 अरब वर्ष = 4,320,000,000 वर्ष।

पृथिवी केवल एक कल्प तक ही सृष्टि धारण करने में समर्थ है, उसके पश्चात् धरा वसुन्धरा नहीं रहती।

ब्रह्मा की एक रात = एक कल्प = 4.32 अरब वर्ष = 1000 चतुर्युग = 4,320,000,000 वर्ष

दो कल्प = ब्रह्मा का एक दिन और रात = 8.64 अरब वर्ष = 8,640,000,000 वर्ष

ब्रह्मा का एक वर्ष = 8,64 × 365 = 31.536 खरब वर्ष

= 3,153,600,000,000 वर्ष

ब्रह्मायु के प्रथम प्रहरार्धे (व्यतीत हुए प्रथम 50 वर्ष)

= 15.7680 खरब वर्ष

ब्रह्मायु के द्वितीय प्रहरार्धे अगले 50 वर्ष = 15.7680 खरब वर्ष

ब्रह्मा (सम्पूर्ण ब्रह्मांड) की कुल आयु = 100 ब्रह्म वर्ष

वर्ष=31,15,36,00,00,00,000 वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड सृष्टि-काल (सम्पूर्ण ब्रह्मांड के प्रलय-काल की अवधि भी इतनी ही है)

ब्रह्मा के एक सौ वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड की पूर्ण अवधि = सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक पूर्णकाल चक्र = एक ब्रह्मयुग = 31,15,36,00, 00,00,000 वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड की आयु पुनश्च।

वैदिक काल में एक वर्ष में 360 दिन होते थे, अत: वैदिक गणना में 360 दिनों से गुणा करना है, 365 से नहीं। अत: वैदिक कालगणना अनुसार :

ब्रह्मा का एक वर्ष = 8.64 × 360 = 31.104 खरब वर्ष

= 3,110,400,000,000 वर्ष = 3.11 ट्रिलियन वर्ष

ब्रह्मायु के प्रथम प्रहरार्धे (व्यतीत हुए प्रथम 50 वर्ष)

= 1555.21 खरब वर्ष = 155.5 ट्रिलियन वर्ष

ब्रह्मायु के द्वितीय प्रहरार्धे अगले 50 वर्ष = 1.55521 खरब वर्ष

= 1.555 ट्रिलियन वर्ष

ब्रह्मा (सम्पूर्ण ब्रह्मांड) की कुल आयु अथवा 100 ब्रह्म वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड सृष्टि-काल = 311,040,000,000,000 वर्ष। सम्पूर्ण ब्रह्मांड के प्रलय-काल की अवधि भी इतनी ही है।

ब्रह्मा के एक सौ वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड की पूर्ण अवधि = सम्पूर्ण ब्रह्मांड का एक पूर्णकाल चक्र = एक ब्रह्मयुग = 311,040,000, 000,000 वर्ष = सम्पूर्ण ब्रह्मांड की आयु।

ईसवी सन् 2005 में ब्रह्मांड का 155,521,972,949,107वाँ वर्ष आरम्भ हुआ है।

197 करोड़ वर्ष पहले कल्पारम्भ अश्विनी नक्षत्र, मेष राशि तथा चैत्रशुक्ल प्रतिपदा को हुआ था, इसलिए अश्विनी नक्षत्र को प्रथम नक्षत्र माना है। वर्षारम्भ भी अश्विनी नक्षत्र, मेष राशि तथा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से ही माना जाता है। इसलिए अश्विनी नक्षत्र को प्रथम, मेष राशि को पहली राशि और चैत्र मास को प्रथम मास माना है। आकाशगंगा अथवा परमेष्ठी मण्डल भी स्वायम्भुव मण्डल (Super Galactic Region, स्वायंभुव अथवा सम्पूर्ण विश्वदेवों अथवा All Galaxies) की परिक्रमा एक कल्प में करती है। Scientific American, March 2003, page 54 के अनुसार सूर्य 220 कि॰मी॰ प्रति सैकंड की गति से यात्रा करता है। इस गति की गणना से सूर्य 30 करोड़ वर्षों में आकाश- गंगा के गिर्द चक्र, एक मन्वन्तर में करता है। पृथिवी 30 कि॰मी॰ प्रति सैकंड की गति से सूर्य की परिक्रमा 365 ¼ दिन में करती है, देखिए पूर्वांकित नोट; पृथिवी द्वारा सूर्य की परिक्रमा का सही समय 365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनट और 47.8 क्षण है। चान्द्रमास 30 चन्द्र तिथियों का माना जाता है, पर 27 दिन 6 घण्टे में चन्द्रमा एक चान्द्र मास में, पृथिवी की परिक्रमा करता है; यह सौर मास के 29 दिन एवं 30 सैकंड के बराबर होता है, परन्तु वर्तमान सौर मास 30 दिन 10 मिनट 30 सैकंड का होता है। इसलिए तिथियों में तालमेल करना होता है। सृष्टि का प्रारम्भ, कल्पारम्भ अश्विनी नक्षत्र, मेष राशि, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ हुआ, इस कारण इन्हें प्रथम नक्षत्र, प्रथम राशि और प्रथम मास का श्रेय प्राप्त हुआ। सृष्टि का आरम्भ सूर्योदय से हुआ, अत: प्रथम दिन रविवार कहलाया। दिन के 24 घंटों को प्रत्येक घंटा प्रत्येक ग्रह का माना है। सप्ताह के प्रथम दिन का पहला घंटा सूर्य से, दूसरे दिन का पहला घंटा चन्द्र से, अत: सोमवार कहलाया। इसी क्रम से शेष दिनों के नामकरण हुए। लाखों वर्षों पूर्व नक्षत्रों और राशियों

की स्थिति एवं आकृति भिन्न थी, और आगे भी भिन्न होगी, इसी कारण वैदिक ऋषियों ने नक्षत्रों और राशियों की स्थिति एवं आकृति को आधार न मानकर उनके चक्र एवं गति को प्राथमिकता प्रदान की। कालांतर में विदेशी ज्योतिर्विदों ने भारत के वैदिक ऋषियों से शिक्षा ग्रहण कर नक्षत्रों और राशियों की स्थिति एवं आकृति को आधार मानकर ज्योतिष विद्या को अन्यत्र फैलाया।

प्राचीन वैदिक ऋषि मैत्रेय ने समय की इकाइयों को निम्न प्रकार दर्शाया है। भास्कराचार्य ने भी इन इकाइयों का प्रयोग किया है :

एक वेधा के बराबर	100 त्रुटि
एक लव के बराबर	3 वेधा
एक निमेष के बराबर	3 लव
एक काष्ठा के बराबर	18 निमेष
एक कला के बराबर	30 काष्ठा
एक घटी के बराबर	30 कला, 60 पल, एक नाड़ी
एक पल के बराबर	60 विपल
एक मुहूर्त के बराबर	2 नाड़ी, 2 घटी
एक अहोरात्र अथवा दिन और रात, 24 घंटे	30 मुहूर्त

वैदिक खगोल, गणित और ज्योतिष में त्रुटि समय की सबसे छोटी इकाई है जो कि एक सैकंड के 33750वें हिस्से के बराबर है। उपर्युक्त समय-मापक अभी भी वर्तमान वैदिक खगोल, गणित और ज्योतिष में प्रर्युक्त होते हैं।

VEDIC ERA DYNAMICS / वैदिक कालगणना मापदंड

(वेद, सूर्य सिद्धान्त, मनुस्मृति, योगवासिष्ठ ग्रन्थ, तथा 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अनुसार)



अश्विनी नक्षत्र

ONE KALI/एक कली



एक मन्वन्तर

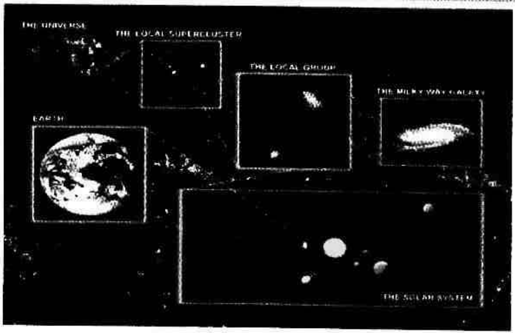
ONE COMPLETE ROTATION OF EART AROUND THE SUN पृथ्वी द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा का माप दंड		KALIYUGA कलियुग	CHATURYUGA चतुर्युग/महायुग	MANVANTAR मन्वन्तर	KALPA कल्प
VEDIC TIMES वैदिक काल में	MODERN TIMES आधुनिक काल में	अश्विनी नक्षत्र की सीधी रेखा में सभी ग्रहों के होने से 'एक कली' कहलाता है। एक कलियुग में ४३२,००० वर्ष होते हैं। द्वापरयुग= X २ कलियुग; त्रेतायुग= X ३ कलियुग; सतुयुग= X ४ कलियुग  Partial alignments of planets occurred on April 23, 2002.jpg	चतुर्युग/महायुग= सतुयुग+त्रेतायुग+ द्वापरयुग +कलियुग अत: एक चतुर्युग अथवा महायुग में कलियुग के ४३२,००० वर्ष, द्वापरयुग के ८६४,०००वर्ष, त्रेतायुग के १,२९६,०००वर्ष, और सतुयुग के १,७२८,०००वर्ष। चतुर्युग के कुल =४,३२०,०००वर्ष	पृथ्वी सहित सौर मंडल की आकाश गंगा अथवा परमेष्ठी मण्डल के चारों ओर एक पूर्ण प्रदक्षिणा करने से एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर का समय=७१ महायुग + एक सतुयुग। अत: एक मन्वन्तर में कुल = ३०८४४८०००वर्ष होते है।	आकाश गंगा सहित अन्य परमेष्ठी मण्डल/ विश्वदेवों (Group of Galaxies) के द्वारा स्वयंभुव मण्डल/ (Super Galactic Region) की एक परिक्रमा करने से एक कल्प होता है। एक कल्प = १००० चतुर्युग = ब्रह्मा का एक दिन = ४,३२०,०००,००० वर्ष
अर्थात् १९७ करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा ३६० दिन में करती थी। इसलिये वैदिक ऋषियों ने एक वृत्त को ३६०° में विभाजित किया था जो अभी तक लागू होता है।	वर्तमान समय में सूर्य के चारों ओर एक चक्कर काटने में पृथ्वी ३६५ दिन, ५ घंटे, ४८ मिनट और ४७.८ क्षण लगाती है।				

वर्तमान समय गणना :

ब्रह्माण्डोत्पत्ति का १५५,५२१,९७२,९४९,१०७वाँ वर्ष; ५१ वें श्वेत वाराह कल्प; सातवाँ मन्वन्तर: वैवस्वत; सृष्टि संवत्/ पृथ्वी पर जीव उत्पत्ति के १,९७२,९४९,१०७ वर्ष; वैदिक सौर वर्ष : २८ वें कलियुग का ५१०७ वर्ष; विक्रम संवत् : २०६२, ज्येष्ठ शुक्ल१४ ; शक संवत् १९२८; मंगल वार, २१ जून, २००५ ईसवी वर्ष A. D.; दक्षिणायन आरम्भ, **Summer solstice: Southward migration of our sun begins.**

ब्रह्माण्ड में पृथ्वी का ठिकाना : अनन्त विश्व में अपना घर

Our Home in the Universe *Where in the Universe do we live?*



ब्रह्माण्ड में हमारा घर - यह चित्र ब्रह्माण्ड में हमारा पता बताता है । पृथ्वी हमारे सौर मण्डल के नौ ग्रहों में से एक ग्रह है। हमारा सौर मण्डल १,००,०००,०००,००० (एक हजार करोड़) से भी अधिक सौर-मण्डलों वाली आकाश-गंगा में से एक है। हमारा आकाश गंगा अनुमानतः ३० आकाश-गंगाओं अथवा परमेष्ठी मण्डल के दो बड़े समूहों में से एक है। हमारा परमेष्ठी मण्डल ब्रह्माण्ड के केन्द्र, स्वयम्भुव के छोर पर स्थित है । आधुनिक विज्ञान की खोज यहाँ समाप्त हो जाती है और ब्रह्माण्ड के एक तिहाई भाग तक ही पहुँच पाती है, किन्तु ब्रह्माण्ड वास्तव में इससे कहीं विशाल है। वैदिक ऋषियों के अनुसार आकाश-गंगाओं अथवा परमेष्ठी मण्डल का झुण्ड ब्रह्माण्ड के महान-केन्द्र, जिसको स्वयम्भुव कहते हैं उसकी परिक्रमा करता है। ऋषियों ने स्वयम्भुव केन्द्र की इस एक परिक्रमा के काल की गणना ४,३२०,०००,००० वर्ष निश्चित की है और उसको ब्रह्मा का एक दिवस अथवा कल्प कहा है।

Modified and adopted from



ब्रह्माण्ड/CELESTIAL UNIVERSE अथवा सृष्टि-यज्ञ COSMIC YAJNYA का अति सामान्य मानचित्र केवल दर्शकों को समझाने हेतु भारतीय कलाकार मोहन लाल शर्मा द्वारा प्रदत्त

प्रश्न-22. कोई भी व्यक्ति समय की इतनी लम्बी संख्याओं को कैसे गिन अथवा याद कर सकता है ?

उत्तर : प्राचीन वैदिक ऋषि, महात्मा और सत्यद्रष्टा सृष्टि-संकुचन और उसके लगातार विस्तार को जानते थे। खगोल शास्त्र, गणित और ज्योतिष विज्ञान भी उनके जीवन के एक अंग थे, जैसे कि वेदों का पढ़ना और पढ़ाना। सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद-भाष्य 1.50.40 में प्रकाश की गति का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ आधे निमेष, एक क्षण के 1500वें भाग में सूर्य की किरण 2202 योजन चलती है (एस॰ आर॰ एन॰ मूर्ति)। 'योजन' के मापदंड निम्नलिखित हैं :

1 योजन	चार कोस
1 कोस	2000 दण्ड
1 दण्ड	2 गज
1760 गज	1 मील
0.621 मील	एक किलोमीटर

अनुमानतः एक योजन नौ मील के बराबर है और प्रकाश आधे निमेष अथवा एक सैकंड के 1500वें भाग में 2202 योजन की गति से चलता है। इस प्रकार प्रकाश की गति 1,87,660 मील प्रति सैकंड हुई। आधुनिक गणना से प्रकाश की गति 186,281,7 मील प्रति सैकंड होती है। 1887 में माइक्लसन तथा मोरली ने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि प्रकाश का वेग 186,281,7 मील प्रति सैकण्ड है। आधुनिक वैज्ञानिक गणना के अनुसार प्रकाश एक वर्ष में 5,874,579,691,000 मील की यात्रा करता है, लेकिन इसे कौन याद कर सकता है? प्राचीन वैदिक शिक्षा-पद्धति के अनुसार गुरुकुलों, तथा पाठशालाओं (पोशालों) में गणितीय सारिणी और दूसरी गणनाओं को प्रतिदिन याद करवाकर विद्यार्थियों को तैयार करते थे।

प्राचीन वैदिक शिक्षा-पद्धति के अनुसार विद्यार्थियों को

गुणात्मक खण्डों सहित इन सारिणियों को स्मरण करवाया जाता है।

प्रश्न-23. ब्रह्माण्ड रचना के अनुसार वर्तमान सृष्टि के विघटन अथवा प्रलय आरम्भ होने में अभी कितना समय शेष है ?

उत्तर : सृष्टि के अन्त में अभी बहुत समय शेष है। जैसे कि प्रश्न 21 में गणना की गई है—नक्षत्र, आकाशगंगा अथवा परमेष्ठी-मण्डल, स्वायम्भुव मण्डल (विश्वदेवों, Galaxies), तथा सौर मण्डल सहित सम्पूर्ण ब्रह्मांड की आयु 31,10,40,00,00,00,000 वर्ष है। एक कल्प की आयु 1000 चतुर्युग, अथवा ब्रह्मा का एक दिन, अर्थात् पृथिवी के सृष्टि/प्रलय-काल की आयु 4.32 अरब वर्ष (4,320,000,000 वर्ष) है। पृथिवी केवल एक कल्प तक ही सृष्टि धारण करने में सार्थक है, उसके पश्चात् धरा वसुंधरा नहीं रहती। अत: वर्तमान पृथिवी पर सृष्टि की समाप्ति से पूर्व 2,347,050,894 वर्ष अभी भी 2005 ई॰ सन् (2005 A.D.) तक बाकी है।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड, के भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक स्टीफन हॉकिंग ने सूर्य की आयु दस अरब वर्ष बतलाई है। इसके पश्चात् सूर्य का इतना फैलाव होगा कि वह पृथिवी को पूरी तरह निगल जाएगा अर्थात् सूर्य पृथिवी को अपने में विलीन कर लेगा।

इन वैदिक आँकड़ों पर किसी को आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए, क्योंकि वैदिक गणना भी ब्रह्माण्ड की आयु को अरबों वर्षों में करती है।

प्रश्न-24. राम-रावण युद्ध कब हुआ था ?

उत्तर : राजा दशरथ और श्रीराम के शासनकाल में ऋषि वाल्मीकि, भारद्वाज आश्रम में रहते थे। वाल्मीकि ऋषि ने काव्यरूप में भी राम के जीवन का वर्णन श्रीराम के राज्याभिषेक समारोह में किया जो कालांतर में 'रामायण' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रामाणिक रामायण केवल वाल्मीकि रामायण ही है, क्योंकि ऋषि

वाल्मीकि श्रीराम के समकालीन थे और उन्होंने स्वयं ही इस ग्रंथ की रचना की थी। वायु पुराण 70/48 सन्दर्भ के अनुसार 'वाल्मीकि रामायण' की रचना त्रेतायुग के दौरान हुई थी। रावण को पराजित हुए March 20, 2004 ई॰ सन् तक 18,149,104 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, March 20, 2004 ई॰ सन् तक कलियुग के 5105 वर्ष पूरे हो गए, उत्तर नं॰ 18 देखें। श्री हनुमान ने लंका की गुप्त यात्रा के दौरान चार दाँतों वाले हाथियों - मेस्टाडोन/Mastadon हाथियों को वहाँ देखा था। ये मेस्टाडोन-हाथी जैसे प्राणी अब समाप्त हो चुके हैं, लेकिन आधुनिक विज्ञान के अनुसार ये मेस्टाडोन हाथी करीब दो करोड़ पाँच लाख वर्ष पहले अस्तित्व में थे। भूगर्भ-विज्ञान के प्रमाण-स्वरूप मानव-निर्मित समुद्री पुल के अवशेष अभी भी 'सेटेलाइट स्टडी' से ज्ञात होते हैं।

रामायण-काल कोई कोरी कल्पना नहीं है। रामायण-काल की वैज्ञानिक ढंग से सप्रमाण पुष्टि की गई है।

नोट : बहुत काल पहले रामायण का अनुवाद थाइलैंड और इण्डोनेशिया इत्यादि अन्य पूर्वी देशों की भाषाओं में हो चुका था। आजकल रामायण अरबी, पर्शियन तथा अंग्रेजी भाषाओं में भी पाई जाती है। वर्तमान में रामायण थाइलैंड ओर इण्डोनेशिया की राष्ट्रीय गाथा है और इन देशों के राष्ट्रीय नाटक भी इसकी पुष्टि करते हैं। इनके सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अध्ययन भी यही सिद्ध करते हैं कि रामायण-काल, महाभारत-काल के बहुत पहले घटित हुआ था। इस सन्दर्भ में पाठकवर्ग पुस्तक के अंत में दिए गए 'कालक्रमानुसार परम्परा' अध्याय अवश्य देखें।

प्रश्न-25. क्या श्री हनुमान मनुष्य थे ?

उत्तर : श्री हनुमान मनुष्य थे—इसमें कोई भ्रांति नहीं है और होनी भी नहीं चाहिए। क्या किसी पशु को श्री की पदवी से सुशोभित किया जाता है? वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में द्वितीय

सर्ग के प्रथम श्लोक में सुग्रीव को 'वीर सुग्रीव' से संबोधित किया गया है। क्या किसी ने बन्दर को 'वीर बन्दर' कहते सुना है? डॉ० रवि प्रकाश आर्य के अनुसार मंगोल जाति के लोगों को उस काल में वानर कहा जाता था। हनुमान तथा सुग्रीव मंगोल जाति के थे। उसी प्रकार हिमाचल में किन्नौर में रहनेवाले लोग किन्नर तथा वर्तमान अफगानिस्थान अथवा गान्धार में रहनेवाले लोगों को गन्धर्व कहा जाता है। उस समय स्थान-भेद से मनुष्यों का नामकरण किया जाता था, जैसे आज भी पंजाब में रहनेवाले को पंजाबी, गुजरात में बसनेवालों को गुजराती आदि। यही स्थिति वैदिक काल में थी, मत्स्य प्रदेश के लोगों को मत्स्य कहा जाता था। उनके क्षेत्रीय नाम का शाब्दिक अर्थ करना यथा वानर का बन्दर, मत्स्य का मछली तथा ॠच्छ का रीछ निहायत मूर्खता होगी। ऐसी भूलें समय-समय पर तथा कथित विद्वान् लोग समझ या न समझकर करते रहे हैं। हनुमान के बन्दर न होकर आदमी होने में अन्य प्रमाण भी हैं—यथा, श्रीराम प्रथम बार हनुमान से मिलने पर उनके वार्तालाप से प्रभावित होकर लक्ष्मण से कहते हैं :

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥

वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड, द्वितीय सर्ग॥28॥

अर्थात् 'हनुमान उच्च कोटि के विद्वान् हैं.......।'

ननु व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड, द्वितीय सर्ग॥29॥

'निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अध्ययन किया है। यही कारण है कि लम्बे समय तक बोलने पर भी इन्होंने भाषागत कोई भी त्रुटि नहीं की है।'

क्या मनुष्य के अतिरिक्त कोई अन्य प्राणी विद्वान् हो सकता

है? क्या कोई अन्य प्राणी व्याकरण का अध्ययन केवल एक बार ही नहीं, परन्तु अनेक बार कर सकता है? अतः मनुष्यो, अपनी बुद्धि से सोचो! भारत के बाह्य आक्रमणकारियों ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को समूल नष्ट करने के प्रयासों से हिन्दुओं के पूर्वजों को बन्दर बनाकर हिन्दुओं के मुँह पर तमाचा मारा है। हिन्दू लोगो! अपने-आपको इतना हीन न करो और न ही अपने अस्तित्व को समाप्त करो।

एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे भारत के विभिन्न प्रान्तों में 'केश' शब्द प्रयुक्त होता है, पर 'बाल' शब्द का प्रयोग सिर के 'केशों' के लिए असम और महाराष्ट्र में अनुपयुक्त एवं अति दूषित है। इन स्थानों में 'बाल' शब्द का प्रयोग गुप्त अंगों के 'केशों' के लिए होता है। इसी तरह हिन्दी के शब्द 'चरण-पाद' के अर्थ को पैर न समझकर अगर आम बोली का, उर्दू भाषा का शब्द 'पाद' समझ लें अथवा अर्थ कर लें तो क्या होगा? इसी प्रकार से मंत्रों/श्लोकों में प्रयुक्त संस्कृत का अनुवाद करते हुए अलग शब्दों का भिन्न भाषाओं में अनुवाद अन्यथा अर्थों को ज्ञापित करता है। अतः संस्कृत शब्द 'वानर' का सन्दर्भ-सहित सही अर्थ 'मंगोल समुदाय के लोगों' से होता है।

हमारे मतानुसार-सन्दर्भ-सहित सही संस्कृत शब्द के अर्थ 'वानर' अथवा 'वो नर' को उपयोग में न लेकर हिन्दी के शब्द 'बन्दर' का प्रयोग करके स्याम, चम्पा, इण्डोनेशिया आदि देशों के 'मंगोल समुदाय के लोगों' की भर्त्सना की गई है, जबकि मंगोल समुदाय के स्याम, चम्पा, इण्डोनेशिया आदि देशों के लोग, करोड़ों वर्ष पश्चात् अभी भी 'श्रीराम और सीता माता' की गाथा को आनन्द से गाते हैं और 'सीता माता' से आशीर्वाद भी माँगते हैं। इससे बढ़कर ज्वलन्त उदाहरण विश्व के इतिहास में नहीं मिल सकता!

संस्कृत शब्द 'वानर' का यहाँ सन्दर्भ-सहित अर्थ 'वो नर'

अर्थात् 'मंगोल समुदाय के लोगों' से होता है।

प्रश्न-26. महाभारत-युद्ध और कलियुग का प्रारम्भ कब हुआ?

उत्तर : 3138 ई० पू० द्वापर युग में महाभारत-युद्ध हुआ था। महाभारत-युद्ध के 36 वर्ष पश्चात् जब योगेश्वर श्रीकृष्ण ने पार्थिव शरीर को त्यागा, तब से कलियुग आरम्भ हुआ। कलियुग के प्रथम वर्ष का पहला महीना प्रमाथी कहलाता है, जो कि 5106 वर्ष पहले 3,102 ईसा पूर्व 20 फरवरी, प्रात:काल के दो बजकर 27 मिनट और 30 सैकंड पर आरम्भ हुआ। ईसा-काल में परवर्ती 21 मार्च 2004 को कलियुग ने 5106वें वर्ष में प्रवेश किया है। 1582 ईसवी में पोप ग्रैगरी त्रयोदश (xiii) ने ग्रिगेरियन कैलेंडर लागू किया, परन्तु पुराने क्रिश्चियन-जुलियन कैलेंडर और ग्रिगेरियन में विसंगति होने के कारण कलियुग की सही तिथि ईसा-काल से मेल नहीं खाती है। ग्रिगेरियन कैलेंडर आजकल एक मुख्य कैलेंडर अथवा तिथिपत्र माना जाता है, और केवल लकीर के फकीर रसियन ऑर्थोडॉक्स चर्च से प्रभावित स्थानों को छोड़कर विश्व के अधिकतर देशों में अपनाया जाता है।

नोट—पुस्तक के अंत में दी गई समय-सारिणी (चार्ट) विश्व के धर्मों का तुलनात्मक अध्ययनरत विद्यार्थियों के संदेह को दूर कर सकती है। इस सारिणी से यह भी जाना जा सकता है कि यहूदी-हिब्रु-ज्यूइश वर्ष ईसा के 3761 पूर्व (बी०सी०) आरम्भ हुआ था। चीनी वर्ष का आरम्भ ईसा सन् के 2698 वर्ष पहले हुआ। पर्सियन या जोरोष्ट्रियन वर्ष का आरम्भ ईसा के 1850 वर्ष पूर्व हुआ था। इसी प्रकार जैन या महावीर वर्ष ईसा के 536 वर्ष पूर्व एवं विक्रम-काल या संवत् का प्रारम्भ 57 वर्ष ईसा-पूर्व हुआ था। ईसा के बाद के वर्षों (A.D.) के कैलेंडरों को संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है। शक संवत् अथवा शक वर्ष का प्रारम्भ ईसा के 78 वर्ष बाद, मुहम्मद या मुस्लिम वर्ष का प्रारम्भ ईसा

के 580 वर्ष बाद और सिक्ख या गुरु नानक वर्ष का प्रारम्भ ईसा के पश्चात् 1469 में हुआ था।

जब यहूदी-हिब्रु-ज्यूइश एवं चीनी वर्ष-काल, क्रिश्चियन कैलेंडर के पहले विद्यमान हो सकते हैं, तब पाश्चात्य विद्वानों को हिन्दू वर्ष के प्रारम्भ को मानने में आपत्ति क्यों होती है? हिन्दू सभ्यता के द्वारा माने गए काल-गणना के मापदण्डों की अवहेलना भी पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई एवं ऐतिहासिक प्रामाणिक दस्तावेजों को भी इन्होंने मानने से इन्कार कर दिया, जबकि इस दिशा में मिश्रित सभ्यताओं के सन्दर्भ तथा खुदाई में प्राप्त अवशेष अब भी प्रमाण के रूप में मिल रहे हैं, जिनसे हिन्दू वर्ष के प्रारम्भ की पुष्टि होती है। इस प्रकार के प्रमाणों का विवरण भी इस पुस्तक के अध्याय 9 में दिया गया है।

द्वापर युग में 3138 ईसा- पूर्व महाभारत युद्ध हुआ था। योगेश्वर श्रीकृष्ण के पार्थिव शरीर त्यागने के समय से कलियुग अथवा युगाब्द का प्रारम्भ ईसा- पूर्व 3102 में हुआ था।

प्रश्न-27. आर्य शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर : योगी अरविन्द घोष ने 'आर्य' शब्द की परिभाषा इस प्रकार से दी है : 'वह व्यक्ति जिसका जीवन भलीभाँति संयमित है, जो साहस के साथ, विनम्रता, पवित्रता, मानवता, तथा करुणा के साथ गरीबों और निर्बलों की रक्षा करने की क्षमता रखता है, जो सामाजिक कर्तव्यों का पालन और विद्वानों का आदर करने वाला है। ऐसे सभ्य एवं श्रेष्ठ व्यक्ति को ही आर्य कहते हैं।'

आर्य का सरल अर्थ 'श्रेष्ठ' है। सही नामकरण 'आर्य' है, न कि आर्यन्।

वाल्मीकि रामायण में सीतादेवी ने श्रीराम को 'आर्य' से सम्बोधित किया था। श्री वेदव्यास ने 'आर्य' शब्द का अर्थ महाभारत ४.४2.83 में इस प्रकार किया है :

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं, न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्मतोऽस्मीति करोत्यकार्यं, तमार्यशीलं परमाहुरार्याः॥
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं, नान्यस्य दुःखे भवति विषादी।
दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं, स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः॥

'आर्य वह है जो कि न तो घमण्डी है, न ही शत्रुता को उकसाता है, और न ही मुसीबतों में निराश होता और न ही असावधानी से कार्य करता है। आर्य न तो अभिमानी होता है, न ही किसी का शोषण करता है, न ही निष्कृट कार्य करता है। उसके बारे में तो यही कहा जाएगा कि उसमें सत्पुरुष के स्पष्ट लक्षण विद्यमान हैं।'

निम्न जनश्रुति 'आर्य' के गुणों की सरल व्याख्या करती है:

ज्ञानी तुष्टश्च दांतश्च, सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालुर्नम्रश्च स्यादार्योष्टभिर्गुणैः॥

आर्यजन के आठ गुण :

1. वेदों का ज्ञाता।
2. हर स्थिति में सन्तोष भाव को अटल रखनेवाला।
3. विपत्ति में आत्म-नियन्त्रण रखनेवाला।
4. सत्यवादी।
5. इन्द्रियों को वश में रखनेवाला।
6. स्वभाव से दानी दाता।
7. विनम्र।
8. उदार हृदय वाला।

वास्तव में 'आर्य' शब्द मनुष्यों के गुणों का द्योतक है। ब्रिटिश लोग 'आर्य' शब्द का केवल अशुद्ध रूप आर्यन् ही नहीं कहते थे बल्कि मनघड़न्त मिथ्या धारणा फैलाकर कहा कि 'आर्यों ने भारत पर आक्रमण करके अपनी संस्कृति और सभ्यता को उत्तरी भारत में स्थापित किया था।' अंग्रेजों ने यह मिथ्या धारणा अपने

शासन के दौरान इसलिए फैलाई कि भारतीय यह नहीं कह सकें कि ब्रिटिश विदेशी हैं और कोई भी भारतीय उन्हें भारत छोड़ने पर मजबूर न कर सके, क्योंकि आर्य लोग भी बाहर से आए विदेशी लोग हैं। विस्तृत रूप से 'विकृत कालक्रम अध्याय' देखिए। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति द्वारा एक और भ्रान्त धारणा फैलाई कि "दक्षिण भारत के 'द्रविड़' एक दूसरी जाति के हैं।" उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार इस झूठी बात का प्रयोग करके ही किया। 'द्रविड़' शब्द का शुद्ध अर्थ 'दैवीय समृद्धि' है। 'द्रविड़' लोग उनको कहते हैं जो समृद्धि से परिपूर्ण हैं। द्रविड़ वे हैं जिनके पास धन-दौलत, सम्पत्ति और वैभव है, देखें उत्तर 49, "**परद्रव्याणि लोष्ठवत्**। (चाणक्य नीति 12.13) '**पर** का अर्थ **पराया** और **द्रव्याणि** का अर्थ धन' होता है। प्राचीन समय से विद्वान लोग धन-धान्य से सम्पन्न व्यक्ति को 'द्रविड़' तथा महाशय/महानुभाव/सत्पुरुष और श्रेष्ठ व्यक्ति को 'आर्य' शब्दों से सम्बोधित करते रहे हैं।

अथर्ववेद के मंत्र 12.5.8-10 ने धर्म को परिभाषित करते हुए 'द्रविणम्' का वर्णन 'दिव्य समृद्धि' किया है। अथर्ववेद का एक अन्य मंत्र 19.71.1 भी इसी अर्थ 'धन और सम्पत्ति' की पुष्टि करता है, जैसे नीचे दर्शाया गया है :

स्तुता मया वरदा वेंदमाता प्रचोंदयन्तां पावमानी द्विजानांम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रंजत ब्रह्मलोकम्।। अथर्व॰ 19.71.1

इसी प्रकार 'पाण्डव गीता' के श्लोक 28 में कहा है :

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।'

'द्रविणम्' की परिभाषा में 'जीवन को सुखी और समृद्धिपूर्ण'

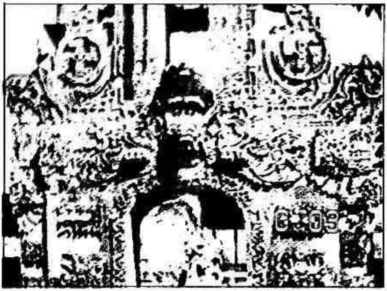
दर्शाया गया है, देखें अध्याय 2, दैनिक पारिवारिक प्रार्थनाएँ।

अतः द्रविड़, आर्य आदि शब्दों को किसी क्षेत्र-विशेष से सम्बद्ध करके देखना अथवा इनका क्षेत्रीय नामकरण करना निहायत भूल है, साथ ही ऐतिहासिक एवं सामाजिक अन्याय भी। ऐसी भूलें समय-समय पर विद्वानों ने जान-बूझकर अथवा नासमझी से की हैं। 'आर्य' शब्द मनुष्यों के रूप-रंग, जाति-प्रजाति की ओर संकेत नहीं करता। वैदिक लोग समृद्ध-वैभवशाली-धनवान् व्यक्ति को 'द्रविड़' और श्रेष्ठ व्यक्ति को 'आर्य' शब्दों से सम्बोधित करते आए हैं।

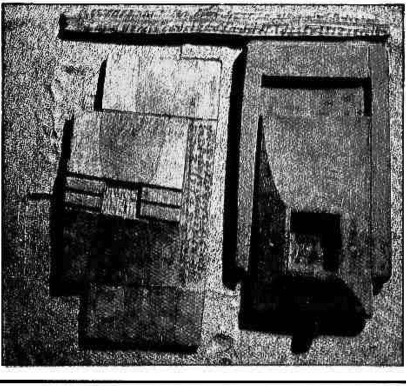
प्रश्न-28. स्वस्ति या स्वस्तिक ('卐') किसको कहते हैं ?

उत्तर : स्वस्ति (सु + अस्ति = अच्छा है) का अर्थ शान्ति, उन्नति और समृद्धि है। स्वस्ति का द्योतक खरोष्ठी लिपि में चौकड़ी जैसा चिह्न '卍' है। इसका विपरीत दिशा में अंकित कर रहा भुजाओं वाला चिह्न '卐' भी स्वास्तिक है। स्वस्तिक शब्द अपभ्रंश है। खरोष्ठी लिपि अब लुप्तप्राय हो चुकी है, परन्तु स्वस्ति का '卍' अथवा '卐' चिह्न विश्व के सभी हिन्दुओं को मान्य है। किसी भी उत्सव अथवा शुभ अवसर के प्रारम्भ में स्वस्ति '卍' अथवा '卐' को समृद्धि दिलानेवाले चिह्न के रूप में बनाया जाता है। **(प्रश्न संख्या 10 भी देखें)**

निम्न चित्र में इण्डोनेशिया (बाली) द्वीप-स्थित नौवीं शताब्दी के एक हिन्दू मंदिर के पत्थर के मेहराबदार द्वार के दोनों ओर बने स्वस्ति '卍' '卐' के चिह्न :



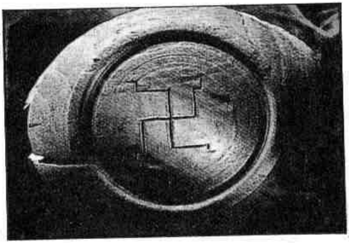
ईसवी सन् की नौवीं शताब्दी के आसपास बना पत्थर का विशालकाय हिन्दू मंदिर जो अभी भी बाली द्वीप इण्डोनेशिया में स्थित है, उसके मुख्य द्वार पर घड़ी के हाथों की सही दिशा में '卐' और घड़ी के हाथों की विपरीत दिशा में '卍' स्वस्ति के चिह्न अंकित हैं।



मध्य एशिया में किरगिस्तान के समीप निया जिंगयांग में ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी की खरोष्ठी लिपि, अरामिक मूल की भारतीय वर्णमाला।



प्राचीन संसार का सिल्क मार्ग, पुरातात्त्विक उत्खनन के स्थान 'निया' जिंगयांग को प्रदर्शित करता हुआ।



ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी का काष्ठ कटोरे पर अंकित स्वस्ति चिह्न, जो मध्य एशिया के प्राचीन सिल्क मार्ग पर स्थित 'निया' नामक जगह से प्राप्त हुआ।

'द नेशनल ज्योग्राफिक मैगज़ीन' वॉल्यूम 189, नं॰ 3, मार्च 1996 अमेरिका की प्रसिद्ध भौगोलिक पत्रिका है। इस अंक में विश्व के प्राचीन रेशम उद्योग के मार्गों का पता लगाते समय 'जो सिल्क मार्ग का खोया हुआ हिस्सा मध्य काल में मध्य एशिया से होकर गुजरता था, उस रास्ते के आसपास मिली कब्रों की खुदाई में प्राप्त वस्तुओं पर स्वस्ति के चिह्न मिले।' पुरातात्त्विक उत्खनन से पाई गई जो कब्र 'निया' नामक गाँव के पास मिली है, उस कब्र को खोदने पर लकड़ी का एक कटोरा पाया गया। उस कटोरे पर घड़ी के हाथों की विपरीत दिशा की ओर इंगित करता स्वस्ति का चिह्न नक्काशीदार तरीके से दिखता है। इसका अर्थ यह है कि स्वस्ति का चिह्न '卍' भी मध्य एशिया के मध्य-काल में प्रचलित एवं मान्य था।

इस 'निया' जगह से प्राप्त एक लकड़ी के छोटे दरवाजे पर की गई चित्रकारी में ठीक उसी प्रकार से भारतीय हाथियों को दर्शाया गया है, जिस प्रकार राजस्थान के नगरों एवं गाँवों में रहने वाले लोगों के प्रांगण में वर्तमान समय में हाथियों की चित्रकारी देखने को मिलती है।

ब्रिटेन के पुरातत्त्ववेत्ता सर ओरेल स्टेइन को 1900 शताब्दी के प्रारम्भ में खरोष्ठी लिपि में लिखे गए 'सैकड़ों काष्ठ पत्रक' भी मिले हैं। खरोष्ठी लिपि ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी की अरामिक मूल की भारतीय वर्णमाला है। ये पत्रक (प्रलेख) प्राय: प्राचीन सिल्क मार्ग के व्यापार में प्रयोग किए जाते थे।

नोटः 'आर्य तथा स्वस्ति' की विशुद्ध भावना को कुछ स्वार्थी लोगों ने तोड़-मरोड़ दिया है। आर्य तथा स्वस्ति के इन तोड़े-मरोड़े अर्थों का प्रयोग कुछ समूहों एवं देशों ने अपने स्वार्थ हेतु भी किया है। ये विशेष ग्रुप/समूह जर्मनी तथा अमेरिका के ऐरियन ग्रुप्स, स्कीन हेड्स, क्लूक्लाक्स क्लान' इत्यादि हैं। अब भी ये समूह इन पवित्र नामों तथा चिह्नों को बदनाम करते हैं।

परमात्मा करे इन ग्रुप/समूहों को आत्मज्ञान मिले, ताकि ये समझ पाएँ कि आर्य का अर्थ 'एक सभ्य, महान्, श्रेष्ठ व्यक्ति' और स्वस्ति का अर्थ 'शान्ति, उन्नति एवं समृद्धि' होता है. उत्सव अथवा शुभ अवसर के प्रारम्भ में सफलता और समृद्धि के स्वस्ति चिह्न '卍' अथवा '卐' विश्व के सम्पूर्ण हिन्दुओं द्वारा सर्वमान्य हैं।

प्रश्न–29. वह कौन–सा मंत्र, श्लोक, सूक्त अथवा वेद की ऋचा है, जो सभी हिन्दुओं द्वारा प्रार्थना रूप में बालक/बालिका को शिक्षा के प्रारम्भ में सिखाया जाता है ?

उत्तर : वेद का प्रसिद्ध मन्त्र अथवा ऋचा 'गायत्री मन्त्र' है जो कि प्रार्थना रूप में सभी समूहों द्वारा स्वीकृत है। 'गायत्री मन्त्र' नीचे दिया गया है:

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। —ऋ॰ 3.63.10; यजु॰ 36.3

परमेश्वर! आप प्राणस्वरूप, दुःखहर्ता, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सुखस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, सृष्टि–रचयिता और सर्वपालक हैं। हम आपके शुद्ध विज्ञानमय, वरणीय, दिव्य ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करते हैं। आप कृपया हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए।

प्रश्न–30. अग्निहोत्र अथवा हवन क्या है ?

उत्तर : अग्निहोत्र अथवा हवन एक धार्मिक रीति है। इसको एक वैज्ञानिक प्रक्रिया भी कह सकते हैं। इसमें रोगनाशक, सुगन्धित, मिष्टगुणयुक्त और पुष्टिकारक पदार्थ, जैसे शुद्ध घी और विविध जड़ी–बूटियों के बने मिश्रण को, प्रभु का आह्वान करते हुए, मन को भक्ति–भाव से केन्द्रित करते हुए, अग्नि में डालते हैं। अग्नि इन पदार्थों के सूक्ष्म आन्तरिक कणों को वातावरण में वितरित कर देती है। इन आयुर्वेदिक पदार्थों के सुगन्धित और रोगनाशक गुण दूर–दूर तक हवा के साथ फैल जाते हैं। उदाहरण के तौर पर अगर लाल मिर्च घर के किसी कोने में पड़ी रहे तो

उसका पता नहीं चलता, किन्तु थोड़ी-सी मिर्च अगर आग में डाल दी जाए तो पूरे वातावरण में मिर्च की गंध का प्रभाव तुरन्त फैल जाएगा, क्योंकि अग्नि ने मिर्च के गुण को अति सूक्ष्म करके दूर-दूर तक फैला दिया है। इसी प्रकार सुगन्धित, रोगनाशक और पोषक गुण वाले द्रव्यों को अग्नि में समर्पित करने से जल, वायु आदि की शुद्धि एवं रोगनिवारणता तथा पोषकता प्राप्त होती है। इन पदार्थों को अग्नि में समर्पित करने के साथ-साथ कुछ वैदिक मन्त्र बोले जाते हैं तथा समिदाधान, जलप्रोक्षण आदि विधि की जाती है, जिनके साथ बहुत-से मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक लाभ भी हैं। **यह सम्पूर्ण प्रक्रिया हवन, अग्निहोत्र या होम कही जाती है तथा महायज्ञ के अन्तर्गत समाविष्ट होती है।** इसके पूरे लाभ तथा प्रक्रिया जानने के लिए बहुत-सी पुस्तकें उपलब्ध हैं। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के कैमिस्ट्री विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० सत्यप्रकाश ने 'अग्निहोत्र में डाले जाने वाले पदार्थों का वातावरण पर क्या-क्या रासायनिक सुप्रभाव होता है' इसका विस्तृत विश्लेषण किया है तथा निष्कर्ष रूप में प्रतिपादित किया है कि अग्निहोत्र की प्रक्रिया पर्यावरण तथा रोगनाशक गुणों से पूर्ण स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी है।

विकास की आड़ में मानव को वातावरण का बलिदान नहीं करना चाहिए, बल्कि वातावरण के साथ सामंजस्य बिठाकर सुखी, स्वस्थ, यश एवं शान्तिमय जीवन जीना चाहिए—यही अग्निहोत्र अथवा हवन का सन्देश है।

वैदिक साहित्य में 'अग्नि' के बहुत-से अर्थ हैं। भौतिक अर्थ के अलावा आध्यात्मिक रूप से 'अग्नि' परमात्मा (अग्रे नयति, अग्रणी भवति, अग्रं प्रापयति इति वा) का नाम भी है। 'ओ३म्' का प्रथम स्वर 'अ' अग्नि के रूप को बताता है, जो कि स्वयं उज्ज्वल, देदीप्यमान, ज्योतिरूप, प्रकाशवान् है। पल-भर से भी कम समय में सब-कुछ जाननेवाला ही परमात्मा, सर्वेश्वर, सर्वज्ञ

और दिव्य है। (ऋग्वेद 1.1.1, 1.24.1, 1.24.2, 8.44.23, 30.2.1, 1.164.46)।

अग्निहोत्र के दौरान प्रत्येक व्यक्ति भगवान् के इन गुणों को याद कर स्वयं को इन गुणों से ओतप्रोत करने की कोशिश करता है। आध्यात्मिक रूप से अग्निहोत्र व्यक्ति को परमात्मा की अनुभूति के समीप लाने में सहायक होता है। अग्निहोत्र का धार्मिक अनुष्ठानों में बड़ा महत्त्व है। बगैर अग्निहोत्र के हिन्दू धर्म में कोई संस्कार पूर्ण नहीं हो सकता।

प्रश्न-31. यज्ञ और यज्ञशेष क्या हैं ?

उत्तर : धर्म की तरह, **'यज्ञ'** संस्कृत शब्द है, जिसका अंग्रेजी अनुवाद करना कठिन है। यज्ञ के अनेक अर्थ हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'**, जो नि:स्वार्थ, रचनात्मक कार्य, समाज की समृद्धि के लिए सामूहिक रूप से अथवा स्वयं के सतत प्रयत्न द्वारा किया जाता है, उसे 'यज्ञ' कहते हैं। सतत परोपकारी कार्य के द्वारा ही सर्वव्यापक परमात्मा की सेवा होती है। **'यज्ञ देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** के अनुसार 'यज्ञ ही देव-पूजा, संगतिकरण, और दान है। **'अयं यज्ञस्तु भुवनस्य नाभिः'**-सम्पूर्ण ब्रह्मांड अथवा सृष्टि का केन्द्र यज्ञ है, अर्थात् यज्ञ पर सृष्टि आधारित है। **'यत्र यज्ञो तत्रैव जीवनम्'** यज्ञ ही जीवन है, कारण-नि:स्वार्थ, रचनात्मक सामाजिक कार्य अगर न होगा तो समाज की समृद्धि नहीं हो सकती।

यज्ञ का भौतिक महत्त्व : अग्निहोत्र को भी यज्ञ से सम्बोधित करते हैं। जो पदार्थ अग्निहोत्र में डाला जाता है वह नष्ट नहीं होता, परन्तु प्रज्वलित अग्नि उसे सूक्ष्म रूप से सब जगह फैला देती है। अग्नि का काम ही स्थूल पदार्थ को सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में परिवर्तित कर देना है।

यज्ञ का व्यक्तिगत महत्त्व : यज्ञ का तात्पर्य देवपूजा, संगतिकरण व दान है। यज्ञ करते समय, सज्जन पुरुषों, साधु-संतों

की उपस्थिति -प्रवचन-संगति से मनुष्य सत्कर्म की ओर प्रवृत्त होता है, इससे अपराध प्रवृत्ति कम होती है व सामाजिक सुधार होता है।

यज्ञ का सामाजिक महत्त्व : यज्ञ में दिए गए दान से, सामाजिक कार्य करनेवाली संस्थाएँ सुचारु रूप से चलती हैं। **बलिवैश्वदेव यज्ञ से समाज के निर्धन, भूखे, असहाय लोगों की देखभाल होती है, उन्हें सहारा मिलता है। आजकल जो भारतवर्ष में निर्धन, अशिक्षित, असहाय लोगों का बलात् व लोभ से धर्म-परिवर्तन हो रहा है, यदि प्रत्येक व्यक्ति बलिवैश्वदेव यज्ञ प्रतिदिन करे, अपना दैनिक सामाजिक सेवा का कर्तव्य पूर्ण करे, तो समाज में हो रहे इस अनैतिक धर्म-परिवर्तन को भलीभाँति सुगमता से रोका जा सकता है। इन समस्याओं का समाधान भी स्वतः ही प्रतिदिन बलिवैश्वदेव यज्ञ करने से हो सकता है।**

यज्ञ का आध्यात्मिक महत्त्व : यज्ञ में देवपूजा-ईश्वर की प्रार्थना, उपासना का भी बहुत महत्त्व है। उपासना (उप=पास, आसना अर्थात् बैठना) का अर्थ है ईश्वर के समीप बैठना। प्रतिदिन व्यक्ति जब 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव'-'हे ईश्वर! मेरे समस्त दुर्गुण व बुरी आदतें दूर कीजिए' व 'अग्ने नय सुपथा'-'हे प्रभो! आप हमें सन्मार्ग पर चलाइए' जैसी प्रार्थना करेगा, तो निश्चित ही व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति होगी, इसलिए यज्ञ का दैनिक जीवन में बहुत महत्त्व है।

यज्ञ शब्द का आंग्ल भाषा में जान-बूझकर दूषित अनुवाद 'Sacrifice' किया गया है, जिसका अर्थ 'कत्ल करना' अथवा 'पशु काटना' होता है। अगर हम इसी प्रकार से क्रिश्चियन रिलिजन के 'Holy Ghost' का अनुवाद 'पवित्र भूत-पिशाच' करें तो क्या क्रिश्चियन रिलिजन के अनुयाइयों को मान्य होगा ?

आंग्ल भाषा में यज्ञ का शुद्ध अनुवाद Benevolence होता है।

यज्ञशेष : किसी भी प्रकार का महत्त्वपूर्ण लाभ जो धार्मिक अनुष्ठान (religious ceremony) के पश्चात् बच जाता है, उसे 'यज्ञशेष' कहा जाता है। गीता में श्रीकृष्ण ने यज्ञशेष वितरण करने को ही वास्तविक समर्पण अथवा धर्म कहा है। यज्ञशेष–वितरण के विषय में एक ऐतिहासिक प्रसंग द्रष्टव्य है: सातवीं शताब्दी में चीनी दूत ह्वेनसांग ने जब भारतवर्ष की यात्रा की, तो उसने सम्राट हर्ष को यज्ञशेष के रूप में अपना सर्वस्व दान देते हुए देखा। सम्राट हर्ष प्रतिवर्ष इस प्रकार अपनी सारी सम्पत्ति यज्ञ–पश्चात् यज्ञशेष के रूप में विद्वानों को दान दिया करते थे।

सरल भाव में यज्ञ का अर्थ है 'मानवता की सेवा के लिए निःस्वार्थ कार्य एवं प्रयास'। सतत परोपकारी कार्य के द्वारा ही सर्वव्यापक परमात्मा की सच्ची सेवा होती है। इस निःस्वार्थ सतत प्रयास करने के पश्चात् भी जो परोपकार बच जाता है वह 'यज्ञ–शेष' कहलाता है। श्रीकृष्ण ने गीता में 'इस यज्ञशेष' को भी प्रभु को समर्पित करने के लिए कहा है।

प्रश्न–32. अश्वमेध यज्ञ क्या है ?

उत्तर : इसको समझने के लिए सर्वप्रथम हमें 'अश्वमेध' शब्द का वास्तविक अर्थ जानना होगा। अश्वमेध शब्द में मूल शब्द 'अश' है। शतपथ ब्राह्मण (S.B. xiii 2.11.15.17) के अनुसार 'अश' (अशूङ् व्याप्तौ) शब्द का अर्थ 'सर्वव्यापक' होता है। 'अश' शब्द से अश्व शब्द निकला है। 'अश्व' शब्द उस परमात्मा का नाम है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। 'मेध' शब्द का अर्थ है–बाँटक। अतः अश्वमेध का अर्थ हुआ–प्रभु के साम्राज्य का अथवा परमात्मा की शक्ति का प्रत्येक व्यक्ति के हित हेतु उपयोग करना अर्थात् समाज में विस्तार करना। प्रजा द्वारा वह क्रियात्मक उदार प्रयास जो कि जनजीवन में समृद्धि लाता है 'अश्वमेध यज्ञ' कहलाता है।

'जब प्रजा राज्य के कार्यों में यज्ञ की भावना से भाग लेती है,

तब देश का सुयश चारों दिशाओं में फैल जाता है।' यही अश्वमेध यज्ञ का असली अर्थ है, न कि अश्वों को मारना है।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, 411

प्रत्येक शब्द का उपयुक्त अर्थ करने से ही वाक्यार्थ का सही ज्ञान होता है। जैसे हिन्दी के 'बाल' शब्द का भारत के भिन्न-भिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ होता है, इसी तरह लोगों ने 'अश' के ऊपर लिखे संस्कृत के सन्दर्भ- सहित सही अर्थ को उपयोग में न लेकर, अपितु हिन्दी के 'घोड़ा' शब्द से संस्कृत के मंत्रों/श्लोकों के अर्थ का अनर्थ कर दिया है। 'यज्ञ में घोड़े काटना' के दूषित अर्थ कर 'अश्वमेध यज्ञ' के प्रति निकृष्ट धारणा अथवा भ्रान्ति पैदा की है। यह केवल अज्ञान का ही द्योतक है। जो लोग सोचते हैं कि हवन/यज्ञ करते समय घोड़े की बलि देना ही 'अश्वमेध यज्ञ' कहलाता है, उनका यह निरा दूषित भ्रम ही है।

यहाँ पर यह बताना भी उपयुक्त है कि अन्त्येष्टि संस्कार, संस्कारों की श्रेणी में अन्तिम संस्कार है, इसको नरमेध या पुरुषमेध यज्ञ भी कहा जाता है। इस सन्दर्भ में 'नरमेध अथवा पुरुषमेध' शब्दों का अर्थ 'व्यक्ति को काटना' नहीं होता, परन्तु मृत्यु के बाद दाह संस्कार करना है। अंतिम संस्कार के लिए उत्तर 33 को भी देखें।

महान् ऋषि वेदव्यास ने भी महाभारत में 'अश्वमेध यज्ञ' की निम्न प्रकार से व्याख्या की है -

पृथिवी दक्षिणा चात्र विधिः प्रथमकल्पितः।
विद्वद्भिः परिदृष्टोऽयं शिष्टो विधिविपर्ययः॥

—महाभारत 14.11.30

'अश्वमेध यज्ञ में सारी भूमि समाज में आवंटित कर दी जाती है। सभी विद्वानों का यही मुख्य उद्देश्य है कि संसार में सभी धनधान्य से समृद्ध होवें।'

यही विधान अश्वमेध यज्ञ की भावना का प्रतीक है। श्रीराम

ने लोकतांत्रिक तरीके से शासन किया। उन्होंने अपने मंत्रिमंडल से और उनसे अलग सहयोगी जनों के साथ भी लोकतांत्रिक विषयों पर विचार-विमर्श किया और इस प्रकार की कार्य-प्रणाली को भी पूर्ण स्वीकृति दी। रावण का विनाश करने के पश्चात् उन्होंने अनेक क्षेत्र के राजा लोगों से मिलकर लोकतांत्रिक राज्य के सभी नागरिकों की उन्नति के लिए एक अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था। इसी कारण थाई, चम्पा, कम्बोडिया इत्यादि देशों के बौद्ध लोग, इन्डोनेशिया के मुसलमान तथा भारत के लोग श्रीराम तथा उनके अश्वमेध यज्ञ पर अभी भी पूरी श्रद्धा रखते हैं, अत: हमारे द्वारा कम से कम अश्वमेध यज्ञ का सही अर्थ जानना और दूसरों को जनाना अत्यन्त आवश्यक है।

यथार्थ में 'अश्वमेध यज्ञ' का अर्थ प्रजा द्वारा राज्य में क्रियात्मक भाग लेना है, जिससे जनजीवन में समृद्धि हो। 'अश्वमेध यज्ञ' लोकतांत्रिक राज्य के सभी नागरिकों की उन्नति के लिए किया जाता है। इसे साधारण तौर पर Democratic अथवा प्रजातांत्रिक राज्य की संज्ञा दे सकते हैं।

अश्वमेध यज्ञ का एक और रूप प्राचीनकाल में प्रचलित था—चक्रवर्ती राजा अपनी प्रभुसत्ता की परख के लिए सभी दिशाओं में कुछ घुड़सैनिकों के साथ अश्व को सजाकर अपने राज्य के 'सांकेतिक चिह्न' अथवा Mascot के रूप में भेजते थे। जो भी इस अश्व को रोक/पकड़ लेता तो उसे challenge अथवा युद्ध के लिए ललकारना होता था। युद्ध के द्वारा विजय प्राप्त कर अपनी प्रभुसत्ता पुन: स्थापित करने का यह अनुपम उपाय था। श्रीराम के द्वारा छोड़े गए अश्व को लव और कुश ने पकड़ लिया था—यह ऐतिहासिक प्रसंग सर्व-विदित है।

प्रश्न-33. हिन्दुओं में कितने धार्मिक अनुष्ठानों अथवा संस्कारों का विधान है ?

उत्तर : मनुष्य के जीवन में व्यक्तिगत उन्नति हेतु धार्मिक

अनुष्ठानों अथवा संस्कारों का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसमें सोलह संस्कार मुख्य हैं (मनु 2/2, 2/4, 2/5-8, 2/9, 2/35, 2/11-43, 2/44-224, 2/40, 3/1-3, 3/4-62, 3/67-286, 5/167, 6/1.32, 6/33-97, 12/82-125)।

व्यक्ति की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति के लिए धार्मिक अनुष्ठानों का प्रादुर्भाव हुआ। मनुष्य की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति के लिए जो धार्मिक अनुष्ठान होते हैं, उन्हें संस्कारों के नाम से पुकारा गया है। जीवन की सार्वभौम उन्नति हेतु संस्कारों का विधान मनु ने बनाया।

जीवन के प्रत्येक मोड़ पर प्राप्त अस्तित्व की नई स्थिति को स्वयं, परिवार, समाज द्वारा अपनाने अथवा मान्यता प्राप्त करने या कराने के लिए जो धार्मिक सामाजिक अनुष्ठान किया जाए, उसे 'संस्कार' कहते हैं। जीवन की अभिवृद्धि करने में यह अद्वितीय 'व्यक्तिकरण संस्कार क्रिया' व्यक्तित्व के विकास एवं समृद्धि में सहायक सिद्ध होती है। 'संस्कार' मनुष्य को सार्वभौम विकास के लिए तैयार करता है। जीवन के शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक तथा आध्यात्मिक पहलुओं का बढ़ावा संस्कार देता है। अनुष्ठान जीवन के प्रारम्भ से जीवन के अन्त तक व्यक्ति की भूमिका का समाज में मार्ग निर्धारित करते हैं। संस्कार-विधि को पूर्ण करने में अग्निहोत्र अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और प्रत्येक संस्कार मनुष्य को अगले पड़ाव के लिए तैयार करता है।

संस्कारों का महत्त्व :

संस्कार की परिभाषा देते हुए चरक ऋषि ने कहा है **'संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते'** अर्थात् संस्कार विद्यमान दुर्गुणों को हटा कर उसकी जगह सद्गुणों को विकसित कर देने का नाम है। जन्म के समय मानव दो प्रकार के संस्कार साथ लेकर आता है--प्रथम प्रकार के वे, जो जन्म-जन्मान्तरों से साथ लाता है, एवं दूसरे प्रकार

के वे संस्कार जो वंश-परम्परा (माता-पिता) से प्राप्त करता है। धीरे-धीरे जब बड़ा होता है, तब वातावरण से भी बहुत सीखता है। इस प्रकार ये संस्कार अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के हो सकते हैं। जीवन में सोलह बार मानव को बदलने का, उसके नव-निर्माण का प्रयत्न संस्कारों द्वारा किया जाता है। व्यक्ति-निर्माण की वास्तविक योजना संस्कारों द्वारा ही पूरी की जा सकती है। ये सोलह संस्कार निम्न हैं :

1. गर्भाधान/सृजन संस्कार : गर्भावस्था की मान्यता ही सृजन संस्कार है। विवाह उत्सव के पश्चात् स्त्री द्वारा गर्भ धारण होने की प्रारम्भिक अवस्था को मान्यता देने हेतु जो धार्मिक अनुष्ठान किया जाए, उसे गर्भाधान संस्कार कहते हैं। इसका 'सृजन संस्कार' अति उपयुक्त नाम है।

2. पुंसवन : गर्भावस्था के दूसरे या तीसरे महीने में भ्रूण को मान्यता देने तथा शारीरिक विकास के लिए जो धार्मिक आयोजन किया जाए, उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं।

3. सीमन्तोन्नयन : गर्भ में बच्चे के मस्तिष्क का विकास तथा शुभजन्म के लिए परमात्मा से आशीर्वाद माँगने हेतु जो धार्मिक अनुष्ठान किया जाए, उसे सीमन्तोन्नयन संस्कार कहते हैं। यह संस्कार प्राय: गर्भावस्था के चौथे महीने के बाद किया जाता है। इसी प्रकार की व्यवस्था पश्चिम में भी मिलती है, उसे 'Ladies Shower' (लेडीज शॉवर) कहते हैं। परिवारिक महिलाएँ एवं सहेलियाँ इकट्ठी होकर इस समारोह में गर्भवती स्त्री अर्थात् भावी माँ को बधाई, नये बच्चे के और उसके स्वयं के भी सुन्दर वस्त्र तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ भेंट करती हैं। इससे भावी माँ को ढाढस मिलता है, झिझक समाप्त होती है, मानसिक सान्त्वना प्राप्त होती है, उसे अपनी गर्भावस्था पर गर्व होने लगता है। अपनी वर्तमान यथास्थिति का भान होने से वह आसानी से अपनी जिम्मेदारियों को झेल सकती है और अगली स्थिति 'माँ बनने' के लिए वह

स्वयं अपने-आपको तैयार करने की क्षमता विकसित करती है।

4. जातकर्म : नवजात शिशु की एक नये व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान करना ही जातकर्म संस्कार कहलाता है, न कि जाति प्रदान करना। शिशु के जन्म के समय किए जाने वाले सुसंस्कृत कार्यों को जातकर्म कहते हैं।

5. नामकरण : जन्म के ग्यारहवें या बारहवें दिन, अथवा उससे पहले बच्चे का नाम रखने के उत्सव को नामकरण संस्कार कहते हैं। नाम सुन्दर, मृदु व सार्थक होने से बच्चे का मनोबल बढ़ता है।

6. निष्क्रमण : बच्चे को घर से बाहर शुद्ध वायु सेवन के लिए ले-जाने हेतु परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करने के उत्सव को ही निष्क्रमण संस्कार कहा जाता है। यह संस्कार तब किया जाता है, जब बच्चा 2-4 महीने का हो जाता है।

7. अन्नप्राशन : चार से छः महीने के बच्चे के जब दाँत आने लगते हैं, तब बच्चे को पहली बार अन्न प्रदान कराया जाता है, उसे अन्नप्राशन संस्कार कहते हैं। इस अवसर पर बच्चे को खूब पके हुए चावल की खीर भी खिलाई जाती है।

8. चूड़ाकर्म अथवा मुण्डन : पहले वर्ष की समाप्ति से पूर्व या तीसरे वर्ष में अथवा उसके बाद, बच्चे को शरीर-ज्ञान का बोध कराने हेतु चूड़ाकर्म संस्कार करते हैं। जन्म के जो केश अब तक बढ़ रहे थे, उन्हें सुसज्जित और सुसंस्कृत करना ही चूड़ाकर्म संस्कार कहलाता है। **समाज द्वारा बच्चे को बालक अथवा बालिका के रूप में ग्रहण करना मुण्डन संस्कार का प्रमुख लक्ष्य है।**

9. कर्णवेध : बच्चे में आत्मसम्मान की जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए कर्णवेध संस्कार किया जाता है। यह जिम्मेदारी को बढ़ाता है। बालक अथवा बालिका जब प्रायः 3 से 5 वर्ष का होता है, तब कर्णवेध संस्कार किया जाता है।

10. उपनयन अथवा यज्ञोपवीत संस्कार : उपनयन का अर्थ

है उप=निकट, नयन=ले जाना। किसके निकट? जो बालक अथवा बालिकाओं पर नयन रखें अर्थात् उनकी देखरेख कर सकें! वे कौन हैं? गुरु अथवा अध्यापक! किसलिए ले-जाए-विद्यारम्भ के हेतु! बालक अथवा बालिकाओं के लिए उपनयन संस्कार शिक्षा मन्दिर में प्रवेश करने का द्वार है। यह संस्कार प्राय: 5 वर्ष की आयु में किया जाता है। अत: माता-पिता से अलग होने तथा विद्यारम्भ के नूतन वातावरण में जाने की चिन्ता को दूर करने के लिए उपनयन संस्कार एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। उपनयन संस्कार से बालक अथवा बालिकाओं की 'द्विज' संज्ञा पड़ती है। द्विज का अर्थ है दूसरी बार जन्म लेना। एक बार जन्म माता-पिता के यहाँ हुआ और दूसरा जन्म गुरु के यहाँ होगा जब बच्चे को आचार्य अपने गर्भ (संरक्षण) में धारण करके उसे सुसंस्कृत बनाने का उत्तरदायित्व लेता है।

तुलनात्मक अध्ययन : यज्ञोपवीत का महत्त्व इतना है कि यज्ञोपवीत संस्कार वैदिक धर्म से अन्य धर्मों, मज़हबों, रिलिजन इत्यादि के माननेवालों ने भी किसी न किसी रूप से अपने-अपने ढंग से अपनाया है।

पारसी लोग-पारसी लोगों का उद्भव आर्यों से हुआ है। यज्ञोपवीत को पारसी लोग 'कुस्ती' कहते हैं। पं॰ गंगाप्रसाद उपाध्याय ने Fountainhead of Religion, पृष्ठ 87 में इस सन्दर्भ में लिखा है : पारसियों के पैगम्बर जरथुस्थ्र को पारसियों के भगवान् अहुरमज़्दा ने कहा है कि जो 'कुस्ती'=यज्ञोपवीत को धारण नहीं करता, उसे मृत्यु-दंड दिया जाना चाहिए। पारसियों के यहाँ 'कुस्ती' बालक को सात वर्ष में दी जाती है एवं वह इसे कमर के चारों तरफ लपेटता है। यह उनका एक महत्त्वूपर्ण संस्कार है। पारसियों के 'कुस्ती' और यज्ञोपवीत-धारण के वैदिक मंत्र समान अर्थ वाले हैं। **वैदिक मंत्र** :

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

—पारस्कर गृह्य सूत्र 2/2/11

अर्थ : यज्ञोपवीत परम पवित्र है, आदि-काल से यह प्रजापति के साथ रहा है, यह आयु व बल को देनेवाला है।

पारसियों का 'कुस्ती' यज्ञोपवीत-धारण मंत्र–

'फ्राते मज्दाओ वरत् पौरवनीयम्
एयाओं धनिमस्ते हर पाये संधेम,
मैन्युतस्तेम् वंधुहिम् दयेनीम् मज्दवास्नाम्'

अर्थ : हे डोरा, तू बहुत बड़ा उज्ज्वल है, व बल देनेवाला है, तुझे मज़्दा ने आरोहित किया है, मैं तुझे पहनता हूँ।

यह संस्कार पारसियों में अभी तक प्रचलित है।

इस्लाम में उपनयन जैसे संस्कार को 'बिस्मिल्ला पढ़ना' कहते हैं। 'बिस्मिल्ला' सुनाकर ही बालक को पढ़ने बैठाया जाता है, परन्तु आजकल इस्लाम में किसी को भी 'बिस्मिल्ला' सुनाकर मुसलमान ही बनाते हैं।

क्रिश्चियन रिलिजन में इसे बच्चे का 'बेप्टिज्म' कहते हैं। एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन के अनुसार 'बेप्टिज्म' यूनानी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'पुनरुत्पत्ति, Regeneration'; यही 'पुनरुत्पत्ति' ऊपर कहे 'द्विज' शब्द से प्रकट होती है। 'द्विज' उसी को कहते हैं जिसका उपनयन संस्कार हो चुका हो, परन्तु आजकल किसी को भी 'बेप्टिज्म' करके उसे क्रिश्चियन रिलिजन में प्रविष्ट करा लेते हैं।

यज्ञोपवीत में तीन सूत्र=धागे होते हैं, जो क्रमशः तीन ऋणों से उऋण होने की याद दिलाते रहते हैं। ये तीन ऋण हैं–1. **देव ऋण :** जिस देवाधिदेव परमेश्वर ने हमें जीवन प्रदान किया है उसके हम ऋणी हैं। ईश-आराधना/स्मरण/उपासना, दैनिक पंच यज्ञ करते हुए, चारों आश्रम–ब्रह्मचर्य गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यास

को निभाते हुए, समाज-कल्याण करके इससे उऋण हो सकते हैं। 2. **पितृ ऋण** : माता-पिता द्वारा जन्म, पालन-पोषण, शिक्षा आदि का जो ऋण है, उससे उऋण होने की यज्ञोपवीत याद दिलाता है। माता-पिता की सेवा और सन्तानों को शिक्षित कर सुयोग्य बनाकर हम इससे उऋण हो सकते हैं। 3. **ऋषि ऋण** : अर्थात् **आचार्य-ऋण** : जिन ऋषि-मुनियों ने, आचार्यों ने हमें ज्ञान-विज्ञान से परिचित करवाया है, उनके ऋण से हम तभी उऋण हो सकते हैं, जब हम भी औरों को ज्ञान प्राप्त करावें।

हर समय धारण किया जाने वाला यज्ञोपवीत, मनुष्य को सदैव मानसिक रूप से इन तीन ऋणों का स्मरण कराते रहने का एक सुगम मनोवैज्ञानिक साधन है।

11. वेदारम्भ : इस संस्कार से बच्चे में पाठशाला अथवा गुरुकुल जाने की उत्सुकता उत्पन्न होती और अनजानी जगह जाने का डर दूर होता है। शिक्षा की प्रवृत्ति पैदा करने के लिए किया गया संस्कार वेदारम्भ संस्कार है। जब बच्चे की आयु पाँच वर्ष की हो जाती है, तब शिक्षा देने हेतु यह संस्कार किया जाता है।

12. समावर्तन : शिक्षा-समाप्ति पर युवक अथवा युवती को योग्य व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर, उसे समाज का अभिन्न अंग मानने के उत्सव को समावर्तन संस्कार कहते हैं। यह अध्ययन के बाद जीवन के अगले पड़ाव की तैयारी के रूप में किया जाता है। यह आधुनिक काल में हर विश्वविद्यालय द्वारा दीक्षान्त समारोह (Convocation) के रूप में मनाया जाता है।

13. विवाह : जीवन-साथी चुनकर गृहस्थ-जीवन अथवा पारिवारिक जीवन प्रारम्भ करने के लिए जो संस्कार किया जाता है, वह विवाह-संस्कार कहलाता है। वयस्क होने पर प्रायः युवक के 25 वर्ष पूर्ण करने और युवती के न्यूनतम 18 वर्ष पूर्ण करने पर स्वयंवर विवाह करने से गृहस्थ आश्रम आरम्भ होता है।

14. वानप्रस्थ आश्रम : सभी इच्छाओं अथवा काम और धन

कमाने की इच्छाओं की तृप्ति होने के बाद, जीवन की संतुष्टि पाने के लिए आगे बढ़ना ही वानप्रस्थ आश्रम कहलाता है। वानप्रस्थ आश्रम जीवन के उस स्तर का नाम है, जिसे प्राय: 50 से 75 वर्ष की आयु में प्राप्त किया जाता है। धन कमाने से अवकाश प्राप्त कर, भविष्य की योजना को कार्यान्वित करना ही वानप्रस्थ आश्रम का मुख्य कार्य है। यह अवस्था अपने किए हुए कार्यों पर चिन्तन करने तथा जीवन के उद्देश्यों पर पुनर्विचार करने के लिए होती है। वानप्रस्थ आश्रम मनुष्य को अगली अवस्था संन्यास आश्रम के लिए तैयार करता है।

15. संन्यास आश्रम : संन्यास आश्रम का मुख्य उद्देश्य मानव जाति की नि:स्वार्थ सेवा है। संन्यास आश्रम एक आध्यात्मिक मार्ग प्रस्तुत करता है। जब कोई व्यक्ति अपना जीवन बिना किसी व्यक्तिगत लाभ की इच्छा से समाज के उत्थान के लिए लगाता है, तब मानो उसने संन्यास आश्रम में प्रवेश ले लिया है। संन्यासी प्राय: गेरुवा वस्त्र पहनता है, जो मानवता की नि:स्वार्थ सेवा का प्रतीक होता है। गेरुवा रंग अग्नि का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करता है, दूसरे शब्दों में संन्यासी समाज के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित करने को तत्पर रहता है। इस प्रकार संन्यासी समाज की नि:स्वार्थ सेवा में अपने--आपको समर्पित करता है। कोई भी व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधे संन्यास आश्रम में आ सकता है। किन्तु ऐसा उन्हीं को करना उचित है, जिन्हें तीव्र वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया है। वैराग्य भाव को प्राप्त हुए बिना सामान्यत: ऐसा नहीं करना चाहिए। यह अवस्था प्राय: 75 वर्ष के बाद की होती है। वैदिक समाज का ध्वज भी भगवा रंग का है। यह भगवा रंग समाज की नि:स्वार्थ सेवा का द्योतक है, परोपकारी कार्यों के प्रति अपने-आपको समर्पण करने का प्रतीक है।

आजकल जो वृद्धाश्रम खोले जाते हैं उनकी प्राचीन काल में आवश्यकता नहीं होती थी, क्योंकि संन्यासी बनने पर मनुष्य परोपकार में लग जाता था व समाज उसकी देखभाल करता था।

संन्यास का अर्थ है सम्+न्यास अर्थात् मनुष्य के मन में मोह-ममता, वासनाओं और इच्छाओं का जो बोझ है, उससे पूर्ण रूप से अलग हो जाना। 'संन्यास' का अर्थ आजकल यह समझा जाता है कि मनुष्य सब काम छोड़कर बैठ जाए—यह केवल भ्रांति ही है। हमारा देश ऐसे कर्म-हीन/दिखावटी संन्यासियों से भरा पड़ा है, तभी तो समाज की उन्नति न होकर धर्म-हीन होने से अशिक्षा और अधार्मिक प्रवृत्ति के पनपने के कारण अराष्ट्रीय और अमानवीय तरीकों से धर्मान्तरण दूसरे मज़हबों और रिलिजन में बहुतायत से खुले आम हो रहा है। इससे अराष्ट्रीय गतिविधियों बढ़कर अमानवीय प्रवृत्ति से देश-द्रोह, लूट-खसोट और मारामारी होती है। संन्यास का तात्पर्य वस्त्र रँगा लेने से नहीं है। संन्यास बाहर का नहीं, भीतर का चिह्न है। संन्यास घर-बार छोड़ने का नाम नहीं, राग-द्वेष त्यागने का नाम है। यह त्याग मनुष्य समाज-सेवा के लिए करता है। संन्यासी तो विश्व का नागरिक हो जाता है। उसके लिए सब अपने हैं और वह सब का होता है।

प्राचीन काल में वानप्रस्थियों और संन्यासियों के सहारे ही सम्पूर्ण भारतवर्ष में निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का प्रचार पूरे देश में होता था।

संस्कार तथा आश्रम

गर्भावस्था में संस्कार 1–3	ब्रह्मचर्य आश्रम में संस्कार 5–12	गृहस्थ आश्रम आरम्भ	वानप्रस्थ आश्रम आरम्भ	संन्यास आश्रम आरम्भ	पुरुषमेध, नरमेध संस्कार
↓		↓	↓	↓	↓
जन्म संस्कार 4 जातकर्म		विवाह संस्कार 13	संस्कार 14	संस्कार 15	अन्त्येष्टि संस्कार 16 अन्तिम संस्कार

16. अन्त्येष्टि संस्कार : यह अन्तिम संस्कार है। जब पार्थिव शरीर से आत्मा निकल जाती है, तब शेष भौतिक शरीर का अग्नि-दाह कर दिया जाता है, इसको **पुरुषमेध, नरमेध, या अन्त्येष्टि संस्कार कहते हैं।** इस संस्कार में शारीरिक तत्त्व अग्नि द्वारा प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। शरीर के मुख्य पाँच तत्त्व-पृथिवी, जल, वायु, अग्नि और आकाश पुनः अग्नि द्वारा प्रकृति के मुख्य पाँच तत्त्वों में मिल जाते हैं।

संस्कारों का व्यावहारिक महत्त्व : यदि कोई व्यक्ति न तो शिक्षित बनता है और न ही ब्रह्मचर्य आश्रम की मर्यादाओं के अनुसार चलता है अर्थात् सीखने की आकांक्षा नहीं रखता और न ही शिक्षा पूरी करता है, तब यह समझना चाहिए कि उसनेअपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है। उसने स्वयं को सही जीवन जीने के लिए तैयार नहीं किया है। तब वह व्यक्ति कैसे समाज-सेवा की जिम्मेदारी उठा सकता है? संस्कारहीनता के कारण ही बाल-अपराध, पारिवारिक कलह, गुप्त रोग सम्बन्धी बीमारियों का फैलाव, अल्पवयस्क आयु में गर्भ धारण करना, बाल-मृत्युदर में बढ़ोत्तरी, पारिवारिक विघटन, धोखाधड़ी और अन्य आपराधिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिल रहा है।

संस्कार वे सामुदायिक प्रथाएँ हैं जो एक व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़ा करने की प्रवृत्ति को जागृत कर, नूतन सामाजिक अस्तित्व प्रदान करती हैं। इस प्रकार संस्कार एक ऐसा अनुष्ठान है, जो नौजवान व्यक्ति को समाज का महत्त्वपूर्ण परिपक्व अंग बनने के योग्य बनाता है।

संस्कार जीवन के वे महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं, जो किशोरावस्था से वृद्धावस्था तक चिंताओं को कम करते हुए जीवन को सामाजिक सहयोग से आगे बढ़ाते हैं। सामंजस्य के गुण पनपने से व्यक्ति समाज में जीने की कला सीखता है। अन्ततः संस्कारों से मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है। समाज- शास्त्रियों ने प्रमाणित किया है कि जिस राष्ट्र

ने अपने नवयुवकों को संस्कारों से तैयार नहीं किया है, उन राष्ट्रों की संस्कृति नष्ट हो जाती है।

प्रश्न-34. आश्रम क्या है ? आश्रमी व्यक्ति को जीवन कैसे व्यतीत करना चाहिए ?

उत्तर : महान् विधिवेत्ता मनु ने भी सभी प्राकृतिक नियमों को एक पुस्तक में विधिवत् ढंग से संगृहीत किया है। कालांतर में यही पुस्तक 'मनुस्मृति' के नाम से प्रसिद्ध हुई। मनुस्मृति जीवन जीने के ढंग का उल्लेख करती है। मनु ने मानव-जीवन को चार भागों अथवा आश्रमों में बाँटा है। चारों आश्रमों का निम्न रूप है :

1. **ब्रह्मचर्याश्रम :** जन्म से न्यूनतम 25 वर्ष तक की आयु का विवाह करने के पूर्व का समय ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है। जीवन के इस प्रथम आश्रम में मानव बल, बुद्धि, और विद्या प्राप्त कर अपने-आपको जीविकोपार्जन हेतु तैयार करता है।

2. **गृहस्थाश्रम :** जीवन का दूसरा भाग विवाह करने के बाद गृहस्थाश्रम कहलाता है। यह आश्रम प्राय: 25 से 50 वर्ष तक की आयु का है। इस आश्रम में बुद्धि, बल और विद्या-प्राप्ति के साथ-साथ परिवार का पालन-पोषण, समाज-सेवा तथा जीविकोपार्जन करना मुख्य कार्य है। गृहस्थाश्रम से ही सम्पूर्ण समाज चलता है।

3. **वानप्रस्थाश्रम :** जीवन का तीसरा भाग वानप्रस्थाश्रम कहलाता है। यह आश्रम 50 से 75 वर्ष तक की आयु का है। वानप्रस्थाश्रम में जीवन की उपलब्धियों का विश्लेषण करना ही मुख्य कार्य है। जीविकोपार्जन अथवा सेवानिवृत्ति के समय जीवन के उद्देश्यों को पुन: टटोलकर अपना योगदान समाज-सेवा में देना है।

4. **संन्यासाश्रम :** जीवन का चौथा और अंतिम भाग संन्यास आश्रम कहलाता है। यह आश्रम 75 से 100 वर्ष या उससे भी अधिक की आयु का है। इस आश्रम का ध्येय है-मानव-सेवा।

अब तक जो कुछ भी अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया है, उसे निःस्वार्थ भाव से संसार की भलाई के लिए प्रदान करना है। संन्यास आश्रम का मुख्य उद्देश्य मानवता की निःस्वार्थ सेवा है।

जीवन की यात्रा का प्रथम चरण ब्रह्मचर्य आश्रम है। जिस व्यक्ति ने स्वयं ही 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है, वह अपने अल्पवयस्क बच्चों को कैसे सहारा देगा? कारण–वह स्वयं अल्पवयस्क है। अगर अल्पवयस्क बच्चे माता-पिता बनते हैं, तो वे अपने बच्चों का पालन-पोषण नहीं कर सकते। कारण–वे स्वयं ही जीविकोपार्जन करने में असमर्थ हैं, अतः वे अपराध को ही बढ़ावा देते हैं। अल्पवयस्क माता-पिता की सन्तानें अच्छी तरह से जीवन-यापन नहीं कर पातीं, क्योंकि वे शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में पहले से ही पिछड़ी हुई हैं। इससे पारिवारिक और सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है। यह स्थिति समाज और देश की उन्नति में रुकावट के साथ-साथ सामाजिक अस्थिरता को जन्म देकर राष्ट्र का विघटन भी करती है।

स्वावलम्बी बनने हेतु ब्रह्मचर्य आश्रम आवश्यक है। गृहस्थाश्रम में रहकर ही तप, त्याग, इद्रिय-संयम का अभ्यास हर कोई आसानी से कर सकता है। जो मोक्ष और संसार को सुख देने की इच्छा करता हो, वह गृहस्थाश्रम में अवश्य प्रवेश करे। श्रीराम, श्रीकृष्ण, तथा अनेक ऋषि-मुनियों ने अनासक्त भाव से गृहस्थ-सुखों को भोगकर मुक्ति प्राप्त की थी। –स्वामी दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश।

महान् विद्वान् कालिदास ने कितने सुन्दर एवं संक्षिप्त रूप में जीवन जीने की कला का उल्लेख किया है–

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

–रघुवंश, 1.8

बचपन में विद्या अध्ययन, युवावस्था में विषयों के सन्तुलित

उपभोग द्वारा ऐन्द्रिक आनन्द, वृद्धावस्था में ऋषि की भाँति सौम्य शान्त होकर, वासनाओं का त्याग करके जियें और वृद्धावस्था के अन्त में एक योगी की भाँति शरीर को त्यागें।

प्रश्न-35. वर्ण क्या है ?

उत्तर : महान् विद्वान् मनु ने सुख, शान्ति और समृद्धि के लिए समाज को चार वर्गों में विभक्त किया है (मनु 1.31)। **प्रत्येक के मानसिक स्तर, कर्म-इच्छाएँ, सहजगुण, रुचियाँ, एवं स्वैच्छिक कार्य-क्षमता को ध्यान में रखकर ही वर्ण-व्यवस्था को बनाया है। वर्ण-व्यवस्था जन्म से नहीं, अपितु कार्यक्षमता से ही बनाई गई है। ये वर्ग ही वर्ण के नाम से जाने जाते हैं।** विद्वानों ने देखा कि समाज में होनेवाले दु:खों का कारण 'अज्ञान, अन्याय या अभाव' हैं। ब्राह्मण-वर्ण का कर्म अज्ञान का नाश करते हुए सत् ज्ञान का प्रसार करना, क्षत्रिय वर्ण का काम अन्याय न होने देना, वाणिज्य द्वारा समाज में किसी वस्तु का अभाव न होने देना वैश्य वर्ण का कार्य, तथा श्रमजीवी श्रद्धावान् शूद्र वर्ण द्वारा यथाशक्ति कार्य करना है, अत: समाज में 'अज्ञान, अन्याय या अभाव' को दूर करने में लोग संलग्न मिलते हैं। इनका कर्म-विभाजन यह है :

ब्राह्मण : समाज का प्रबुद्ध वर्ग मुख्यत: परमात्मा की उपासना सम्बन्धी गतिविधियों से संलग्न है। जो धर्म-पुस्तकों के पठन-पाठन द्वारा शिक्षा का विस्तार करके समाज को उन्नति का मार्ग दिखाता है, वही केवल ब्राह्मण कहलाता है। 'धर्म प्रचारक', 'धर्म द्रष्टा' और बुद्धिजीवी लोग जो समाज से अज्ञान को दूर करते हैं, इस वर्ग में आते हैं।

क्षत्रिय : समाज-रक्षक और शासक-वर्ग-रक्षण और सुरक्षा करनेवाले वीरगण, क्षत्रिय वर्ण के हैं। इस वर्ग का मुख्य कार्य समाज को नियन्त्रित करके, राज्य-प्रबन्ध एव सुरक्षा प्रदान करना है। जो 'धर्म रक्षक' और 'धर्म योद्धा' लोग समाज को अन्याय से मुक्त कराते हैं, इस वर्ग में आते हैं।

वैश्य : समाज के व्यापारी-वर्ग को वैश्य वर्ण कहते हैं। मुख्यत: व्यापारी, किसान, विक्रेता और जो उत्पादन, निर्माण, वितरण एवं अन्य व्यापार-सम्बन्धित गतिविधियों में संलग्न हैं, इस वर्ग का निर्माण करते हैं। 'धर्म पोषक' व्यापारी लोग जो समाज से वित्तीय अभाव को दूर करते हैं, इस वर्ग में आते हैं।

शूद्र : समाज का मुख्य अंग जो सेवा-क्षेत्र से सम्बन्धित है, इस क्षेत्र से ही समाज को स्थिरता प्राप्त होती है। शूद्र-वर्ग में वे लोग आते हैं जिनकी रुचि मुख्य रूप से शारीरिक कार्य करने की है। चाहे वे कुशल कारीगर हों या सामान्य मजदूर, जैसे किसी सामान को एक जगह से दूसरी जगह ले-जाना होता है, तथा अनेक मिले-जुले सेवा-कार्य इस वर्ग के कार्य-क्षेत्र हैं। श्रमजीवी श्रद्धावान् भाँति भाँति से 'मानव-सेवा' कर जीवन-निर्वाह करनेवाले 'धर्म-निष्ठ' अथवा 'धर्म-पालक' श्रमिक लोग जो समाज की आवश्यकताएँ पूर्ण करने में संलग्न हैं अथवा समाज-सेवा करते हैं, वे इस वर्ग में आते हैं।

समाज के चारों वर्ण 'अज्ञान, अन्याय या अभाव' को दूर करने अथवा सेवा करने में संलग्न हैं। इनमें न कोई छोटा है और न ही कोई बड़ा।

प्रश्न-36. क्या वर्णों के भेदभाव हिन्दू धर्म पर आधारित हैं ?

उत्तर : मानव-समुदाय में भेदभाव का कोई स्थान नहीं है। सभी वर्ग समाज के आवश्यक अंग हैं; न कोई उच्च है और न कोई वर्ग निम्न है। जात-पात के भेदभाव को हिन्दू धर्म के किसी भी प्रामाणिक ग्रंथ में मान्यता नहीं है और न ही इसका उल्लेख है। भेदभाव की गलत प्रथा ने मानसिक तौर पर एक ऐसी आंतरिक स्थिति पैदा कर दी जिससे लोगों पर भ्रष्ट शासन और बलात् धर्म-परिवर्तन करना और भी आसान हो गया है। वेदों का वचन है :

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय।।

—यजुर्वेद 26.2

परमात्मा का उपदेश है कि 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आर्यजन, अन्त्यज आदि सब मनुष्य-मात्र के लिए वेदों का उपदेश करता हूँ' वैसे विद्वानो तुम भी करो। **इस मंत्र में ब्राह्मण वर्ग को शूद्र-वर्ग के बाद दर्शाया है, इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक धर्म में न तो कोई वर्ग बड़ा है, न ही कोई एक वर्ग दूसरे से श्रेष्ठ है और न ही कोई निकृष्ट अथवा छोटा है, अपितु सभी वर्ग समान हैं।** चारों वर्णों को *शतपथ* आदेश देता है : **एहीति ब्राह्मणस्यागह्याद्रवेति वैश्यस्य च राजन्यबन्धोश्चाधावेति शूद्रस्य।।** (शतपथकां० 1, प्र० 1, अ० 1, ब्रा० 4, कं० 12) चारों वर्ण वेदमन्त्रों से यज्ञ की हवि: को शुद्ध करें। *आपस्तम्बीय श्रौतसूत्र* में भी लिखा है— **'हविष्कृदेहीति ब्राह्मणस्य हविष्कृदागहीति राजन्यस्य हविष्कृदाद्रवेति वैश्यस्य हविष्कृदाधावेति शूद्रस्य प्रथमं वाव सर्वेषाम्।।** (आपस्तंब श्रौ०सू० प्र० 1, कं० 1,9) यज्ञ के विधान में पूर्वोक्त पृथक्-पृथक् मंत्रों से चारों वर्ण हवि: शुद्ध करें।

—युधिष्ठिर मीमांसक, पुरुषार्थ-प्रकाश:, 1988 ई०

प्रत्येक वेदमन्त्र के समाजपरक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से अर्थ होते हैं।

स्वस्ति नऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।

—यजुर्वेद 25.1

उपर्युक्त मंत्र के समाजपरक भाव इस प्रकार हैं—वृद्धश्रवा: इन्द्र: का अर्थ बलशाली क्षत्रिय, पूषा का अर्थ प्रजा का धन-धान्य से पोषण करनेवाला वैश्य, भव-सागर की नौका को खेनेवाले तार्क्ष्य का अर्थ शूद्र, बृहस्पति का अर्थ समाज का ध्यान करने वाला ब्राह्मण। अत: मन्त्र का अर्थ हुआ 'समाज के चारों वर्ण

हमारा कल्याण करें।'

आधिदैविक तथा आध्यात्मिक अर्थ—वृद्धश्रवा:=विद्युत्; पूषा=सूर्य; तार्क्ष्य=सर्वत्र गतिशील; बृहस्पति=ब्रह्माण्ड का पालक—ये सब आधिदैविक शक्तियाँ हमारा कल्याण करें। (व्याख्याकार, डॉ॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, संस्कार-चन्द्रिका, 1990)।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूभ्यां राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत॥

—यजुर्वेद 31.11

समाज का वह भाग जिसमें ज्ञान देने की योग्यता एवं इच्छा शक्ति है, ब्राह्मण कहलाएँगे; जो अपने बाजुओं की शक्ति से समाज की सुरक्षा करते हैं, क्षत्रिय कहलाएँगे; जो समाज की समृद्धि के मुख्य रक्षक हैं, वैश्य कहलाएँगे; और शूद्र वे हैं जिनकी कार्यशक्ति से समाज के पैर आगे बढ़ें, जो पूरे समाज की स्थिरता की धुरी हैं।

निरुक्त के अनुसार '**वर्णो वृणोते**' अर्थात् जिसे व्यक्ति स्वयोग्यता, रुचि व स्वभाव-अनुसार वरण करता है, अपनाता है, वह उसका वर्ण कहलाता है (2.1.40) अर्थात् जिसका वरण किया जाए, या जो कुछ स्वीकार किया जाए, लागू किया जाए तथा प्रयोग में लाया जाए, वही वर्ण है। अत: 'वर्ण' का जन्म से होने का प्रश्न ही उत्पन्न ही नहीं होता। उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि **'वर्ण' का सम्बन्ध जन्म से बिल्कुल नहीं है, अपितु 'वर्ण' का सम्बन्ध व्यक्ति की प्रवृत्ति से है, जिसे स्वार्थवश लोगों ने भ्रमित ढंग से जाति और प्रथा के रूप में चित्रित किया है।** मनु ने समाज की भलाई के लिए, समाज को वर्गों में सुव्यवस्थित किया, लेकिन पिछली सहस्राब्दि के दौरान यह 'वर्ण-व्यवस्था' पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गई। यह एक अति महत्त्वपूर्ण सचाई है कि हिन्दू-समाज विदेशी-बल और विचारधारा के अधीन निरन्तर गुलामों की तरह दबा ही रह गया। वेद में प्रभु कहते हैं '**सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः**' (अथर्ववेद 3/30/1) सबको समान

हृदय से, परस्पर प्रीति, द्वेषरहित जीवन-यापन करनेवाला बनाया है। अत: वास्तविकता यह है कि सभी 'वर्ण' बराबर हैं और समाज को बनाए रखने में समान रूप से सभी का योगदान आवश्यक है।

विधि की विडम्बना है कि कुछ स्वार्थी राजनैतिक हिन्दू नेता वोट लेने हेतु, तथा स्वयं को गुरु कहलानेवाले भगवा कपड़े पहन लोग अपना श्रेय बढ़ाने हेतु समाज में व्याप्त छुआछूत को बढ़ावा देकर समाज का विघटन कराते हैं।

श्रीराम ने अपने नाम के पीछे जाति नहीं लगाई; ब्राह्मण होते हुए भी रावण ने अपने नाम के पीछे 'पंडा' नहीं लगाया; श्रीकृष्ण यादव होते हुए भी 'कृष्ण यादव' नहीं कहलाए। अत: नाम के पीछे जाति लगाना भी समाज को दूषित करने का एक प्रयास है। गोत्र तो सभी वर्गों में सार्वभौम है।

समाज के इस वर्गीकरण के कारण ही हिन्दू समाज विदेशी गुलामी के दौरान अति कष्टदायक समय को झेलते हुए भी जीवित रहा। परन्तु कोई भी प्रामाणिक आर्ष/वैदिक ग्रंथ आज के समाज में व्याप्त कुरीति 'छुआछूत' का समर्थन नहीं करता क्योंकि सभी 'वर्ण' समान हैं।

(प्रामाणिक वैदिक ग्रंथों की सूची 'हिन्दू धर्म की झलकियाँ' में देखें।)

प्रश्न-37. 'ब्रह्म, ब्रह्मा, और ब्राह्मण ग्रन्थ' इत्यादि शब्दों में क्या अन्तर हैं?

उत्तर : ब्रह्म : 'ब्रह्मन्' शब्द का उच्चारण ब्रह्म है। ब्रह्मन् शाश्वत, सर्वोच्च, सर्वसत्ता-सम्पन्न और परम तत्त्व है। सर्वव्यापक एवं सर्वोपरि परमेश्वर ही ब्रह्म है। ब्रह्म शब्द ईश्वर की व्याख्या करता है, जिसे हम सामान्य तौर पर परमात्मा कहते हैं।

ब्रह्मा : ब्रह्मा शब्द परमात्मा के 'निर्माता' स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। 'ब्रह्मा' को पौराणिक गाथाओं के रूप में प्रभु के कार्यों से सम्बधित कर 'त्रिदेव' का रूप दिया गया है। ये

त्रिदेव हैं–1. इस दुनिया को बनानेवाले ब्रह्मा, 2. पालन करने वाले विष्णु, 3. कल्याण एवं सृष्टि को नव्य रूप देने के लिए प्रलय-कार्य करनेवाले महेश। इन्हीं गुणों को धारण करने के कारण प्रभु को ब्रह्मा, विष्णु, व महेश कहा गया है। आलंकारिक रूप से ब्रह्मा को चार दिशाओं में चार मुख से दर्शाया गया है अर्थात् जो चारों वेदों का ज्ञाता है। जो व्यक्ति अग्निहोत्र का कार्य सुचारु रूप से अपनी देखरेख में पूर्ण करवाता है, उसको भी 'ब्रह्मा' कहते हैं। ब्रह्मा अग्निहोत्र का मूक संवाहक और प्रशासक होता है। ब्रह्मा अग्निहोत्र का आधिकारिक अध्यक्ष, पर्यवेक्षक और प्रबन्धक है।

ब्राह्मण : समाज को चार वर्गों में गुण, कर्म व स्वभाव के आधार पर विभाजित किया गया है। उनमें से एक वर्ग 'ब्राह्मण' वर्ण है। जैसा कि कानून-प्रदाता मनु महाराज ने वर्णन किया है, देखें उ॰ 35। **यह समाज का बौद्धिक वर्ग है जो कि मुख्य रूप से शिक्षा-क्षेत्र से सम्बन्धित गतिविधियों, ज्ञान-विज्ञान, तथा सांस्कारिक सेवाएँ प्रदान करता है।**

ब्राह्मण ग्रन्थ : वेदों की व्याख्या करने अथवा समझने में सहायक ग्रन्थ के रूप में ब्राह्मण-ग्रंथों का उपयोग होता है। प्रत्येक वेद की आध्यात्मिक ज्ञान की व्याख्या तथा समालोचना के लिए एक-एक ब्राह्मण ग्रंथ है। चूँकि ब्रह्म अथवा वैदिक मंत्रों को समझने हेतु इन ग्रंथों की आवश्यकता होती है, अत: इन्हें ब्राह्मण-ग्रंथ कहते हैं। ये ब्राह्मणों द्वारा बनाए हुए ग्रन्थ नहीं हैं, और न ही ये ब्राह्मणवाद फैलाते हैं, जैसा कि विदेशी लोगों ने समझा है। अध्याय 8 में 'हिन्दू धर्म की झलकियाँ' में भी देखें।

प्रश्न-38. हिन्दूइज्म का अर्थ क्या है ?

उत्तर : 'हिन्दूइज्म' शब्द एक अशुद्ध नामकरण है, जो कि अंग्रेजों द्वारा हिन्दू धर्म को बदनाम करने के लिए घड़ा गया था। बाद में लोगों की अज्ञानता से इस शब्द को और भी आगे बढ़ाया गया। इसका दूरस्थ मूल कारण और अभिप्राय हिन्दू धर्म को एक

'वाद', अथवा 'सम्प्रदाय' का तगमा/'लेबल' लगाना था, ताकि हिन्दू धर्म को 'हिन्दू धर्म' न मानकर उसे मानव-विरोधी घोषित कर, समूल नष्ट कर दिया जाए, और कोई भी हिन्दू धर्म पर विश्वास ही न करे। वास्तविकता यह है कि हिन्दू धर्म में 'वाद' का कोई स्थान नहीं है।

हिन्दू 'विश्व-बंधुत्व', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्तों का पालन करता है, इसलिए हिन्दी कभी भी कट्टरपंथी और साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। 'वाद' शब्द एक ऐसी विचारधारा का प्रतीक है, जिसको किसी भी तरह दूसरों पर थोप सकें, उदाहरणार्थ— मार्क्सवाद, समाजवाद, कम्यूनिज्म, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद। लेकिन हिन्दुओं में कोई 'वाद' है ही नहीं।

हिन्दुओं के पास चार वेद और छः दर्शनशास्त्रों के साथ बहुतों से लौकिक और आध्यात्मिक विज्ञान की धर्म-पुस्तकें हैं, तो वाद कैसे हो सकता है? हिन्दू लोग असीम काल से क्रमबद्ध विकास की प्रक्रिया का अनुसरण करते रहे हैं, क्योंकि हिन्दू की परोक्ष विचारधारा नहीं है। इस प्रकार से हिन्दू धर्म में 'वाद' के लिए कोई स्थान नहीं है। हिन्दू लोकतंत्रात्मक है तथा प्रत्येक हिन्दू को किसी भी प्रकार का जीवनदर्शन अपनाने तथा मोक्ष के मार्ग ढूँढने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। हिन्दू धर्म कोई ऐसा संगठित धर्म नहीं है जिसके द्वारा हिन्दू विचारधारा को दूसरों पर बलपूर्वक थोपने का, धर्मान्तरण कराने का, धर्मान्तरण के लिए लालायित अथवा आकर्षित करने का ध्येय हो, जैसा कि अन्य मजहब वाले मुस्लिम और क्रिश्चियन लोग करते आ रहे हैं।

हिन्दुओं के धर्म का विशुद्ध नाम 'वैदिक सनातन धर्म' है।

प्रश्न-39. धर्म-संगत (Religious congregation) और धर्म-सभा (Audience) में क्या अंतर है ?

उत्तर : हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख परम्परागत रूप से एक ही शरीर के अंगों की भाँति हैं। इन्हें अगर 'ओम्कार कुटुम्ब

धर्म' की संज्ञा दे दी जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। ये 'ओमकार कुटुम्ब धर्म' सभी समान रूप से धार्मिक क्रियाकलापों अथवा रीति-रिवाजों का आयोजन करते हैं। इनकी धर्म-सभाओं को सनातन धर्म सभा, जैन सभा, और शिरोमणि सभा इत्यादि कह सकते हैं। सभा का अर्थ है 'लोगों की उपस्थिति'। ये सभी 'ओमकार धर्म' लोकतांत्रिक हैं और इनकी धर्म-सभा में जो लोग उपस्थित होते हैं, उनको पूरी तरह छूट होती है कि धर्म-सभाओं में जो भी कहा गया है उससे वे चाहें तो सहमत हों या नहीं, चाहें तो ग्रहण करें या नहीं, उनके ऊपर विचारों को थोपा नहीं जाता। इसी कारण से जो लोग उपस्थित होते हैं, उन्हें श्रोता तथा श्रोताओं से सम्बोधित करते हैं। श्रोताओं के समूह को सभा कहते हैं, और चूंकि इस सभा में धर्म पर विचार-विमर्श होता है, इसलिए धर्म-सभा कहा जाता है।

परन्तु 'मुस्लिम और क्रिश्चियन' की 'मज़हबी' और 'रिलिजियस' गोष्ठी में उपस्थित समूह में केवल एक ही रास्ते पर चर्चा होती है, तथा एक ही प्रकार की विचारधारा को पोषित किया जाता है, और इन्हीं विचारों को ही क्रियान्वित किया जाता है, इसलिए इस प्रकार के समूह को 'काँग्रीगेशन' (Religious congregation) कहते हैं। इनकी 'मीटिंग' को सभा नहीं कह सकते, इनमें विचार-विमर्श करने की स्वतन्त्रता भी नहीं होती, इसलिए उपस्थित लोगों को हम श्रोता भी नहीं कह सकते। उनके विचारों को माननेवाले लोगों को केवल कट्टरपंथी (blind followers or fanatics) ही कह सकेंगे।

धर्मसभा में उपस्थित लोगों के लिए उपयुक्त शब्द 'श्रोता' ही है। लोगों की धार्मिक बैठक में हिन्दू धर्म के अनुयायियों को सोचने-समझने की पूर्ण स्वतंत्रता है, किसी भी दर्शनशास्त्र को चुनकर विचार-विमर्श करने की स्वतंत्रता है।

प्रत्येक व्यक्ति को हिन्दू धर्म में 'सोच-विचार तथा समृद्धि हेतु

कार्य' करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। हिन्दुओं की धार्मिक बैठक के लिए 'धर्मसभा' शब्द ही समुचित है।

प्रश्न-40. क्या हिन्दू धर्म 'एक गठबंधित संगठन अथवा कट्टरपंथ' (Organized Religion) है, जैसे कि एक ही विचारधारा द्वारा पोषित इस्लाम और ईसाई मज़हब हैं ?

उत्तर : हिन्दू धर्म की कोई केन्द्रीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मार्ग निर्देशन करनेवाली, 'एकमत-पोषित-विचारों वाली' कोई संस्था नहीं है। हिन्दुओं की उन्नति के लिए न उनके पास कोई संगठित समूह है, न उनके पास कोई संगठित योजना है, न उनके पास संगठित रूप से कोई कोष-धन अथवा सम्पत्ति है, जो केवल हिन्दुओं पर ही खर्च करें। तब हिन्दू कैसे एक गठ-बंधित संगठन या कट्टरपंथ (Organized Religion) कहला सकता है?

दुर्भाग्य की बात यह है कि हिन्दुओं का कोई संगठित समूह, कोई संगठित योजना, अथवा संगठित रूप से कोई कोष या धन भी नहीं है, जो मरे हुए हिन्दुओं को जलाने के लिए भी काम में ले सकें। ब्रिटिश समय में ब्रिटिश सरकार हिन्दू व्यापारियों को 'धर्मादा अर्थात् हिन्दुओं के लिए हिन्दू धर्म पर खर्च करने हेतु राशि' इकट्ठा करने देती थी, वह भी स्वतंत्र भारत की नेहरू सरकार ने बंद करवा दी। अभी भी स्वतंत्र भारत की राज्य तथा केन्द्रीय सरकारें बड़े-बड़े हिन्दुओं के मंदिरों में हिन्दुओं द्वारा चढ़ाई गई दान-राशि को अपने ही राज्य-कोष में हड़प जाती हैं, हिन्दू जनता मुँह ताकती रहती है। हिन्दू लोग 'हिन्दुओं के मंदिरों में हिन्दुओं द्वारा चढ़ाई गई दान-राशि को हिन्दुओं पर खर्च नहीं कर सकते' जैसे कि क्रिश्चियन लोगों की 'World Council of Churches based in Switzerland', तथा 'मुस्लिम मज़हब' वालों की जकातें खुल्ले रूप से करती हैं। कारण-हिन्दुओं का कोई संगठित समूह नहीं है, क्योंकि हिन्दू धर्म एक गठ-बंधित संगठन या कट्टरपंथ (Organized Religion) नहीं है।

अमेरिका एक धर्म-निरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है। वहाँ अमेरिकी सरकार द्वारा मान्यता-प्राप्त संस्था 'United Way Agency' है, जो अमेरिकी सरकार की सहायता से सरकारी और निजी संस्थानों से हर वर्ष जोर-जबरदस्ती से प्रत्येक व्यक्ति के अर्द्ध-मासिक अथवा मासिक वेतन में से पूर्व-निर्धारित धन-राशि काटकर इस संस्था को सौंप देती है। यह राशि समाज-सेवा में रत निजी अथवा क्रिश्चियन चर्च द्वारा संचालित संस्थानों को वितरित कर दी जाती है। अमेरिका सरकार द्वारा एक और अर्द्ध-सरकारी संस्था है जिसका कार्य गरीब देशों में स्वयंसेवक भेजकर वहाँ सामाजिक कार्यों को बढ़ावा देना है। इसका नाम Peace Corps है। यह पूर्णतया चर्च के लोगों द्वारा संचालित होती है और समाज-सेवा के नाम पर धर्म-परिवर्तन करना इनका मुख्य कार्य होता है। आज तक इस संस्थान ने किसी भी हिन्दू, सिक्ख, जैन, अथवा बौद्ध धर्म के अनुयाइयों को सामाजिक कार्य करने के लिए 'Peace Corps worker' बनने की अनुमति नहीं दी। मैं स्वयं एक ऐसे प्रतिष्ठित सिख परिवार को जानता हूँ जिनके बच्चे अमेरिका में उत्पन्न, स्कूल में सर्वप्रथम, सभी अमेरिका के स्कूलों के खेल में अग्रिम Valedictorian विद्यार्थी को Peace Corps में स्वयंसेवक बनकर सामाजिक कार्यों में भाग लेने से मना कर दिया, क्योंकि वे सिक्ख हैं। इन उदाहरणों से आपको ज्ञात होगा कि गठ-बंधित संगठन या कट्टरपंथ (Organized Religion) किस प्रकार से एक धर्म-निरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य सरकार द्वारा अपने धर्म के प्रचार-प्रसार का कार्य करते रहते हैं।

हिन्दुओं की कोई संगठित रूप से निर्देश करनेवाली संस्था भी नहीं है। हिन्दू धर्म की कोई नींव रखनेवाला भी नहीं है और न ही इसका कोई पीर पैगम्बर अथवा मसीहा है। हिन्दू धर्म में ऐसे बहुत-से ऋषि-मुनि-साधु-संतों, महान् वीर दिव्य पुरुषों, शिक्षकों एवं समयानुसार समाज-सुधारकों की लम्बी संख्या रही

है जिन्होंने अकेले हिन्दू धर्म के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता और विश्व की भलाई के लिए अपना जीवन बलिदान कर दिया। हिन्दू धर्म एक गठ-बंधित संगठन या कट्टरपंथ (Organized Religion) नहीं है और हो भी नहीं सकता।

हिन्दू धर्म 'सत्य सनातन धर्म' को लोकतांत्रिक पद्धति के आधार पर वेदों की श्रेष्ठता दर्शानेवाला उदार धर्म है। हिन्दू धर्म ने न तो कभी जोर-जबरदस्ती से और न ही जिहाद की तरह क्रूर लड़ाइयों के द्वारा लोगों का बलपूर्वक वध करके धर्मान्तरण करने की कोशिश की। दूसरे कट्टरपंथी साम्प्रदायिक मज़हबों की तरह हिन्दू धर्म किसी को भी धर्म-परिवर्तन करने के लिए जोर नहीं देता।

क्या ही अच्छा हो अगर हिन्दू संगठित होकर सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थाओं को पुनर्जीवित कर, देशबन्धुत्व-धर्मबन्धुत्व की भावना 'गैर हिन्दुओं' में प्रेरित कर सके, अराष्ट्रीय धर्मपरिवर्तन रोककर, अपने पिछड़े और बिछुड़े भाई-बहनों को गले लगाकर सक्रिय कर, उनमें आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास जागृत कर समाज और देश के प्रति प्रेम के बीज अंकुरित कर सके, क्योंकि सम्पूर्ण विश्व में केवल हिन्दू धर्म के कारण ही बहुत-सी वन्य पशु-पक्षियों की जातियाँ, मानव जन-जातियाँ और अनेक संस्कृतियाँ आज भी भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में सुरक्षित, विद्यमान एवं विकसित हैं। हिन्दू धर्म के संरक्षण द्वारा ही इन जन-जातियों ने अपने सांस्कृतिक रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाजों, सम्प्रदायों, वंशों, कुटुम्बों इत्यादि की अपनी परम्परा को बनाए रखा और आधुनिक समय में अधिक विकसित रूप लेकर स्वच्छन्दता से अपना अस्तित्व विश्व को दर्शाने में सफल हुए हैं।

अगर हिन्दू धर्म 'एक गठ-बंधित संगठन, कट्टरपंथी साम्प्रदायिक मज़हबों' की तरह होता तो दक्षिणी अमेरिका के 'इन्का', 'ऐजटेक' और 'माया' संस्कृतियाँ, अफ्रिका-मिश्र के फेरोज और

पिरामिड सभ्यता, आधुनिक हवाई द्वीपों की पोलिनिशयन संस्कृतियाँ, अमेरिकन रेड इण्डियन लोगों की धार्मिक गतिविधियों तथा संस्कृतियों की भाँति भारत की जन-जातियाँ और विविध संस्कृतियाँ हमेशा के लिए लुप्त हो जातीं।

हिन्दू धर्म की सहनशीलता तथा उदारता के कारण अनेक जन-जातियाँ और संस्कृतियाँ अक्षुण्ण सुरक्षित रही हैं। हिन्दू धर्म में लोकतांत्रिक खुलापन/सद्भाव हमेशा रहा है और अनन्त काल तक रहेगा।

प्रश्न-41. यदि हिन्दू धर्म, एक गठबंधित संगठन, कट्टरपंथी साम्प्रदायिक मज़हबों की तरह (Organized) नहीं है, तो हिन्दू पुरोहित अपनी आजीविका कैसे कमाते हैं और हिन्दुओं का अन्य मज़हबों के प्रति कैसा व्यवहार है ?

उत्तर : ईसाई पुजारी अथवा प्रीस्ट जिन्हें हम सामान्य भाषा में चेपलीन या मिनीस्टर और कैथोलिक लोगों में फादर कहते हैं, उन्हें वेतन चर्च देता है। वे चर्च के कर्मचारी होते हैं, उनकी पक्की नौकरी होती है। हिन्दू पुजारी अवैतनिक होकर दान पर ही निर्भर रहते हैं, जिसे दक्षिणा कहते हैं।

हिन्दू प्रत्येक मानव को बराबर की दृष्टि से देखते हैं और सबको परमात्मा की संतान मानते हैं। यजुर्वेद 11.5 में कहा गया है '**शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राः**' सभी परमात्मा की सन्तान हैं। इसलिए धार्मिक भेदभाव का हिन्दू धर्म में कोई स्थान नहीं है।

इस सन्दर्भ में हमें कुछ ऐतिहासिक तथ्यों को भी ध्यान में रखना अति आवश्यक है—जब मिश्र से मोसेस ने ज्युइज अथवा यहूदी लोगों को स्वतंत्र कराया, तब कुछ ज्युइज अथवा यहूदी लोग तो साइनाइ नामक मिश्र के रेगिस्तान को पार कर इजराइल पहुँचे, परन्तु कुछ समुद्री मार्ग से भारत के दक्षिणी भाग केरल में शरण लेकर जा बसे। इसी तरह क्राइस्ट अथवा ईसा के अनुमानतः सात सौ वर्ष पश्चात् सीरिया में आतताई अरब मुसलमानों के

आक्रमणों से सीरियाई क्रिश्चियन बचकर, अपने देश को तिलांजलि देकर, समुद्री मार्ग से भारत के दक्षिणी भाग में आकर इन सीरियाई क्रिस्चियनों ने शरण ली। केरल में स्थापित प्राचीन सीरियाई क्रिश्चियन चर्च इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। जोरोष्ट्रियन अथवा पारसी लोग भी समुद्री मार्ग से ईरान में मुसलमानों के आक्रमण और अत्याचारों से पीड़ित होकर, अपने देश ईरान को छोड़ भारत के पश्चिम घाट पर 'मुम्बई के इलाके' में शरण ली और भारतीय नागरिक की तरह रहने लगे।

नोट—यहूदी गैर-यहूदियों को जैनटाइल कहते हैं। यहूदी लोग हिब्रू शब्द 'गोईन' का प्रयोग उन गैर-यहूदी राष्ट्रों और यहूदियों के लिए करते हैं जिन्हें ईसाई लोगों ने ईसाई धर्म में बदल दिया। ईसाई लोग यहूदियों को 'हीदन' और गैर-यहूदी लोगों को 'पैगन' कहते हैं। इसी प्रकार इस्लाम मज़हब के माननेवाले मुसलमान लोग 'गैर मुसलमानों' को तिरस्कृत रूप से 'काफ़िर' कहते हैं। भूतकाल में मुसलमानों ने 'गैर-मुसलमान काफ़िर लोगों' पर 'जजिया नाम' से Tax/कर लगाया ताकि उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया जा सके। इस प्रथा का ज्वलंत उदाहरण है—आज के अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बंगलादेश।

इतिहास साक्षी है—*आजतक हिन्दुओं ने अन्य मज़हबों के लोगों को इस प्रकार से तिरस्कृत कर कोई अभद्र नाम नहीं दिया और न ही जबरदस्ती से किसी को भी धर्म-परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया।*

प्रश्न-42. विश्व में कौन-सी संस्कृति उच्चकोटि की और कौन सी निम्न कोटि की है और कौन-सा 'धर्म' 'सर्वधर्म समभाव' की झलक प्रस्तुत करता है ?

उत्तर : समाजशास्त्र के नियमानुसार एक सभ्यता की तुलना दूसरी सभ्यता के साथ नहीं की जा सकती (आई० रॉबर्टसन, समाजशास्त्र, 1987)। किसी भी एक संस्कृति अथवा सभ्यता को

न तो उच्च कोटि की कह सकते हैं और न ही दूसरी संस्कृति और सभ्यता को निम्न कोटि की।

'सर्वधर्म समभाव' का अर्थ–सभी 'धर्म' समान हैं। आइये देखे कौन-सा 'धर्म' समान है, उसकी परिभाषा क्या है? प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित धर्म को ही 'धर्म' कह सकते हैं। भारत-भूमि में उपजे 'हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख' इस परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं, अन्य नहीं। ये 'धर्म' प्राकृतिक अथवा सनातन सिद्धान्तों, तथा आत्म-ज्ञान पर ही आधारित हैं। ये 'धर्म' प्रकृति को, जीव मात्र को, समूची मानवता को, सभी को समान रूप से देखते हैं, समरूपता लानेवाले हैं। इन धर्मों को किसी पर थोपने की आवश्यकता ही नहीं है, अतः केवल ये ही 'धर्म' कहलाने के अधिकारी हैं, अन्य नहीं। अन्धविश्वास से परे, योग तथा आत्मचिन्तन द्वारा ब्रह्म, ब्रह्माण्ड (प्रकृति) और स्वयं को पहचानने के ज्ञान, अथवा आत्मज्ञान, जो योग के माध्यम द्वारा सिद्ध किया जा सके, अर्थात् स्वयं द्वारा जाना जा सके (Self realization), वे ही धर्म कहलाते हैं। ये 'धर्म' भरपूर **आध्यात्मिक ज्ञान** के स्रोत हैं, जो जोर-जबरदस्ती से थोपे नहीं जा सकते। स्वयं की अनुभूति 'मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाऊँगा इत्यादि के ज्ञान' का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति इसी जीवन में योग-साधना के द्वारा कर सकता है। आत्मज्ञान, ईश्वरीय ज्ञान के विषय में शंकाओं का समाधान तर्क-वितर्क से, विचारों के आदान-प्रदान से, न्याय की कसौटी पर कसकर, प्रमाण व लक्षणादि परीक्षाओं से, सत्यासत्य का निर्णय स्वयं करने की पूर्ण स्वतंत्रता केवल 'धर्म' वाले क्षेत्र में ही मिलती है।

भ्रांति-निराकरण : मान्यता पर आधारित 'मत', रिलिजन और 'मज़हब' में स्वतंत्र विचारों का आदान-प्रदान सर्वथा असम्भव है। ये सामान्य तौर पर 'मत' और 'मज़हब' कहलाते हैं, इनको 'धर्म' की संज्ञा देना भयंकर भूल है। ये 'धर्म' कहलाने के अधिकारी भी

नहीं हैं। रिलिजन जैसे क्रिश्चियन और मज़हब जैसे मुस्लिम, 'धर्म' की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते, क्योंकि ये मनुष्यों द्वारा बनाए गए सिद्धान्तों पर आधारित हैं, कृत्रिम हैं। ये प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं हैं, इसलिए असनातन हैं, 'धर्म' की श्रेणी में नहीं आते। 'ईसाई रिलिजन और इस्लामी मज़हब' केवल 'मत' (faith/belief based-dogmatic) अथवा विश्वास पर ही टिके हुए हैं, 'स्वयं' को पहचानने के ज्ञान/आत्मज्ञान से परे हैं। क्रिश्चियन लोग 'रिलिजन' का और मुस्लिम 'मज़हब' का ठप्पा लगाते हैं। ये केवल एक व्यक्ति की विचारधारा को ही मानते हैं, और एक प्रकार की विचारधारा को ही पोषित करते हैं। छल, कपट, और बल से दूसरों पर अपनी विचारधारा भी थोपते हैं तथा साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपनाकर बलात् धर्म-परिवर्तन भी कराते हैं। इनका सार्वभौम प्राकृतिक मानवीय सिद्धान्तों से, ब्रह्म–ब्रह्माण्ड से, आत्मज्ञान/आत्मतत्त्व और आत्मचिन्तन से कोई सम्बन्ध नहीं है (देखें उ० नं० 2)। इन्हें 'मत, रिलिजन तथा मज़हब' नाम से ही सम्बोधित करना उपयुक्त है।

साधारणतया 'धर्म' का अभिप्राय हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख 'धर्म' से ही होता है। इनको 'ओम्कार धर्म' भी कह सकते हैं, जबकि क्रिश्चियन लोगों का 'रिलिजन', मुसलमानों का 'मज़हब' से ही सम्बोधित किया जाता है, ये केवल 'मत' की परिभाषा में ही आते हैं।

ओम्कार धर्म–*'हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख धर्म' ही प्राकृतिक सनातन सिद्धान्तों पर आधारित 'धर्म' हैं जो 'सर्वधर्म समभाव' के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से लागू कर समदृष्टि से देखते हैं। 'ओम्कार धर्म' ही मानवता को समान रूप से देखते हैं और समरूपता लानेवाले धर्म हैं। अन्य 'मत' क्रिश्चियन रिलिजन, तथा मुस्लिम मज़हब कहलाते हैं, उसमें ही वे अपनी महत्ता समझते हैं। ये 'मत' 'धर्म' की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते, अतः 'सर्वधर्म*

समभाव' इन 'मतों–क्रिश्चियन रिलिजन तथा मुस्लिम मज़हब पर लागू नहीं होता, कारण–ये धर्म नहीं, केवल 'मत' हैं।

प्रश्न–43. विश्व में कौन–से ऐसे मुख्य 'मत' हैं जो भारत में नहीं पाए जाते?

उत्तर : विश्व के सभी मुख्य 'मत' और 'धर्म' भारत में पाए जाते हैं। विश्व में फैले मत, रिलिजन जैसे क्रिश्चियन और यहूदी; मजहब जैसे मुस्लिम, जोरोष्ट्रियन अथवा पारसी, इत्यादि सभी 'मत' भारत में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त विश्व की सभी सभ्यताओं की जननी भी भारत है। इन्हें भारत मातृवत् प्रेम करता है। सभी 'मत' और धर्मों की आध्यात्मिकता भारत से ही उत्पन्न हुई है। मैडम लुईस जैकोलियट ने इस विषय पर 'विश्व के सभी मतों की आध्यात्मिक उत्पत्ति की जननी भारत' पर बहुत खोज की और बहुत–सी पुस्तकें लिखीं। **1896 में प्रकाशित लुईस जैकोलियट की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'लॉ बाइबल डेन्स एल इण्डे' में जैकोलियट लिखनी हैं– 'भारत विश्व का एक झूला (पालना) है। हाँ, वास्तव में ऐसा ही है। जहाँ से एक माँ अपने सारे बच्चों को अति दूर पश्चिम में भेजती है, जो हमारी उत्पत्ति की, भाषा की, मूल मर्यादा की परिचायक है। उसने अपने नैतिक नियमों, साहित्य, दर्शन तथा धर्म आदि धरोहर का हमें अनुपम उत्तराधिकारी बनाकर हमेशा के लिए सौंप दिया है।'**

वास्तव में विश्व का एक विशाल धर्म–झूला भारत है, जहाँ हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख धर्म; अनेकों 'मत'–जैसे क्रिश्चियन रिलिजन और यहूदी; मुस्लिम मजहब; जोरोष्ट्रियन अथवा पारसी सभी भारत माँ की गोदी में फलते–फूलते हैं।

प्रश्न–44. विश्व में बहुत–से 'मत' और 'धर्म' हैं, पर उस एक धर्म का नाम बताएँ जिसमें 'जीवन कैसे जियें' प्रश्न का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण कर सही उत्तर दिया गया हो ?

उत्तर : वैज्ञानिक विश्लेषण की कसौटी पर हिन्दू धर्म की

शिक्षाएँ तथा मान्यताएँ हर समय खरी सिद्ध हुई हैं। अन्य 'मत' और मज़हब अन्धविश्वास, हठ-धर्मिता और चमत्कार की शिक्षाओं पर विश्वास करते हैं। केवल वैदिक-सनातन-धर्म ही वैज्ञानिक गतिविधियों के अस्तित्व को पूर्णत: स्वीकार करता है, कारण-हिन्दू धर्म स्वयं विज्ञान के आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण है। जीवन का आनन्द लेते हुए जीना और परमात्मा की सर्वत्र उपस्थिति और उसके अस्तित्व को समझना ही हिन्दू धर्म का आधार है।

परमात्मा का अनुभव एक सिद्धान्त नहीं है, बल्कि 'परमात्मा की अनुभूति' एक वास्तविकता है। पातंजल अष्टांग-योग के द्वारा कोई भी व्यक्ति परमात्मा की निकटता के आनन्द का अनुभव प्राप्त कर सकता है। इस विषय पर वैदिक-सनातन-धर्म कहता है :

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ —यजुर्वेद 40.2

वेद का पृथिवी के सभी मनुष्यों के प्रति निर्देश है कि तुम कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करो। बिना पुरुषार्थ के न तो जीवन चलता है, न ही मोक्ष प्राप्त होता है, अत: पुरुषार्थ के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। उत्तम नर/मनुष्य वह है जो पुरुषार्थ करता है, किन्तु उसमें लिप्त नहीं होता।

प्रश्न-45. जीव या जीवन का इस धरा पर क्या लक्ष्य है ?

उत्तर : वैदिक शास्त्रों ने जीव के लक्ष्य को एक वाक्य में सार-गर्भित कर दिया है-**'धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नरः'**। इसका अभिप्राय है-'धर्म अपनाते हुए अर्थ का उपार्जन करना' और उस 'अर्थ अथवा धन' से 'काम' अर्थात् कामनाएँ पूर्ण करना, तत्पश्चात् इन कामनाओं का अतिक्रमण कर मोक्ष प्राप्त करना। 'धर्म' का पालन करते हुए 'अर्थ' प्राप्त करना ही मुख्य उद्देश्य है। धर्म का तात्पर्य है 'सही तरीके से' धन कमाना और शुद्धता के साथ सभी इच्छाओं को पूरी करना। अन्ततोगत्वा जो व्यक्ति इन सभी इच्छाओं का स्वामी होता है और अपने-आपको इन सभी

इच्छाओं की पकड़ से मुक्त रखता है, तो कहा जाएगा कि वह स्वयं का मालिक है, वही मस्त होकर जी सकता है और मोक्ष का आनन्द आत्मिक उन्नति से प्राप्त कर सकता है। पूर्ण इन्द्रिय-संयम के अभाव तथा अनासक्तभाव में घर-बार छोड़नेवालों की मुक्ति नहीं होती, परन्तु दुर्गति अवश्य होती है।

जब व्यक्ति की आत्मिक उन्नति होती है, तब आत्मा सर्वोच्च स्थिति में होने से परमशक्ति को प्राप्त करती है। यह आत्मा की अन्तिम स्थिति है जहाँ आकांक्षा या चाह नहीं होती। इच्छाओं से मुक्त होना ही मोक्ष कहा जाता है। अत: जीवन का लक्ष्य सब इच्छाओं से मुक्त होकर रहना है।

इच्छाओं से मुक्त होना ही जीवन का लक्ष्य है. परमात्म-प्राप्ति के परम आनन्द की उपलब्धि के लिए इस स्थिति का होना नितान्त आवश्यक है। सामान्यतया यह स्थिति मुक्ति के नाम से जानी जाती है, जिसे मोक्ष भी कहते हैं।

प्रश्न-46. परमात्मा धर्मपरायण और सदाचारी जीवन जीने में हमारी सहायता कैसे करते हैं ?

उत्तर : आलंकारिक रूप से भागवत पुराण में एक प्रतीक रूप में कहा गया है। इसके अनुसार परमात्मा अदृश्य है। अदृश्य प्रभु हमारा मित्र है, जो धर्मपरायण जीवन की ओर बढ़ने में हमारा मार्ग-निर्देशन करता है। हम जहाँ जाते हैं, वहीं वह अदृश्य मित्र 'परमात्मा' भी साथ जाता है। यह अदृश्य मित्र 'परमात्मा' हमें सदाचारी धर्म-परायण जीवन जीने में हमारा मार्ग-दर्शन करता है।

नोट : ऐतिहासिक प्रमाण पुराणों में वर्णित हैं। पुराणों का साहित्य जीवन के छिपे हुए भावों को प्रतीकात्मक रूप से बताता है। पुराणों के वृत्तान्त रूपात्मक हैं अर्थात्- **सजीव चित्रण के साथ रोचक कथाओं का वर्णन है। इन्हें सार्वजनिक रूप से समझना आसान है। इसी मुख्य ध्येय को लेकर पुराणों की रचना की गई है।**

अतः इन लेखों के प्रतीकात्मक रूप को तात्त्विक रूप से अक्षरशः नहीं लेना चाहिए।

पुराणों का असली रूप और उद्देश्य तो विभिन्न साम्प्रदायिक समूहों एवं ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय साहित्य के विकृत अनुवाद और विवेचनाओं के कारण दूषित हो गया है।

प्रश्न-47. हिन्दुओं का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शिष्टाचार क्या है ?

उत्तर : कोई भी व्यक्ति बूढ़ा हो या जवान, स्त्री हो या पुरुष, मित्र हो या अजनबी, गरीब हो या अमीर, नगरीय हो या ग्रामीण, सम्बन्धी हो या अपरिचित, अभिवादन में परस्पर एक-दूसरे के समक्ष हाथ जोड़ते हैं, तब धीरे से अपना सिर झुकाकर बड़े विनम्र भाव से 'नमस्ते' कहते हैं। हिन्दुओं का बहुत ही सामान्य शिष्टाचार 'नमस्ते' है और सबसे अधिक जरूरी शिष्टाचार भी 'नमस्ते' है।



व्यक्तिगत अथवा सामाजिक तौर पर एक व्यक्ति की श्रद्धापूर्ण या प्रेम व स्नेहपूर्ण भाव से अभिव्यक्ति 'नमस्ते' है।

प्रश्न-48. हिन्दुओं की बच्चों के बारे में क्या धारणा है ? बच्चों के साथ हिन्दू लोग किस तरह से व्यवहार करते हैं ?

उत्तर : यजुर्वेद (8.36) कहता है कि परमात्मा सबसे महान्, सर्वव्यापक और सभी को सब-कुछ देनेवाला है। इस प्रकार हिन्दू, बच्चों को परमात्मा की देन मानते हैं। बच्चों से बड़ी सावधानी एवं प्रेमपूर्वक बर्ताव किया जाता है। **यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा** (9.130) मनु ने भी इस सचाई को बढ़ाते हुए कहा है कि बच्चा, बेटा हो या बेटी, दोनों में एक ही आत्मा है, पुत्र और पुत्री को समान समझे। इस तरह से बाल-अपराध के लिए हिन्दू समाज में कोई स्थान नहीं है।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

—चाणक्य नीति 2.10

आचार्य चाणक्य कहते हैं कि जो माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षा नहीं देते, वे अपने बच्चों के शत्रु हैं। विद्याहीन बालक-बालिका विद्वानों की सभा में वैसे ही शोभाहीन होते हैं जैसे हंसों के मध्य में बगुला। पातंजल महाभाष्य (8.18) ने भी बच्चों के अधिकारों को दृढ़ता प्रदान की है—माता-पिता बच्चों को विकसित वातावरण एवं शिक्षा प्रदान करें, क्योंकि दयालुता और मजबूती की आधारशिला शिक्षा ही है।

लालयेत् पंच वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥

—चाणक्य नीति 3.10

चाणक्य ने स्पष्ट कहा है—'पाँच वर्ष की आयु तक बच्चों का लालन-पालन लाड-प्यार, स्नेह से करें, दस वर्ष की आयु तक उन्हें उनके कर्तव्यों का अहसास अनुशासन से कराएँ, तथा 16 वर्ष की आयु होने पर बच्चों के साथ वयस्क (मित्र) की भाँति व्यवहार करना उत्तम है।'

अमेरिका के शिकागो यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक रिचर्ड ए० श्वुडर ने भारतीय बच्चों पर अध्ययन करने के उपरान्त 'साइँटिफिक

अमेरिकन' अगस्त 1999 में लिखा कि–'पढ़नेवाले भारतीय बच्चे अपने चाल-चलन और परिवेश के बारे में नैतिक मूल्यों के आधार पर जीवन ढालते हैं और जीवन जीते हैं। खोजबीन करने पर यह भी पाया कि **भारतीय जन-जीवन सापेक्षतावादी की भाँति जीवन आरम्भ करते हैं और सार्वभौमिक व्यक्ति की भाँति जीवन समाप्त करते हैं।** इस प्रकार से भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना हमेशा बनाए रखते हैं। इसके विपरीत अमेरिकी वयस्क बदले हुए हालात के अनुसार अपने-आपको बदल लेते हैं।' अमेरिकी लोग समयानुसार मार्ग बदल लेते हैं।

उपर्युक्त तथ्य यह बताता है कि 'परोपकार, भलाई और सचाई' समाज को स्वस्थ रखने के लिए मूल आधार है। ये गुण ही मानवीय सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाए रखते हैं।

हिन्दू लोग बच्चों को परमात्मा की देन (उपहार) मानते हैं, इसलिए वे बच्चों के साथ बड़े प्यार, दुलार और समुचित देखभाल के साथ व्यवहार करते हैं।

प्रश्न-49. महिलाओं के प्रति हिन्दुओं की क्या धारणा है ?

उत्तर : आचार्य चाणक्य का कहना है :

मातृवत् परदारेषु परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥

—चाणक्य नीति 12.13

'जो मनुष्य परस्त्री को माता के समान, पराए धन को मिट्टी के ढेले के समान और समस्त प्राणियों को अपने आत्मा के समान देखता है, वस्तुतः वही ठीक-ठीक देखता है।' इसलिए हिन्दू-समाज नारियों को माँ अथवा बहन-बेटी के रूप में देखता है।

हिन्दू समाज में नारियाँ परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति का प्रतिनिधित्व मातृशक्ति के रूप में करती हैं, इसी कारण प्रभु के दिव्य गुणों को आलंकारिक ढंग से देवियों के रूप में दर्शाया है; (देवी तथा परमात्मा की परिभाषा के लिए प्रश्न-संख्या 86-87

देखें) उदाहरणार्थ—ज्ञान की देवी को सरस्वती, समृद्धि की देवी को लक्ष्मी कहा गया है। दैवीय संहारक शक्ति पार्वती के विभिन्न रूप भी इस प्रकार से हैं : अम्बिका, भवानी, चण्डी, दुर्गा, गिरिजा, काली, ललिता और मीनाक्षी। मनु कहते हैं:

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

—मनु॰ 3.56

जिस घर में स्त्रियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं, लेकिन जहाँ घर में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता अर्थात् उनका तिरस्कार होता है, वहाँ सरी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

मनु ने (3.55) स्त्रियों के अधिकार को निश्चित करते हुए कहा है—'परिवार में माता-पिता अपनी लड़कियों को, पति-वर्ग अपनी पत्नियों को, घर के बाकी सब सदस्य अर्थात् देवर, बहनोई, साला, इत्यादि स्त्रियों को अत्यधिक मान-सम्मान दें।'

मनु के इसी ध्येय को लेकर मातृशक्ति को उचित सम्मान देते हुए हर हिन्दू-गाँव में एक देवी का मंदिर होता है; पर सार्वजनिक रूप से मान और सम्मान दिया जाना एक और बात है। स्वामी विवेकानन्द ने भारत-यात्रा के दौरान कन्याकुमारी में कन्याकुमारी की प्रतिमा के सम्मुख रोते हुए कहा था—'अगर हिन्दू समाज कन्याकुमारी की तरह अपने स्त्री-समाज की पूजा करता और अपने घर में स्त्री को सुसंस्कृत कर शिक्षित करता, तो बच्चे शिक्षित होते और निर्धनता व अज्ञानता का कोई स्थान न होता, हम गर्व से सिर उठाकर चलते। हिन्दुओं के लिए ऐसी गुलामी की स्थिति न आती।'

संसार-भर में केवल हिन्दू समाज की बहिनों के लिए रक्षा-बन्धन का पर्व मनाता है। इस पर्व पर सभी बहिनें बड़े प्रेम से अपने-अपने भाइयों की कलाइयों पर राखी बाँधती हैं।

सम्पूर्ण संसार का हिन्दू समाज अक्षय तृतीया, श्रावणी अथवा

हरियाली तीज का पर्व अगस्त महीने में मातृ–दिवस या विश्व मातृ दिवस के रूप में पूरे हर्षोल्लास के साथ मनाता है। नारी को समाज में माता के रूप में दर्शाने का श्रेय केवल हिन्दू धर्म को ही है, अन्य मत, मज़हब, रिलिजन इस बात को स्वीकार तक नहीं करते।

जयपुर, राजस्थान में अक्षय तृतीया, श्रावणी अथवा हरियाली तीज के दिन एक भारी जुलूस निकाला जाता है। राजा के महल से सबसे पहले नागरिकों के अलग–अलग समूह रंग–बिरंगी विजय–पताका लिये हुए जुलूस के रूप में निकलते हैं। इसके पश्चात् एक के बाद एक करके बहुत सजे हुए पच्चीस हाथियों की सवारी आती है। इसके बाद क्रमश: थल–सेना, घुड़–सेना, तोपखाना और आखिर गण्य–मान्य नागरिक और रक्षक क्रमश: आते हैं। अंत में एक रथ में सुसज्जित सशस्त्र भव्य देवी आती है, जो 'विश्वमातृपन' का प्रतिनिधित्व करती है। परम्परागत रूप से इस भव्य शोभायात्रा को देखने के लिए दुनिया के हर हिस्से से अनेकों पर्यटक लोग भी आते हैं। हम इस सुन्दर शोभायात्रा का शब्दों में वर्णन नहीं कर सकते। इस भव्य परेड अथवा शोभायात्रा में सम्मिलित दर्शकों का विशाल जनसमूह मीलों तक देखा जा सकता है।

यूरोप के मेसिडोनिया राज्य में, जो पुराने समय में युगोस्लोवाकिया का एक प्रान्त था, एक कैथोलिक ईसाई घर में जन्मी 'एगनस' नाम की औरत ने भारत के हिन्दुओं को 'ईसाई मत' में धर्मान्तरण करने का वचनबद्ध संकल्प करते हुए अपना नाम 'टेरेसा' रखा। उसने साम–दाम–दंड–भेद की नीति से निरन्तर प्रयास कर बहुत सारे हिन्दू भाई–बहनों को कोलकाता में 'ईसाई मत' में परिवर्तित भी किया। विश्व के ईसाई संस्थानों ने इन ईसाई मत–परिवर्तन के सफल प्रयासों के लिए 1979 में Leader of Missionaries of Charity, Calcutta के 'टेरेसा' को 'नोबेल पारितोषिक' (The Nobel Peace Prize1979) की राशि $1.2

million US Dollars; 1,200,000.00 डॉलर से सम्मानित किया। इसके उपरान्त भी द्वेषरहित सहिष्णुता से परिपूर्ण हिन्दू समाज ने 'टेरेसा' को माँ की दृष्टि से ही देखा और माँ की पदवी भी प्रदान की। टेरेसा 'Mother Teresa' के नाम से विश्व में प्रसिद्ध भी हो गई। यह चमत्कार केवल हिन्दू धर्म का ही है, कारण–पाश्चात्य सभ्यता में अपनी माँ को माँ नहीं कहेंगे, बल्कि उसके नाम से ही बुलाएँगे। अगर नाम टेरेसा है तो टेरेसा ही कहेंगे, 'Mother Teresa' कहकर नहीं बुलाएँगे। **नारी को माता के रूप में दर्शाने का श्रेय केवल हिन्दू धर्म को ही है। इससे ज्यादा ज्वलन्त उदाहरण विश्व में कहीं भी किसी भी संस्कृति एवं सभ्यता में नहीं मिल सकता!**

हिन्दू समाज में महिलाओं को भोग की दृष्टि से नहीं देखा जाता, किन्तु उनका स्थान माँ और बहन का है। इस प्रकार की सामाजिक मान्यताएँ सम्पूर्ण विश्व में केवल हिन्दू धर्म में ही देखने को मिलती हैं।

प्रश्न–50. परिवार के बड़े बूढ़े सदस्यों अथवा माता-पिता को किस दृष्टि से देखा जाता है ?

उत्तर : विदुर नीति (4.39) के अनुसार वे लोग, जो घर के अनुभवी बड़े-बूढ़े सदस्यों की संगति में नहीं बैठते, अपरिपक्व रह जाते हैं। वृद्ध–जन अपना जीवन भोग चुके हैं और इस प्रक्रिया में उन्होंने बहुत–सा अनुभव प्राप्त किया है। इसलिए घर के बड़े–बूढ़ों को बुद्धिमत्ता का स्रोत समझा जाता है। उनका सम्मान किया जाता है और समस्याओं के समाधान में उनका अनुभव काम में लिया जाता है। संस्कृत की एक सूक्ति के अनुसार–

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः कर्तुं शक्या वर्षशतैरपि॥

अर्थात् 'माता–पिता अपनी संतानों के जन्म, लालन–पालन में जो कठिनाई उठाते हैं, संतान के लिए उस ऋण से उऋण

होना सौ वर्षों में भी सम्भव नहीं है।'

शतपथ ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद् माता-पिता और बड़े बूढ़े/आचार्यों के बारे में कहते हैं[1] :

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

—शतपथब्राह्मण 14/5/8/2; छान्दोग्य उपनिषद् 6/14/2

जिसके माता-पिता और आचार्य उत्तम शिक्षक हैं, उनकी संतान ज्ञानवान् बनती है। प्रथम शिक्षक विदुषी माता है, द्वितीय शिक्षक विद्वान् पिता और तृतीय गुणी शिक्षक आचार्य है। इनके गुणों और उपदेशों से संतान स्वतः ही सुशील एवं शिक्षित होती हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् भी इस सन्दर्भ में आचार्य-मुख से निम्न उपदेश दिलाता है :

दैवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि। यान्यस्माकꣳ सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि॥

—तैत्तिरीय उपनिषद्, 7, अनु॰ 11 कं॰ 2

'सुपूज्य वृद्धजनों (देवपितृ) की सेवा-टहल में कोई कमी न आने दो। मातृ-भक्त बनो। पितृ-भक्त बनो। गुरु-भक्त बनो। अतिथि-सेवा मन से करो। जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्यभाषणादि को किया करो, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत करो। जो हमारे सुचरित्र कर्म हों, उन्हीं को ही ग्रहण करो, हमारे अन्य दूषित कर्मों पर ध्यान मत दो।'

अतः माता-पिता और आचार्य की सेवा जीवन का एक अभिन्न अंग है।

साधारणतया वृद्ध-जनों की देखरेख उनके निकट सम्बन्धी करते हैं। दादा-दादी अथवा नाना-नानी अपने नाती-पोते के साथ भोजन करके सोने से पहले कहानियों का आनन्द देकर बच्चों को

---

1. स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, सत्यार्थ भास्कर, इंटरनेशनल आर्यन फाउँडेशन, बम्बई, 1962, पृष्ठ 198 सुरक्षा और सान्निध्य की भावना देते हैं।

ज्ञान-प्राप्ति की यह एक अनुपम अद्वितीय पद्धति स्वस्थ समाज के जीवन-मूल्यों को सिखाती है और पोषित करती है। नई पीढ़ी में इन मूल्यों के प्रति ऐसी गहन भावना पैदा करती है, जो उनके अधिक अच्छे मानव बनने में सहायक होती है। अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रक्रिया सद्व्यवहार, इतिहास व नैतिक मूल्यों की शिक्षा ही नहीं देती, बल्कि ज्ञान के प्रसार द्वारा वृद्ध होने के अनुभव की पहचान भी करवाती है।

वैज्ञानिक अध्ययन यह दर्शाता है कि वे बच्चे जिनका अपने दादा-दादी या नाना-नानी से घनिष्ठता का सम्बन्ध रहता है, अधिक शान्त और भरोसा करनेवाले होते हैं। वे घर के वृद्ध-जनों को बूढ़ा होने के कारण निकम्मे अथवा व्यर्थ नहीं समझते। हिन्दू-समाज वृद्ध लोगों को अधिक महिमामय ढंग से स्वीकार करता है, क्योंकि वे बूढ़े होने और मृत्यु की ओर अग्रसर होने की कला को समझते हैं।

प्रश्न-51. हिन्दू धर्म के अनुयायियों का समाज के प्रति दैनिक कर्तव्य क्या है ? एक हिन्दू परिवार में पड़ोसियों, मित्रों, दीन-दुःखियों और अतिथियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है ?

उत्तर : हिन्दू धर्म के अनुयायियों का एक कर्तव्य है- अतिथियों का सम्मानपूर्वक स्वागत तथा सत्कार करना। 'पंच महायज्ञों' का दैनिक पालन करने का विधान और आचार-संहिता महान् मनु द्वारा मनु स्मृति (3/43-84) में निम्न रूप से दिया है :

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पंच क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥

- मनु-स्मृति 3-69

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

मनु-स्मृति 3-70

पढ़ना-पढ़ाना, संध्योपासन करना **ब्रह्मयज्ञ;** माता-पिता आदि की सेवा-सुश्रूषा, भोजन आदि से तृप्ति करना **पितृयज्ञ;** प्रातः-सायं हवन करना **देवयज्ञ;** पशु-पक्षियों, रोगी तथा आश्रितों आदि को देने के लिए अपने भोजन में से भाग को बचाकर इनको देना **'भूतयज्ञ'** अथवा **'बलिवैश्वदेवयज्ञ',** अतिथियों को भोजन व सेवा-सत्कार से तृप्त करना **'नृ-यज्ञ'** अथवा **'अतिथि यज्ञ'** कहलाता है।

मनु ने आदेश दिया है (मनु-स्मृति 3/75-76) कि देवकर्म अर्थात् अग्निहोत्र अवश्य करें। अग्नि में घृत आदि अच्छे पदार्थों की आहुति देवें, ताकि वे पदार्थ सूक्ष्मकणों में बदलकर वातावरण में अग्नि द्वारा सर्वत्र फैल जाएँ। सूर्य की किरणों से मिलकर ये पदार्थ अपना अनूठा प्रभाव जन-समूह पर उसी प्रकार डालते हैं, जिस प्रकार सूर्य से वृष्टि तथा वृष्टि से अन्न पैदा होता है और उस अन्न से प्रजा का पालन-पोषण तथा समृद्धि होती है।

संक्षेप में 'पंच महायज्ञों' का वर्णन निम्न है :

1. **ब्रह्म यज्ञ :** वेद-ज्ञान तथा ईश्वर-ज्ञान को ब्रह्म-यज्ञ कहा गया है। वैदिक ऋचाओं द्वारा ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना ही ब्रह्म यज्ञ है। संध्या-क्रिया द्वारा ब्रह्म की अच्छी प्रकार से आराधना, उपासना और ध्यान किया जाता है। ब्रह्म-यज्ञ के दो भाग हैं-सन्ध्योपासना और स्वाध्याय। इन्हें समान रूप से करने से सम्पूर्ण दिवस शांत, प्रसन्न एवं मंगलमय व्यतीत होता है।

वैदिक ऋचाओं का भक्तिपूर्ण पठन- पाठन और गायन करना, इनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान, प्राणायाम तथा योग द्वारा भगवान् का ध्यान करना 'ब्रह्मयज्ञ' कहलाता है।

2. **देव यज्ञ :** प्राकृतिक शक्तियों के प्रदाता, वातावरण की शुद्धता बनाए रखनेवाले दिव्य प्राणदाता को देव कहते हैं। 'देवो दानाद्वा, **दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति**

वा। यो देवः स देवता', निरु.7.15'। **'देव यज्ञ ही अग्निहोत्र है' इसको हवन भी कहते हैं।** (देखें प्रश्न 30)। इसका प्रयोजन पवित्रता, स्वास्थ्य, अच्छे गुणों और बुद्धि का विकास करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'अग्निहोत्र' करते हैं, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग किया जाता है।

देव यज्ञ को 'अग्निहोत्र' कहते हैं, सुगन्धित पुष्टिवर्धक और रोगनाशक पदार्थ डालकर देवयज्ञ करने से वातावरण शुद्ध रहता है।

3. **पितृ यज्ञ : पान्ति पालयन्ति रक्षन्ति अन्न-विद्या-सुशिक्षा-आदि दानैः ते पितरः** अर्थात् जो अन्न, विद्या, सुशिक्षा आदि से संतानों का लालन, पालन, पोषण करते हैं, वे 'पितृ' कहलाते हैं। **देवा या पितरः; स्विष्टकृतो वै पितरः** गो॰उ॰ 1.24, 25; '**मर्त्याः पितरः** श॰ 2/1/3/4' मनुष्य ही पितर हैं, अर्थात् मृत पितर नहीं हैं।

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥

—मनुस्मृति 3-82

मनु ने आदेश दिया—माता-पिता आदि बुजुर्गों से अत्यन्त प्रेम से प्रतिदिन श्राद्ध अथवा श्रद्धा से सेवा-शुश्रूषा, भोजन आदि कर्त्तव्य करे। सुखयुक्त सेवा से तृप्त करना 'तर्पण' तथा श्रद्धा-भाव से सेवा करना 'श्राद्ध' कहलाता है।

माता-पिता, विद्वानों और ज्ञानी ऋषियों की भली-भाँति सेवा करना तथा इन विद्वानों और अनुभवी लोगों से ज्ञान और बुद्धिमत्ता प्राप्त करना पितृ यज्ञ है।

'माता-पिता, पितामह और आचार्य आदि ही पितर कहलाते हैं। इनका यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक सम्मान, सेवा करना ही पितृ-यज्ञ कहलाता है।

4. **अतिथि यज्ञ** : अतिथि का अर्थ है 'अ-तिथि' जो बिना

तिथि अर्थात् बिना सूचना के आता है। मनु के अनुसार (3-102 से 118)-

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥

—मनुस्मृति 3-96

आए हुए अतिथि के लिए व्यवहारोचित विधि के अनुसार सत्कार करके शक्ति के अनुसार आसन और जल तथा अन्न प्रदान करे।

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥

—मनुस्मृति 3-102

जो विद्वान् एक ही रात तक पराए घर में रहे तो अतिथि कहलाता है, क्योंकि नित्य नहीं ठहरता, उसका आना अनिश्चित होता है।

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।
भुंजीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती॥

—मनुस्मृति 3-116

विद्वान् अतिथियों , परिवार-जनों और सेवकों द्वारा भोजन कर लेने पर शेष बचे भोजन को पति-पत्नी खाएँ।

अतिथि की एक और परिभाषा है—'नास्ति, द्वितीय तिथि यस्य' अर्थात् जिसके दोबारा आने का भरोसा नहीं। प्रायः अतिथि एक ऋषि, योगी अथवा ऐसा विद्वान् होता है जिसका ध्येय मानवता की सेवा के लिए स्थान-स्थान घूमना है। वे लोग जो पवित्र और अच्छे हैं तथा समाज का उत्थान करने में जुटे हैं, वे अतिथिदेव की श्रेणी में आते हैं। इसलिए हिन्दू लोग मनु के निर्देश का पालन करते हुए अतिथियों के प्रति बहुत मान-मर्यादा और सेवा-सत्कार का भाव रखते हैं।

ऐसे विद्वान्, त्यागी, और कल्याणकारी अभ्यागतों का सत्कार

करना ही 'अतिथि-यज्ञ' कहलाता है।

5. बलिवैश्वदेव यज्ञ : इसका दूसरा नाम 'भूतयज्ञ' भी है। इसका अर्थ है दीन-हीन, आश्रित लोगों, और निराश्रय पशु-पक्षियों को अपने भाग में से निकालकर उनको अन्न देना अथवा देखभाल करना। केवल मानव ही सम्पूर्ण प्राणियों के पालन करने की क्षमता रखता है, निर्धन और अनाथ लोगों की सहायता और सेवा-सुश्रूषा कर सकता है। मनु ने यहाँ तक लिखा है :

देवताऽतिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पंचानामुच्छ्वसन्न स जीवति॥

—मनुस्मृति 3 72

जो गृहस्थी देवताओं को हवन के रूप में, अतिथियों को अतिथि-यज्ञ के रूप में, आश्रितों को भूत या बलिवैश्वदेव यज्ञ के रूप में, माता-पिता-पितामह आदि के लिए पितृयज्ञ के रूप में, और अपनी आत्मा के लिए ब्रह्मयज्ञ के रूप में—इन पाँचों के लिए उनके भागों को नहीं देता है अर्थात् पाँच दैनिक महायज्ञों को नहीं करता, वह साँस लेते हुए भी वास्तव में नहीं जीता अर्थात् मरे हुए व्यक्ति के समान है।

मुख्यतः निराश्रित जनों और प्राणियों की सेवा बलिवैश्वदेव यज्ञ है। समाज-सेवा ही बलिवैश्वदेव यज्ञ का मुख्य लक्ष्य है।

अगर हिन्दू समाज के लोग 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' को दैनिक जीवन में अपनाते तो भारत के हिन्दू लोगों का अन्य 'मत-मजहब और रिलिजन' में धर्म-परिवर्तन नहीं होता। समाज के गरीब, पिछड़े, दीन-हीन, दलित और आश्रित लोगों की सुचारु रूप से पूर्ण देखभाल तथा समाज-सेवा होती तो ये निराश्रित हिन्दू लोग अपने वंश-परम्परागत धर्म को कभी न छोड़ते और न कभी धर्म-परिवर्तन करते।

प्रश्न-52. नीतिशास्त्र की पुस्तकें कौन-सी हैं ?

उत्तर : नीतिशास्त्र की मुख्यत: तीन निम्न पुस्तकें हैं :

1. विदुर नीति : महाभारत-युद्ध के समय बुद्धिमान् विदुर ने नीति की व्याख्या की है। वह 'विदुर नीति' के नाम से प्रसिद्ध है।

2. भर्तृहरि नीति : महान् राजा विक्रमादित्य के राज्य-काल 400 ईसा-पूर्व, उनके बड़े भाई भर्तृहरि ने जो एक महान् विद्वान थे, अनेक पुस्तकें लिखीं। उन पुस्तकों में सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है 'भर्तृहरि नीतिशतकम्'। इस पुस्तक में तीन विषयों पर एक-एक सौ श्लोक हैं, इस कारण इसका नाम शतकम् है।

3. चाणक्य नीति : राजा विक्रमादित्य के प्रधानमंत्री चाणक्य थे। कुछ इतिहासकारों ने राजा चन्द्रगुप्त मौर्य को विक्रमादित्य माना है जो सत्य प्रतीत नहीं होता। बाद के अध्यायों में इसके पूर्ण तथ्य और विवरण देंगे। प्रधानमंत्री चाणक्य ने राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र पर कई पुस्तकें लिखीं। इनमें 'चाणक्य नीति' नैतिकता का विवेचन करती है।

प्रश्न-53. 'विदुर नीति' का एक उदाहरण दीजिये!

उत्तर : विदुर ने तर्क द्वारा धृतराष्ट्र को समझाने का प्रयत्न किया कि 'वह पांडवों के भाग में आनेवाली भूमि, पांडवों को प्रदान करे'। इस दौरान हुए तर्क-वितर्क को ही 'विदुर नीति' कहा जाता है।

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्॥

—विदुर नीति 1.57

'उचित ढंग से अर्जित किए हुए धन के केवल दो दुरुपयोग हो सकते हैं—अयोग्य व्यक्तियों को उपहार देना और योग्य व्यक्तियों को न देना।'

प्रश्न-54. 'भर्तृहरि नीति' का कोई उदाहरण दीजिए!

उत्तर : भर्तृहरि ने नीति, शृंगार एवं वैराग्य पर सौ–सौ श्लोकों से युक्त शतकत्रय की रचना की है। नीति-शतक से उद्धृत उनका एक नीति-श्लोक है, जिसमें महात्मा के स्वभाव का वर्णन है–

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः।
यशसि चाऽभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

–भर्तृहरि नीति शतकम् 63

'विपरीत या कठिन समय में भी धीरज न छोड़ना, अपना उत्थान होने पर भी क्षमाशील और दयावान् होना, अपनी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ रहना, यशवर्धक कामों में रुचि होना, और वैदिक ज्ञान-ग्रन्थ पढ़ने की लालसा–यह सब महान् आत्माओं के स्वभाव में सहज ही होता है।

प्रश्न–55. चाणक्य-नीति का कोई उदाहरण दीजिए!

उत्तर : राजा चन्द्रगुप्त के विस्तृत साम्राज्य का निर्माण करने का मुख्य श्रेय चाणक्य को प्राप्त है। चाणक्य एक महान् विद्वान् और लेखक थे। उन्हें आचार्य अर्थात् महान् गुरु की पदवी दी गई है। राजनीतिशास्त्र पर लिखी उनकी पुस्तकें आज भी भारतीय विश्वविद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में पढ़ाई जाती हैं। हिन्दू परिवार के स्वरूप का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं :

सत्यं माता, पिता ज्ञानं, धर्मो भ्राता, दया सखा।
शान्तिः पत्नी, क्षमा पुत्रः, षडैते मम बान्धवाः॥

–चाणक्य नीति दर्पण 12.10

'सत्य मेरी माता है, ज्ञान मेरा पिता है, धर्म मेरा भाई है, दया मेरा मित्र है, शान्ति मेरी पत्नी है, और करुणा मेरा पुत्र है। ये छः गुण ही मेरे स्वजन हैं।'

चाणक्य ने एक हिन्दू परिवार के परस्पर व्यवहार का उचित

चित्रण किया है।

प्रश्न-56. एक सामान्य हिन्दू परिवार के नैतिक मूल्यों के कुछ उदाहरण दीजिए।

उत्तर : एक सामान्य हिन्दू के नैतिक सिद्धान्तों का वर्णन निम्नलिखित प्रसिद्ध संस्कृत लोकोक्ति से प्रस्तुत करते हैं :

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

'भगवान की कृपा से सभी प्राणी सुखी हों, संसार में सभी नीरोग हों, फूलें-फलें, सभी का कल्याण हो और किसी को भी कोई दुःख अथवा कष्ट न हो।'

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

'यह मेरा अपना है और यह पराया है—ऐसा केवल संकीर्ण मन वाले मनुष्य सोचते हैं। जिनका चरित्र उदार है, मन विशाल है, उनके लिए तो सारा विश्व ही उनका परिवार है।'

प्रश्न-57. ऐसी कौन-सी पुस्तक है जो संसार के सभी धर्म-ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन करके विषयवस्तु का पूरा ज्ञान देती है ?

उत्तर : कलकत्ता में 1868-72 ई० वर्षों में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धर्मों और धर्म-पुस्तकों पर कुछ विस्तृत वक्तव्य दिये। इन भाषणों का आयोजन नोबेल पुरस्कार विजेता श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा किया गया था। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वामी जी से आग्रह किया कि वे अपने भाषणों को पुस्तकों का रूप दें, ताकि वे लोग जो भाषणों में नहीं आ सके उन्हें भी ज्ञान मिल सके। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर की प्रार्थना स्वीकार करके स्वामी दयानन्द सरस्वती ने **सत्यार्थ प्रकाश** लिखना आरम्भ किया, जिसका अर्थ है सत्य का प्रकाश या सत्य-दर्शन। इस पुस्तक में बड़े तार्किक और न्यायपूर्ण ढंग से विश्व के सभी धर्मों और धर्म-ग्रंथों की तुलना की गई है। यह पुस्तक पहली

बार ई० वर्ष 1882 में प्रकाशित हुई थी।

फ्रांस की एक महिला लुईस जैकोलियट ने 1870 में विभिन्न धर्मों पर कई पुस्तकें लिखी थीं। उनमें से एक पुस्तक का नाम है –*La Bible Dans L' Inde - 'Hindu Origins of Christian and Hebrew Revelations'.* इस पुस्तक में बहुत रुचि से रिलिजन जैसे क्रिश्चियन तथा यहूदी लोगों के आचार-विचार, रहन-सहन के नियमों को हिन्दू धर्म से तुलनात्मक अध्ययन करके लुईस जैकोलियट ने प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया कि उनकी आध्यात्मिक उत्पत्ति का स्रोत 'हिन्दू धर्म' ही है। 'हिन्दू धर्म' के अनुयायियों के लिए यह पुस्तक विशेष पठनीय है। इसका भी हिन्दी-अनुवाद हम भविष्य में करेंगे, ऐसी हमारी योजना है।

प्रश्न-58. हिन्दू धर्म के अनुसार किस प्रकार के आहार को उचित और स्वास्थ्यवर्धक बताया गया है ?

उत्तर : 'आयुर्वेद' वैदिक आयुर्विज्ञान की उपचार-कला का एक अनुपम ग्रंथ है। आयुर्वेद स्वास्थ्यप्रद दीर्घ आयु की कामना तथा आरोग्य रहने के लिए निम्न प्रकार के आहार की परिभाषा प्रदान करता है :

1. आहार : सात्त्विकता अर्थात् शान्ति, पवित्रता और शुद्ध-गुणों के लिए स्वास्थ्यवर्धक सात्त्विक भोजन करना ही उचित है। दूध और शाकाहारी भोजन अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घ आयु देता है। यदि दूध पाच्य नहीं है तो दही, पनीर और छाछ का प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि इनमें दुग्ध की मिठास अर्थात् लेक्टोज (Lactose-sugar) नहीं होती। शाकाहारी भोजन में सभी प्रकार के प्रोटीन अच्छी मात्रा में मिलते हैं। फलियाँ, सभी तरह की दालें, बादाम, अखरोट, नारियल, काजू आदि सूखे मेवे प्रोटीन के बहुत अच्छे स्रोत हैं, पर न मिलने पर मूँगफली प्रोटीन का एक उत्तम साधन है। ये सभी वस्तुएँ न केवल पर्याप्त प्रोटीन ही देती हैं, अपितु साधारण आय वाले लोग भी इन्हें आसानी से प्राप्त करने

में समर्थ हैं। हरे शाक और सब्जियाँ एंटी-ऑक्सीडैंट, विटामिन तथा खनिज भी प्रचुर मात्रा में प्रदान करते हैं। ये शरीर की कोशिकाओं की स्वतंत्र 'रेडिकलों' से रक्षा करते हैं जो कई प्रकार के रोग पैदा करते हैं। 'लाइकोपीन' एक ऐसा एंटी-ऑक्सीडैंट है जो लाल टमाटर, गुलाबी ग्रेप-फ्रूट, संतरा और तरबूज में भरपूर मात्रा में मिलता है। हाल में हुए परीक्षणों से पता चला है कि एंटी-ऑक्सीडैंट अधिकतर रक्त-चाप, हृदय-रोग, मस्तिष्क व्याधियों और कैंसर से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

हिन्दू नैतिक सिद्धांतों के अनुसार भोजन उचित रीति से प्राप्त किया जाना चाहिए और इसके लिए किसी भी जीव या पशु को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह बात सिद्ध है कि मांसाहार हृदय-रोग, कैंसर और रक्त-चाप आदि गंभीर रोगों का एक बड़ा कारण है। पशुओं का मांस, अंडे, मुर्गे और समुद्री जीव जिन्हें समुद्री भोजन कहा जाता है, के खाने से हृदय-रोग होता है, क्योंकि इन आहारों में 'कोलैस्ट्रोल' और 'ट्राइगलिसराइड्स' की प्रचुर मात्रा होती है जैसा कि आधुनिक उपचार-विज्ञान में की गई शोध ने सिद्ध किया है।

केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही प्रतिवर्ष 'अरबों' पशु मानव-आहार के लिए मारे जाते हैं। पशुओं को एंटीबायोटिक खिलाए जाते हैं ताकि वे विशेष मोटे और बड़े हों। परिणामस्वरूप ऐसे Resistant Bacteria अथवा अतिसूक्ष्म-अणुजीव जो आधुनिक दवाओं से भी नहीं मर सकते, उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे पशुओं का मांस खानेवाले लोगों के शरीर में Resistant Bacteria के द्वारा रोग शीघ्र पनपते हैं और मृत्यु की संभावना बढ़ती है। इनको आरोग्य करने में अमेरिका प्रतिवर्ष पाँच अरब डॉलर व्यय करता है।

पेय पदार्थ : ऐसे पेय जिनमें मदिरा, भांग, अफीम, व्यसन वाले पदार्थ रहते हैं, स्वास्थ्य और आरोग्य जीवन के शत्रु हैं।

Alcohol या मद्य, नशा उत्पन्न करता है, जिससे निद्रा में बाधा पड़ती है, मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है। शराब उचित-अनुचित के ज्ञान को भी नष्ट करती है, शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं को हानि पहुँचाती है। थोड़ी मात्रा में भी शराब पीने से कोई भी रोग मिटानेवाला लाभ नहीं मिलता, बल्कि शरीर को विभिन्न प्रकार से हानि ही पहुँचाती है। इसी तरह, सभी उत्तेजक और दृष्टि-भ्रम पैदा करनेवाले पदार्थ या तम्बाकू आदि नशीले पदार्थ शरीर के लिए अति हानिकारक हैं। इनसे बचना भी अत्यन्त आवश्यक है। फिर भी तम्बाकू और मदिरा बनानेवाले उद्योग, धन की बड़ी-बड़ी राशियाँ फिल्मों और खेल-आयोजनों के द्वारा इन वस्तुओं के विज्ञापन पर खर्च करते हैं।

आधुनिक चिकित्सा-पद्धति भी उचित भोजन, दूध, शाकाहार, नियमित व्यायाम, और हठयोग की सराहना करती है। शराब और धूम्रपान जैसी नशीली वस्तुएँ चाहे कानूनी हों अथवा गैरकानूनी, स्वास्थ्य के लिए सभी हानिकारक सिद्ध होती हैं।

महान् कानून-रचयिता मनु (2.174) ने बड़े स्पष्ट शब्दों में मांसाहार और नशीले पदार्थों से दूर रहने को कहा है।

प्रश्न-59. हिन्दू समाज के महान् ऋषियों, महात्माओं, वीरों और वीरांगनाओं के नाम दीजिए जो 'आदर्श' समझे जाते हैं ?

उत्तर : सभी आदर्श पुरुषों एवं महिलाओं का वर्णन करना इस पुस्तक की शक्ति से परे है, अत: केवल कुछ ही मुख्य नाम नीचे दिए गए हैं :

अति प्राचीन समय के ध्रुव और प्रह्लाद; सतयुग के राजा हरिश्चन्द्र; त्रेता युग के मर्यादा पुरुषोत्तम राम; द्वापर के योगेश्वर श्रीकृष्ण; कलियुग के राजा भर्तृहरि, राजा विक्रमादित्य, और चाणक्य; गौतम बुद्ध; महावीर स्वामी; राजा अशोक; कवि तिरुवल्लुवर; आदि-शंकराचार्य; महाकवि कालिदास; कम्बन; बाबा रामदेव; वैष्णव आचार्य रामानुज, माधव, निभा, वल्लभ और चैतन्य

महाप्रभु; महाराणा प्रताप; भामाशाह; मीराबाई; तुलसीदास; कबीर; सूरदास; सिक्ख-गुरु नानक से गुरु गोविन्द सिंह; छत्रपति शिवाजी; स्वामी दयानन्द सरस्वती; स्वामी योगेश्वरानन्द; स्वामी रामतीर्थ, सुभाष चन्द्र बोस, स्वामी श्रद्धानन्द; लाला लाजपत राय; महात्मा गांधी; महर्षि रमण, डॉ० के०वा० हेडगेवार; योगी अरविन्द, स्वामी प्रभुपाद और श्री सुशील मुनि।

आज भी थाईलैंड और लाओस जैसे पूर्वी देशों में बौद्ध लोग 'सिंथा माता' की पूजा करते हैं। सिंथा माता उनके लिए समस्त मानवता का जीवन्त आदर्श है। इंडोनेशिया के मुस्लिम, भारत के हिन्दू और पूर्वी देशों के बौद्ध भी सिंथा-माता (श्रीराम की पत्नी का अपभ्रंश नाम)अथवा सीता-माता के आशीर्वाद की कामना करते हैं।

प्रश्न-60. हिन्दुओं के कौन-से मुख्य उत्सव हैं?

उत्तर : हिन्दुओं के मुख्य उत्सव निम्न हैं :

1. दीवाली या दीपावली सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उत्सव है। इस उत्सव को मनाने के बहुत सारे कारण हैं। यह त्यौहार नये अन्न के आगमन का प्रतीक है। किसान अपनी नई उपज का आनन्द मनाते हैं। व्यापारी लोग अपनी पुरानी बहियाँ और हिसाब-किताब बन्द करके नये खाते, नये आर्थिक वर्ष के लिए खोलते हैं। व्याप्त लोककथा के आधार पर सारा हिन्दू समाज शीत-ऋतु के आरम्भ में विजयी श्रीराम का पुन: घर लौट आने का उत्सव दीवाली मनाता है। अनेक विद्वान् इस विचारधारा से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि श्रीराम के पूर्व भी दीवाली मनाई जाती थी। दीपावली के अवसर पर लोग मिट्टी के दीये या दीप जलाते हैं। यह अंधकार पर प्रकाश की विजय का भी प्रतीक है, इसलिए इसे 'दीपों का त्यौहार' दीवाली या दीपावली कहते हैं। दीपों के सुनहले प्रकाश में चमकते हुए घर लोगों के उत्साह और उमंग को दर्शाते हैं और इस तरह यह उत्सव बुराई पर दैवी

शक्तियों की विजय का प्रतीक है। श्रीराम की रावण पर विजय के अतिरिक्त इसी दिन श्रीकृष्ण ने 'प्राग्ज्योतिषपुर' जो आज के भारत का 'असम-राज्य' कहलाता है, के अत्याचारी राजा नरकासुर का वध करके प्रजा को अत्याचार से मुक्ति दिलाई थी, इसकी खुशी में भी दीवाली मनाते हैं।

दीवाली एक ऐसा सार्वभौम पवित्र पर्व है जिसे हिन्दू, जैन, सिख सभी मनाते हैं। यह त्यौहार पारिवारिक प्रेम और स्नेह के बन्धनों को सुदृढ़ करता है।

2 विजयादशमी : यह त्यौहार दीपावली से तीन सप्ताह पहले मनाया जाता है। यह राम-रावण युद्ध का दसवाँ दिन था, जब श्रीराम ने रावण का वध करके सीता को मुक्त किया और लंका को रावण के एकछत्र राज्य से छुटकारा दिलाया। विजयादशमी का अर्थ है—दसवें दिन पर विजय।

3. श्रावणी, उपाकर्म, ऋषि-तर्पण या रक्षाबन्धन : इस उत्सव के द्वारा श्रावण मास का स्वागत किया जाता है, क्योंकि इसके साथ ही वर्षा ऋतु जिसे 'चौमासा' भी कहा जाता है, आरम्भ हो जाता है। चौमासे के समय में सभी ज्ञानी-ध्यानी और महात्मा नगरों में आ जाते हैं और सारे वर्षा-काल, चार मास तक, अपने भीतर नई शक्ति या नवजीवन प्राप्त करने, उपदेश देने, स्वाध्याय करने और धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन करने और कराने में लगे रहते हैं।

क्योंकि यह सब समाज के सभी वर्गों को साथ लेकर किया जाता है, इसलिए इस उत्सव को 'उपाकर्म' कहते हैं अर्थात् निकट लाना। इस कारण से लोगों के लिए विद्वानों, मुनियों और महात्माओं के लाभकारी प्रवचन सुनना संभव होता है। इस त्यौहार को ऋषि-तर्पण भी कहा जाता है। इस दिन उन विद्यार्थियों के लिए जो पाठशाला जाना प्रारम्भ करनेवाले हैं, विशेष रीतियाँ निभाई जाती हैं। इनमें से एक का नाम है 'यज्ञोपवीत'। एक और प्राचीन

त्यौहार जो भाई-बहन के गहरे प्रेम-बंधन को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाता है, उसे भी अत्यन्त प्रेम से इसी दिन मनाया जाता हैं। इस दिन बहन अपने भाई की दाईं कलाई पर वात्सल्य-बंधन का प्रतीक 'मौली' अथवा एक 'रंगीन सूती डोरी' जिसको 'रक्षाबन्धन या राखी' कहते हैं, बाँधती है। इस प्रकार 'रक्षाबंधन' भाई को स्मरण करवाता है कि बहन की रक्षा करना उसका कर्तव्य है।

4. होली : यह वसन्तु ऋतु का उत्सव है जो पके अनाज की कटाई के आनन्द और सन्तोष को व्यक्त करता है। यह रंगों-भरा त्यौहार जी-भरकर हुल्लड़ मचाने अथवा आमोद-प्रमोद का अवसर देता है। शाम के समय लोग एक बड़ा लकड़ी का ढेर या अलाव जलाते हैं। इसकी आग में नये-नये कटे अनाज, गेहूँ या चने की बालियाँ भूनकर खाते हैं। अगले दिन 'दुलहैन्डी' होती है। लोग एक-दूसरे पर लाल, हरे, नीले, पीले रंग पानी में घोलकर या पाउडर के रूप में जिसे 'गुलाल' कहते हैं, हर्ष से फेंकते हैं। रंगों से वसन्तु ऋतु का स्वागत करना ही होली है। इसे 'फाल्गुन' या 'फगवा' भी कहा जाता है।

होली के पश्चात्, हिन्दू नव वर्ष चैत्र मास से आरम्भ होता है। हिन्दू नव वर्ष को नवसम्वत्सर अथवा युगाब्द भी कहते हैं। हिन्दू नव वर्ष के प्रथम दिन अथवा प्रथम तिथि को प्रतिपदा या पड़वा कहते हैं। नये वर्ष के उत्सव को आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में युगादि, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु में गुड़ी पाड़वा, और सिन्ध में चेति चंद कहते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में अन्य नामों से भी नव वर्ष मनाया जाता है।

यह त्यौहार एक बहुत महत्त्वपूर्ण और सफल सामाजिक प्रयोग है, जिसके द्वारा समाज के सभी वर्ग एक-दूसरे के निकट आते हैं। सब प्रकार के भेद-भाव की सीमाएँ, चाहे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक या अन्य प्रकार की हों, लुप्त हो जाती हैं। इस प्रकार का सामाजिक प्रयोग मानव-इतिहास में अद्वितीय है।

होली का उत्सव बुराई के ऊपर अच्छाई की विजय से जुड़ा हुआ भी है। एक दन्त-कथा के अनुसार राजा हिरण्यकश्यप की बहन होलिका को यह वरदान मिला हुआ था कि वह आग में से बिना जले जीवित बाहर आ सकती है। अपने भाई हिरण्यकश्यप की इच्छा को पूरी करने के लिए उसने प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर अग्नि में प्रवेश किया, पर भस्म हो गई। संभवतया, वह निर्दोष प्रह्लाद को आग से बचाना चाहती थी और इसके लिए उसने अपनी आहुति दी। अन्ततः हिरण्यकश्यप नरसिंह (जो आधा नर और आधा सिंह है) द्वारा मारा गया और प्रह्लाद के राजा बन जाने से राज्य में सुख-शान्ति लौट आई। लोगों को हिरण्यकश्यप की क्रूरता से छुटकारा मिला और इस कारण से होली का उत्सव मनाया जाने लगा।

श्री एच्वी॰ शेषाद्रि कहते हैं– 'होली का उत्सव यज्ञ का प्रतीक है जिसमें सारी शारीरिक इच्छाएँ और वृत्तियाँ भेंट की जाती हैं। यह पवित्र और आध्यात्मिक अग्नि हमारे अन्तःकरणों में ज्वलंत रहती है।



Symbolically burning away impurities, a Kurd jumps over a traditional Nowruz bonfire Wednesday in Ankara. The spring festival of Nowruz has been celebrated for 4,000 year in Central Asia.

BURHAN OZBILICI/Associated Press

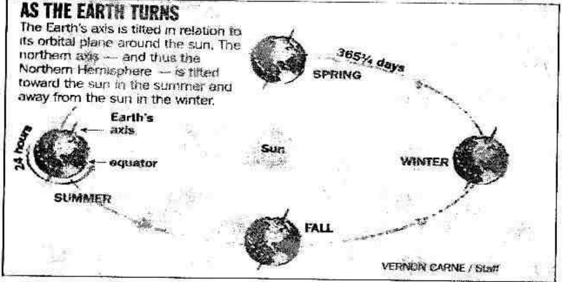
मध्य एशिया में अनेक देशों के लोगों ने चाहे युद्धों अथवा अन्य परिस्थितियों के कारण अपना धर्म-परिवर्तन भले ही कर लिया हो, परन्तु होली के यज्ञोत्सव का प्रतीक Spring Festival 'नवरोझ अथवा नवरुझ' आज तक उसी तरह से मनाते हैं, जैसे उनके वैदिक पूर्वज लोग मनाया करते थे। किंवदंती के अनुसार राजा हिरण्यकश्यप भी वहीं मध्य एशिया का ही तो था। रोम-इटली की राजधानी के मुख्य संग्रहालय में नरसिंह की आदमकद से भी विशाल मूर्ति जो 4000 वर्षों पुरानी है, यह मध्य एशिया से ही खुदाई में प्राप्त हुई थी, इसी किंवदंती की पुष्टि करती है।

चित्र में अंकारा - टर्की देश के कुर्द लोग नवरोझ अथवा नवरुझ (नवरोज़ का अपभ्रंश) होली यज्ञोत्सव के प्रतीक Spring Festival को पिछले 4000 वर्षों से मनाते आ रहे हैं।

अन्य महत्त्वपूर्ण उत्सव निम्न हैं :

1. मकर संक्रांति, पोंगल : यह उत्सव सूर्य के उत्तरी गोलार्द्ध की ओर प्रस्थान करने अथवा 'उत्तरायण' होने के कुछ दिनों पश्चात् मनाया जाता है। इस दिन से सूर्य मकर राशि में संक्रमण करता है। यह पर्व हमेशा 14 जनवरी को होता है। 'मकर संक्राति' सारे भारत में 'महाव्रत' के नाम से मनाई जाती है। पंजाब में यह त्यौहार लोहड़ी के नाम से जाना जाता है। असम में इसे भोगली-बिहु, बंगाल में 'नवान्न:', आन्ध्र प्रदेश में 'भोगी', तमिलनाडु में 'पोंगल' और केरल में 'पूरम' कहा जाता है। यह खेती की नई फसल का आनन्द मनाने का त्यौहार है। उत्तर भारत में तिल वाली रेवड़ियाँ-गज़क जैसी मिठाइयाँ बाँटी जाती हैं। दूसरे प्रान्तों में 'खिचड़ी' जो चावल और मूँग-दाल के मिश्रण से बनती है, खिलाई जाती है।

सूर्य और पृथिवी के विभिन्न गति चक्र के संदर्भ से ऋतुओं का प्रादुर्भाव



In truth, the only unique happening is that day and night are about the same length today. From this day forward, sunshine will exceed darkness, until the summer solstice on June 20-the longest day of the year.

2 शिवरात्रि : शिव-रात्रि शिव के जन्म दिन का उत्सव है। इस दिन को ऋषिबोध-दिवस भी कहते हैं। इस दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती को सच्चे शिव का बोध हुआ। जब उन्होंने शिव मन्दिर में शिवलिंग* पर चढ़े चूहों को देखा और शिव-मूर्ति की असमर्थता को देखकर मूर्ति-पूजा से ग्लानि हो गई थी, तब सच्चे शिव की खोज में अपना सब न्योछावर कर प्रभु-खोज में निकल पड़े। स्वामी विरजानन्द से साक्षात्कार कर अपने आपको भारत माँ को समर्पित कर, आर्यसमाज की स्थापना कर, स्वराज्य की आधारशिला रख, सच्चे शिव के आत्म-प्रकाश से ही स्वयं का तथा सम्पूर्ण भारतवासियों का कायाकल्प किया।*

---

* गौतम ऋषि ने न्याय दर्शन में 'मन' को पहचानने के लिए लिखा है : **युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।** (1/16) अर्थात् एक-साथ अनेक ज्ञानों की उत्पत्ति का न होना ही 'मन' का लिङ्ग चिह्न-लक्षण है। प्रत्येक भाषा में एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न अवस्था में भिन्न-भिन्न अर्थ होता है। गौतम ऋषि के अनुसार यहा पर लिंग का अर्थ 'चिह्न' अथवा 'लक्षण' हुआ। इसी प्रकार शिव लिंग* का अर्थ शिव का 'चिह्न' (Symbol) होता है।

शिव उस कल्याणकारी परमात्मा का नाम है जो मनुष्यों को शांति प्रदान कर सफलता के मार्ग की ओर अग्रसर करता है, जैसा कि निम्न वेदमंत्र से ज्ञात होता है :

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च। नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।

—यजुर्वेद 16/41

शांति एवं सुखस्वरूप, शांति एवं सुखप्रदाता, कल्याणस्वरूप, पवित्रस्वरूप और मोक्षप्रदाता परमात्मा को हमारा नमस्कार! कल्याण करनेवाले परमात्मा को बारम्बार नमस्कार!

उस कल्याणस्वरूप परमात्मा का चिह्न ज्योति:पुञ्ज है, जो 'मन' को ज्ञान दे, ताकि शरीर में विद्यमान आत्मा में प्रकाश हो और हम सभी ज्ञान द्वारा शांति से कल्याण के पथ पर बढ़ें। ज्योति:पुञ्ज ही सच्चे शिव का द्योतक है, न कि जननेन्द्रियरूपी लिंग, जैसा कि साधारण जन समझते हैं। जननेन्द्रियरूपी लिंग तो केवल वाममार्गी लोगों* ने हिन्दू धर्म को भ्रष्ट करने के उद्देश्य से प्रयुक्त किया था। रुई से बनी बाती को तेल अथवा घी के दीये के बीच प्रज्वलित कर उसे दीये के बीच में खड़ा कर दिया जाए तो वह ज्योति:पुञ्ज का प्रतिनिधित्व करेगा। यह ज्योति:पुंज ही सच्चे शिव का द्योतक है, न कि जननेन्द्रियरूपी लिंग का। पाठकगण अब स्वयं ही इस पहेली पर विचार करें।

3. राम नवमी : यह 'मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम' का जन्मोत्सव है। 'रामायण' श्री राम की जीवन-कथा है। कई भाषाओं में बहुत-सी पुस्तकें और शोध-ग्रन्थ 'रामायण' पर लिखे गए हैं, पर केवल वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण ही मौलिक और पूर्ण प्रामाणिक है। ऋषि वाल्मीकि श्रीराम के समकालीन थे और उन्होंने पूरी राम-गाथा

---

* 'वाममार्गी मत' का वर्णन पाठक इस पुस्तक के छठे अध्याय में वर्णित 'सत्यार्थ प्रकाश' के अन्तर्गत देखें।

को श्रीराम के राजतिलक पर पढ़कर सुनाया था, वही गाथा कालान्तर में रामायण कहलाई।

4. बैशाखी : पंजाब में बैशाखी, बंगाल में बौसाक कहते हैं। इस दिन से खेतों में पके अनाज की कटाई आरम्भ होती है। हिन्दुओं और सिक्खों के लिए यह दिन विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि बैशाखी के दिन ही गुरु गोविन्द सिंह जी ने मुसलमानों के अत्याचारों से हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए 'खालसा पंथ' की स्थापना, मार्च 30, सन् 1699 को की थी। बैशाखी उत्सव इंडोनेशिया और थाईलैंड जैसे सुदूर-पूर्व के देशों में भी मनाया जाता है। यह नई फसल के तैयार होने का एक महत्त्वपूर्ण त्यौहार है। इसे अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग ढंग से भी मनाते हैं।

5. जन्माष्टमी : यह श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव है। योगेश्वर श्रीकृष्ण 'महाभारत' के केन्द्रीय महानायक हैं। उन्होंने अपने उपदेश से अर्जुन में इतनी शक्ति और वीरता भर दी कि वह कौरवों के विरुद्ध अपने अधिकारों की रक्षा करने में सफल हुआ। जगद्विख्यात 'भगवद् गीता' में वर्णित श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उपदेश हिन्दू जीवन-दर्शन और आध्यात्मिकता को पूरी तरह दर्शाता है।

प्रश्न-61. स्वर्ग और नरक वास्तव में क्या हैं ?

उत्तर : इस प्रश्न पर अपनी माता देवाहुति से विचार-विमर्श करते हुए आचार्य कपिल भागवत पुराण 3.20.26 में कहते हैं, 'यह स्वर्ग और नरक इसी पृथिवी पर हैं। आप अपने कष्ट को नरक में होने जैसा समझ सकती हैं।' अतः मनुष्य के मस्तिष्क की उपज के कारण ही स्वर्ग और नरक की काल्पनिक उत्पत्ति की गई। मृत्यु होने पर सामान्य जन के दुःखी मन को सांत्वना देने के लिए 'यह कहकर कि जीवात्मा अब स्वर्ग में वास करती है', मानसिक व्यथा सहने व शांति बनाए रखने में स्वर्ग की कल्पना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान करती है।

इसी तरह समाज को हानिकारक अथवा कष्टमय कार्यों से

बचाने हेतु दंड की व्यवस्था के काल्पनिक रूप हेतु 'नरक' की उत्पत्ति की गई। 'स्वर्ग और नरक' केवल प्रतीकात्मक शब्द हैं।

चाणक्य नीति 27.15 में कहा है, 'यदि गृहस्वामिनी का चरित्र श्रेष्ठ है, वह अच्छे स्वभाव वाली है, साथ निभाती है तो सम्पूर्ण घर सम्पन्न होता है, बच्चे शिक्षित, अनुशासित और सफल होते हैं, तो स्वर्ग के सुख भी इस परिवार के सुख-आनन्द से बढ़कर नहीं हैं।'

आध्यात्मिक अनुभव, जिससे अज्ञान लेश-मात्र भी नहीं रहता अथवा परमानन्द की स्थिति प्राप्त होती है, वही स्वर्ग है; जो इसके विपरीत है वह नरक कहलाता है। जो नरक है, वह पतन और दुःख की मानसिक अवस्था है जिसमें सुख, शान्ति और ऐश्वर्य का पूर्ण अभाव है।

सुगम भाषा में कहा जा सकता है कि यदि किसी मनुष्य का जीवन शान्तिमय, आवश्यक पदार्थों से पूर्ण और सुखी है, तो वह स्वर्ग में है। इसके विपरीत स्थिति होने पर उसका जीवन नरक है। स्वर्ग और नरक की प्रचलित कहानियाँ संसार के सुखों और दुःखों को प्रतीकात्मक रूप प्रदान करती हैं। 'स्वर्ग और नरक' जीवन की मानसिक अवस्थाएँ हैं।

प्रश्न-62. पुनर्जन्म क्या है ?

उत्तर : पुनर्जन्म का अर्थ है आत्मा का फिर से किसी शरीर में पुनः प्रवेश करना अर्थात् नया जन्म लेना। आत्मा शाश्वत और अमर है। जब किसी की मृत्यु होती है तो आत्मा उसकी देह छोड़कर चली जाती है। इस प्रकार आत्मा जब तक मनुष्य जीता है, तब तक ही शरीर में रहती है। आत्मा के किसी दूसरी देह में प्रवेश करने की प्रक्रिया को ही पुनर्जन्म कहते हैं। यह आत्मा के विकास की एक निरन्तर प्रक्रिया है और तब तक चलती रहती है जब तक आत्मा परमात्मा को पूर्ण रूप से समझ नहीं लेती और परमानन्द को प्राप्त नहीं कर लेती। तब आत्मा पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो

जाती है। इसी को **'मोक्ष'** कहते हैं। मोक्ष की प्राप्ति मानव के शुभ कर्मों पर निर्भर करती है (देखिए प्र॰ क्र॰ 64)।

आत्मा द्वारा नई देह में प्रवेश करना पुनर्जन्म है।

प्रश्न-63. पुरुषार्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर : जब कोई भी मनुष्य अपनी और दूसरों की उन्नति और विकास के लिए ठोस व लाभकारी प्रयत्न करता है तो उसे पुरुषार्थ कहते हैं। पुरुषार्थ ही हमें अपने परम उद्देश्य की पूर्ति के निकट ले जाता है। जैसा कि प्रश्न-उत्तर 44 में वर्णित है **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः॥** (यजुर्वेद 40.2) मनुष्य कर्मों को करता हुआ एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीने की इच्छा करे, अर्थात् मनुष्य जब तक जीता रहे तब तक बराबर उद्योग करता रहे। बराबर उद्योग करनेवाला मानव पुरुषार्थी कहलता है।

—स्वामी विश्वेश्वरानन्द ब्रह्मचारी, पुरुषार्थ-प्रकाश, 1988 ई॰

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिताः। (अथर्व 12/5/1) परम ब्रह्म ने श्रम से - तप से इस सब सृष्टि का सर्जन किया है और न्यायरूप सत्य के आश्रित वित्त, धनादि को परमात्मा ने दिया, इसलिए हम भी परिश्रमी पुरुषार्थी बनें। वेद का सन्देश है—वह श्रम भी सत्य के आधार पर हो।

—श्री वीरसेन वेदश्रमी, वैदिक सम्पदा।

पुरुषार्थ : अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु कर्मठ हो कार्य करना। पुरुषार्थ चार प्रकार का है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

चरन्वै मधुं विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेयाणं यो न तंद्रयते चरन्॥
चरैवेति चरैवेति॥ (ऐतरेय ब्राह्मण 7.15)

'मधुमक्खी बड़े परिश्रम से मधु इकट्ठा करती है और पक्षी प्रयत्न करके ही फलों के स्वाद का आनन्द लेते हैं। सूर्य की भी पूजा होती है क्योंकि वह अनवरत प्रकाश देने का परिश्रम करता है। इसलिए प्रत्येक प्राणी को पुरुषार्थी बनने का प्रयत्न करना चाहिए।'

एक पुरुषार्थी स्वयं ही अपने कर्मठ कार्यों से अपना मार्ग निर्धारित करता है। उसे किसी ज्योतिषी या भविष्यवक्ता की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न-64. कर्म से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : कर्म वह प्राकृतिक सिद्धान्त है, जिसका सम्बन्ध नि:स्वार्थ कार्यों से है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मों का फल मिलता है। 'जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे' की कहावत यहाँ उपयुक्त प्रतीत होती है। कोई अपने कर्मों के फल को बदल नहीं सकता। उपनिषदों में कहा भी गया है—**"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।"** मनुष्य जिन शुभ अथवा अशुभ कर्मों को मन अथवा शरीर द्वारा करता है, ईश्वरीय व्यवस्था-अनुसार उसका फल अवश्य मिलता है।

जब कोई भी मनुष्य नि:स्वार्थ भाव से सेवा या कार्य करता है, तो उसे 'निष्काम कर्म' कहते हैं। ईश-उपनिषद् (1.12) इस प्रकार के कर्म की बड़ी सुन्दर विवेचना करता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण गीता (2.89) में भी निष्काम कर्म की परिभाषा निम्न प्रकार से देते हैं :

'अपने कर्त्तव्य को भक्तिभाव से लेना और उसके प्रति समर्पित होना ही निष्काम कर्म है।'

जब निष्काम-कर्म, सर्व-व्यापक प्रभु को समर्पित किया जाता है तो यह निष्काम-कर्म 'यज्ञ' बन जाता है। इस पुस्तक में जहाँ भी कर्म का वर्णन है, वहाँ उसका अभिप्राय नि:स्वार्थ कर्म से है। चाहे निष्काम कर्म हो अथवा पुरुषार्थ, इनमें भाग्य का कोई हाथ नहीं होता।

प्रश्न-65. योग क्या है ?

उत्तर : 'योग' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है जोड़ना। योग एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रभु को पाया जा सकता है। पतंजलि ऋषि कहते हैं—'योग का अर्थ है मानसिक वृत्तियों पर सम्पूर्ण नियन्त्रण।' (**योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:**—योगदर्शन 1.2) श्रीकृष्ण गीता में (2.48 और 2.50) उपदेश देते हैं—अनुकूल

अथवा प्रतिकूल परिस्थिति में मानसिक तथा भावनात्मक संतुलन को बनाए रखना ही योग है (**समत्वम् योग उच्यते; योगः कर्मसु कौशलम्**) भावनात्मक वृत्तियों के समन्वित संतुलित योग को श्रेष्ठतम कर्म भी कहा गया है। योग शारीरिक और मानसिक संतुलन बनाए रखने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

टिप्पणी : *आजकल योग के प्रचलित व्यायामरूप को वास्तविक योग न समझिए। योग की विभिन्न शारीरिक मुद्राएँ, भंगिमाएँ, स्वास्थ्य और शारीरिक रूप–रंग के लिए ही अच्छी हैं। वास्तविक योग क्या है–इसका उत्तर, प्रश्न संख्या 66 में 'पतंजलि के अष्टांग योग' शीर्षक के अन्तर्गत दिया है।*

प्रश्न–66. पतंजलि का अष्टांग योग क्या है ?

उत्तर : ऋषि पतंजलि ने आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए आठ अंगों अथवा चरणों का वर्णन किया है। योग का प्रत्येक अंग मनुष्य को मोक्ष के और निकट ले जाता है। '**अष्टांग**' का अर्थ है 'आठ अंग'। ये आठ अंग इस प्रकार हैं: **यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि।** योग के एक–एक कदम पर बढ़कर ही समस्त मानसिक और शारीरिक क्रियाओं पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर सकते हैं। इसमें सफलता प्राप्त होने पर ही प्रभु स्वतः प्राप्त होते हैं।

सुलभ जीवन जीने की कला 'योग' है। ऋषि पतंजलि के अष्टांग योग आत्मज्ञान तथा प्रभु–प्राप्ति के लिए एक आचार–संहिता है। योग के प्रवर्तक पतंजलि ऋषि अष्टांग–योग की परिभाषा को एक अति संक्षिप्त वाक्य में पूर्ण कर देते हैं :

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि।

—योग दर्शन 2.29

वास्तव में योग के ये आठ अंग सुलभ जीवन जीने का मार्ग दर्शाकर स्वयं को अंतःकरण का ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान देकर प्रभु से साक्षात्कार कराते हैं।

प्रश्न-67. यम क्या है ?

उत्तर : योग का पहला अंग **'यम'** है। पाठकों को समझाने हेतु 'यम' का सरल अर्थ 'स्वयं पर नियन्त्रण' करना है। जब स्वयं पर नियन्त्रण करेंगे तो आत्म-नियन्त्रण स्वत: प्राप्त हो जाता है। 'यम' सुलभ जीवन जीने की कला का पहला कदम है। 'यम' अथवा अनुशासन के पाँच भाग हैं।

पहला भाग-**'अहिंसा'** है। दूसरों के अधिकारों का हनन न करते हुए, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना से जीवन जीना ही अहिंसा है। दूसरा भाग-**'सत्य'** का आचरण करना है। तीसरा भाग-**'अस्तेय'** है। 'अन्य जनों की वस्तुओं को बगैर पूछे काम में नहीं लेना अथवा न ही चुराना' अस्तेय है। चौथा भाग-**'ब्रह्मचर्य'** है। इसका अर्थ है 'इन्द्रियों की लिप्सा से बचकर रहना और ब्रह्म की ओर बढ़ना' ताकि जीवन के लक्ष्य को पूर्ण करने में और बाधाएँ न आएँ। पाँचवाँ भाग-**'अपरिग्रह'** है। इसका अर्थ-भौतिक वस्तुओं के लोभ से बचकर, कम से कम वस्तुओं पर निर्भर रह कर सुगम जीवन जीना। सुलभ जीवन जीने हेतु सर्वप्रथम आत्म-नियन्त्रण प्राप्त करना है, अत: यम और नियम के सिद्धान्तों को मन, वचन और कर्म से पालन करें तो 'स्वयं पर नियन्त्रण' का पहला कदम स्वत: बढ़ सकता है।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:॥

—योग दर्शन 2.30

मन, वचन और कर्म से अनुशासन में रहना यम है। यम के पाँच भाग हैं-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

प्रश्न-68. नियम से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : 'नियम' का अर्थ है निर्देश अथवा क्रिया-विधि। यम की तरह नियम के भी पाँच अंग हैं-1. **शौच** अथवा 'आंतरिक और बाह्य शुद्धि'; 2. **सन्तोष** अर्थात् सन्तुष्टि; 3. **तप,** 'निरन्तर कार्य करते हुए अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में श्रद्धा-सहित लगे रहना

ही तप है'; 4. **स्वाध्याय** अथवा धर्मग्रन्थों का स्वयं द्वारा पठन और पाठन; 5. **ईश्वर प्रणिधान** अर्थात् प्रभु की सेवा में सर्व-समर्पित। यम और नियम के सिद्धान्तों को मन और कर्म से पालन करें तो सुलभ जीवन की कामना का साकार चित्र उभरने लगता है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥

–योग दर्शन 2.32

जीवन को विधिवत् बनाना 'नियम' कहलाता है।

प्रश्न–69. अहिंसा का क्या अर्थ है ?

उत्तर : वैदिक दर्शन के अनुसार संसार के सभी जीवों में आत्मा है, इसीलिए किसी भी प्राणी की हिंसा अथवा वध करना या कष्ट देना मना है। कोई भी प्राणी आत्म-विहीन होकर प्रकृति में स्वतन्त्र रूप से विद्यमान नहीं हो सकता। आत्मा ही प्राणियों का जीवनाधार है। अहिंसा का अर्थ–किसी को हानि न पहुँचाना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्वयं की सुरक्षा का ध्यान न रखें और कायर की भाँति रहें। अहिंसा का वास्तविक अर्थ है शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के आधार पर आचरण करना। अहिंसा का पालन मन, कर्म और वचन से करना होता है, तभी जीवन सुखी और सुगम हो सकता है। जब सभी वर्ग आपस में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त का पालन करते हैं तो वे 'अहिंसा' का ज्वलन्त उदाहरण देते हैं। हिन्दू धर्म का विश्व को मुख्य योगदान 'अहिंसा' है।

व्यावहारिक रूप में अहिंसा का अर्थ है–सहनशीलता या सहिष्णुता, समन्वयता, और मित्रता, ताकि सभी शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व से सुरम्य जीवन का आनन्द ले सकें।

प्रश्न–70. संक्षेप में सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की परिभाषा दीजिए।

उत्तर : सत्य : सत्य का अर्थ है सबसे दुर्भावना-रहित सच्चा व्यवहार करना। मनसा-वाचा-कर्मणा सत्य का व्यवहार करना अर्थात् जो मन में है, वैसा ही वाणी से बोला जाए और वैसा ही

कर्म द्वारा आचरण में किया जाए।

अस्तेय : दूसरों के अधिकारों का या उनकी वस्तुओं का किसी रूप में भी हनन न करना–जो दूसरों का है, उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से न छीनना।

ब्रह्मचर्य : इन्द्रिय-लिप्सा से दूर रहकर आत्म-ज्ञान और प्रभु-ज्ञान की प्राप्ति के लिए अध्ययन में मग्न रहना ही ब्रह्मचर्य है।

अपरिग्रह : इसका अर्थ है लोभ, वासना, अहंकार हेतु वस्तुओं का संग्रह न कर, एक समर्पित साधारण और परोपकारी जीवन यापन करना।

प्रश्न–71. शौच से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : शौच का अर्थ है शरीर की बाहरी और भीतरी पूर्ण शुद्धि। इसमें निद्रा और मल-त्याग आदि क्रियाओं का भी नियन्त्रण सम्मिलित है। शारीरिक क्रियाओं का दिन-रात के चक्र और वर्ष-भर में होनेवाले परिवर्तनों के साथ समन्वय होना आवश्यक है। कॉर्टीकॉस्टरॉयड्स हार्मोन्स अर्थात् शरीर के वे आंतरिक स्राव जो मानसिक दबाव को झेलने में सहायक होते हैं और मस्तिष्क की आंतरिक घड़ी (Circadian rhythm) को प्रतिदिन बनाए रखने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, दिन-रात के चक्र को समान रूप से बनाए रखते हैं। ये आंतरिक शौच क्रियाओं के अंतर्गत आते हैं। अगर हम नियत समय पर सोएँ और नियत समय पर जागें तो हमें नींद न आने या नींद अच्छी तरह न आने की समस्या का सामना ही न करना पड़े। साथ ही साथ आंतरिक घड़ी को विधिवत् नियन्त्रित करने से भीतरी शारीरिक रिसाव हार्मोन्स कॉर्टीकॉस्टरॉयड्स का भी स्वतः ही नियन्त्रण हो सकता है, जिससे अनेक व्याधियों की स्वतः रोकथाम हो सकती है।

संक्षेप में शौच का अर्थ : *शरीर की बाह्य और आंतरिक शुद्धता के द्वारा जीवन के भीतरी परिवर्तनों का समन्वय करना है।*

प्रश्न–72. सन्तोष क्या है ?

उत्तर : तृप्ति अथवा आनन्द की भावनाओं को संयमित रखना 'सन्तोष' कहलाता है। जिस मनुष्य के मन में सन्तोष है वह अपनी उपलब्धियों, योग्यताओं और प्रयत्नों को बिना पश्चात्ताप या बिना उत्तेजना अनुभव किए शांत मन से स्वीकार कर सकता है। इस तरह वह अपने काम में अधिक सफल होता है, क्योंकि भावनाएँ निर्णय लेने की योग्यता पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगी। तृप्ति को भी एक तरह से सन्तोष कहा जा सकता है, परन्तु सन्तोष के दैवी अर्थ हैं पुरुषार्थ करते हुए अनुशासित जीवन से तृप्त रहना।

प्रश्न–73. तप और स्वाध्याय करने का क्या अर्थ है ?

उत्तर : शीत-उष्ण, सुख–दु:ख आदि द्वन्द्वों का सहना ही **तप** है। किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि द्वन्द्वों का सहन करना अपनी सहन-शक्ति के बाहर न हो, अन्यथा शरीर में धातु–वैषम्य उत्पन्न होकर साधक को रोगी बना देता है। घोर परिश्रम और श्रद्धा से निरन्तर उद्देश्य–रत कर्मठ होकर कार्य करने को संक्षेप में तप की संज्ञा दे सकते हैं। तप चित्त को शुद्ध और निर्मल करने में सहयोगी सिद्ध होता है।

स्वाध्याय का अर्थ है धार्मिक एवं अध्यात्म–सम्बन्धी ग्रन्थों का स्व–अध्ययन अर्थात् आत्मविषयक पठन और पाठन, चिन्तन व मनन करना। पूर्वकालिक योगी–जनों की जीवन-गाथाओं के अध्ययन–मनन से व्यक्ति को अपने अभिलषित मार्ग पर चलने का प्रोत्साहन मिलता है। "आत्मा का स्वरूप क्या है? कहाँ से आती और कहाँ जाती है?" इत्यादि की जानकारी होने से ज्ञान की भावना जागृत होती है। जैसे एक दीपक के प्रज्वलित कर लिये जाने पर उससे अन्य दीपक अनायास प्रज्वलित कर लिये जाते हैं, उसी प्रकार स्वाध्याय से आत्म-साक्षात्कार करने में सहजता आती है, मानव–जीवन सुगम और शांतिमय बनता है।

प्रश्न–74. ईश्वर–प्रणिधान क्या है ?

उत्तर : अनन्य भक्ति–भाव से ईश्वर की आराधना, चिन्तन

करना और प्रत्येक कार्य परमात्मा में समर्पण-भावना से सम्पन्न करना अर्थात् अपने-आपको पूर्णरूप से परमेश्वर में समर्पित कर देना ही ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है। इससे आत्मतत्त्व का प्रत्यक्ष बोध होता है, जो जीवन को सफल और शांतिमय बनाता है।

प्रश्न-75. आसन क्या है ?

उत्तर : बिना हिले-डुले लम्बे समय तक सुखपूर्वक एक सही स्थिति में बैठने की अवस्था को आसन कहा जाता है। आसन में शरीर सीधा, आँखें बन्द और मुख को सामने सीधा रखें। हथेलियाँ घुटनों पर रख, अथवा हथेली पर हथेली रखकर, नाभि के नीचे पैरों के ऊपर रखें। ईश्वर का ध्यान करने के लिए आराम से बैठने की स्थिति में सामान्य आसन पद्मासन, सुखासन, सिद्धासन हैं। अधिक जानकारी के लिए कृपया पतंजलि-कृत योगदर्शन देखें।

स्थिरसुखमासनम्। –योगदर्शनम् 2.46

'आराम से एक स्थिति में अधिक देर तक सीधे बैठने (Anatomically correct position) की स्थिति को आसन कहते हैं।' (कुछ लोग आसन-पद्धति को हठयोग भी कहते हैं।)

प्रश्न-76. प्राणायाम और प्रत्याहार क्या है ?

उत्तर : प्राणायाम का अर्थ है प्राण अर्थात् जीवन-शक्ति को वश में करना जो शरीर की सभी क्रियाओं और अंगों को नियन्त्रित करती है। **प्राणायाम** 'अनैच्छिक क्रियाओं जैसे श्वास-प्रक्रिया और हृदय की धड़कन को आत्म-नियन्त्रित करने की विधि है।'
तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। योगदर्शन 2.47
श्वास-प्रश्वास की अनुशासित प्रक्रिया द्वारा ओ३म् का लगातार उच्चारण करते हुए शरीर की अनैच्छिक क्रियाओं को वश में करना प्राणायाम है। इस सिद्धि को प्राप्त करने के लिए बहुत गहन अभ्यास की आवश्यकता है।

प्रत्याहार स्वयं की प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी कर इन्द्रियजनित उत्तेजनाओं से मुक्ति दिलाना है। प्रारम्भ में व्यक्ति भूख को नियन्त्रित

कर अपनी पाचन-शक्ति को वश में करता है। तत्पश्चात् वह ईश्वर-प्रेरणा से अपनी समस्त वासनाओं को आत्मनियन्त्रित करता है। प्रत्याहार का अर्थ इन्द्रिय-जनित सुखों से ऊपर उठकर दीर्घायु और अच्छे स्वास्थ्य के लिए शुद्ध शाकाहारी एवं पौष्टिक भोजन ग्रहण करना भी है। यह आत्मविवेचन, गहन विश्लेषण और अपनी अन्तःशक्ति को जागृत करने की अवस्था है। प्रत्याहार एकाग्रचित्तता को बढ़ाकर और भावनाओं को वशीभूत कर अपने अन्तःकरण एवं अन्तरात्मा को साक्षात् करने को जहाँ श्रेष्ठ मार्ग प्रदान करता है, वहाँ आसन के सिद्ध होने पर विधिपूर्वक विचार से यथाशक्ति श्वास-प्रश्वास की गति को रोकने की क्रिया ही प्राणायाम कहलाती है। प्राणायाम योग्य निर्देशन में सीखना चाहिए।

प्राणायाम करने से मन की एकाग्रता बढ़ जाती है और चित्त की शुद्धि होती है। जैसे अग्नि में तपाने से स्वर्ण आदि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम से हमारी इन्द्रियों के मल नष्ट हो जाते हैं।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। –योगदर्शन 2.52

अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से प्रकाश अर्थात् मन को ढकने वाला अज्ञानरूपी आवरण नष्ट हो जाता है।

धारणासु च योग्यता मनसः। –योगदर्शन 2.53

अर्थात् मन को रोकने या थामने की योग्यता बढ़ जाती है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

–योगदर्शन 2.54

अर्थात् इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न रहने पर मन के स्वरूप जैसा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है। मन के रुक जाने पर नेत्रादि इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों के साथ सम्बन्ध नहीं रहता, अर्थात् इन्द्रियाँ शान्त होकर अपने कार्य बन्द कर देती हैं। इसके सिद्ध होने पर योगाभ्यासी का इन्द्रियों पर सर्वोत्कृष्ट वशीकरण, अर्थात् इस तरह से नियन्त्रण हो जाता है

कि वह अपने मन को जहाँ और जिस विषय में लगाना चाहता है, लगा लेता है, और जिस विषय से हटाना चाहता है हटा लेता है।

प्रश्न-77. धारणा, ध्यान और समाधि क्या हैं ?

उत्तर : धारणा, ध्यान और समाधि योग की अन्तिम तीन अवस्थाएँ हैं। **धारणा** निश्चल एकाग्रचित्तता की प्रथम अवस्था है। इस अवस्था में साधक अपने ध्यान को स्थिर कर मन को वश में करने का प्रयत्न करता है। धारणा की अवस्था में साधक अपने श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करता है, जैसा कि प्राणायाम की व्याख्या में दिया गया है। साधक ओ३म् का धीमे-धीमे उच्चारण कर इसकी लयबद्धता पर भी अपना ध्यान लगा सकता है, जैसे-'ओ·····म्!'·······'ओ·····म्!' इस प्रकार साधक ओ३म् के इस धीमे स्वर और इसके द्वारा प्राप्त की गई शान्ति पर लगातार अपना ध्यान लगाए रख सकता है। यह प्रक्रिया सब प्रकार की समाधियों के मूल में है, चाहे यह बौद्ध, जैन अथवा सिक्ख किसी भी योग-परम्परा से सम्बंधित हो।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। -योग दर्शन 3.1

मस्तक, नासिका, कण्ठ, नाभि, हृदय आदि किसी एक स्थान पर मन को स्थिर करना धारणा है।

तत्र प्रत्यैकतानताध्यानम्। -योग दर्शन 3.2

धारणा वाले स्थान पर मन को स्थिर करके ईश्वर-विषयक चिन्तन को निरन्तर बनाए रखना और बीच में किसी अन्य विषय को न आने देना **ध्यान** है, अर्थात् मन में सांसारिक विषयों का न रहना और सांसारिक विषयों के प्रति राग का नष्ट हो जाना तथा ईश्वर का चिन्तन करते रहना 'ध्यान' है।

'ध्यान' वह अवस्था है जिसमें साधक अपने ध्यान को किसी बिन्दु पर पूर्णरूप से केन्द्रित कर देता है। ध्यान की अवस्था में मस्तिष्क की सभी क्रियाएँ शून्य पर स्थिर हो जाती हैं। साधक

वर्षों के अभ्यास से 'धारणा' और 'ध्यान' की अवधि को धीरे-धीरे बढ़ाकर परमानन्द की अवस्था 'समाधि' को प्राप्त कर लेता है।

ध्यान और एकाग्रचित्तता की परमावस्था **'समाधि'** है। समाधि आत्म-साक्षात्कार की एक ऐसी अलौकिक अवस्था है, जिसमें आत्मा निरपेक्ष, अनंत, दिव्य परमात्मा में लीन हो जाती है। समाधि स्वयं को पूर्णतया शून्य कर देने की अवस्था है। साधक परम चेतन की अवस्था को प्राप्त कर लेता है जहाँ पर कर्त्ता और कर्म की दूरी समाप्त हो जाती है, परन्तु कर्त्ता और कर्म के अन्तर को अति सूक्ष्मता से समझा तथा अनुभव किया जा सकता है। साधक चेतना की परम अवस्था को प्राप्त कर लेता है जिसमें कर्त्ता को कर्म समझता है और कर्म को कर्त्ता अनुभव करता है। समाधि की अवस्था में साधक वेदों में निहित सत्य का ज्ञान प्राप्त कर उसे अनुभव करता है, स्वयं को स्थूल से अलग कर जड़ और चेतन के अन्तर को समझता है। इस प्रकार से साधक आत्मा और स्थूल की प्रवृत्ति का ज्ञान और अनुभव कर परम सत्य को प्राप्त कर लेता है।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः॥

—योग दर्शन 3.3

अर्थात् वह ध्यान जो केवल ईश्वर के स्वरूप को प्रकाशित करनेवाला है, तथा जो स्वरस अपने-आपसे शून्य होगा- समाधि कहा जाता है।

इसमें वस्तु-तत्त्व ईश्वर प्रधान हो जाता है और व्यक्ति अपने को भूल-सा जाता है—जिसमें भी समाधि लगाएगा, वही दिखेगा। साधक अभ्यास करते हुए चित्त पर इतना अधिकार कर लेता है कि कल्याण के लिए एक लक्ष्य—ओ३म् सर्वरक्षक—पर ही जमा रहे, और बीच में कोई वृत्ति नहीं आती तो वह स्थिति समाधि कहलाती है। चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते हैं, अर्थात् मन

को ईश्वर में स्थिर कर देना समाधि है।

समाधि से साधक को इसी जीवन में परमात्मा द्वारा प्रदत्त परमानन्द की प्राप्ति होती है। कर्त्ता और कर्म का अन्तर समाप्त हो जाता है। आत्मा का परमात्मा से मिलन हो जाता है।

पातंजल अष्टांग-योग (विभिन्न भाग, संक्षेप में)

1. यम—निम्न पाँच सिद्धान्त 'यम' कहलाते हैं :

1. **अहिंसा :** किसी भी प्रकार की हिंसात्मक गतिविधि का त्याग और सह-अस्तित्व की भावना को बनाए रखना।
2. **सत्य :** मन, वचन और कर्म से सत्याचरण करना।
3. **अस्तेय :** दूसरों के अधिकारों का हनन न करना और चोर-भावना का त्याग।
4. **ब्रह्मचर्य :** ईश्वर के सत्य ज्ञान को प्राप्त करने की कामना जगाकर मस्तिष्क को वासनाओं से मुक्त रखना और इन्द्रियजनित सुखों को त्यागकर प्रभु-प्राप्ति करना।
5. **अपरिग्रह :** लालच और संग्रह की प्रवृत्ति का त्याग।

2. नियम—पाँच नियम :

1. **शौच :** आन्तरिक अर्थात् वैचारिक एवं मानसिक पवित्रता बनाए रखना। उपयुक्त साफ-सफाई का ध्यान रखना बाहरी अर्थात् शारीरिक और आंतरिक शुद्धता को बनाए रखना।
2. **सन्तोष :** सन्तोष एवं सहृदयता का संचार।
3. **तप :** लक्ष्य-प्राप्ति के लिए शारीरिक एवं मानसिक दृढ़ता।
4. **स्वाध्याय :** आर्ष ग्रन्थों अर्थात् वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन और इस ज्ञान को दैनिक आचरण में लाना।
5. **ईश्वर-प्रणिधान :** ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति-भावना, सर्व क्रिया इत्यादि सभी प्रभु को समर्पण कर देना।



पातञ्जल अष्टांग योग

लेखक के निर्देशानुसार कलाकार विनोद शर्मा द्वारा योग चित्रण

3. **आसन** : ध्यान के लिए सही, सीधी और सुखकारी शारीरिक स्थिति।

4. **प्राणायाम** : श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित कर सूक्ष्म प्राणशक्ति को वश में करना।

(बहिरंग योग : आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार)

5. **प्रत्याहार** : इन्द्रियों को वश में करना।

6. **धारणा** : एकाग्रचित्तता। भक्ति योग—एकाग्रचित्तता व अनन्य भक्ति-भाव से मंत्र-पाठ।

7. **ध्यान** : गहन एकाग्रचित्तता, स्वयं को ध्यानबद्ध कर लेना।

8. समाधि : आत्मा का निरपेक्ष, अनादि, दिव्य परमात्मा के साथ अलौकिक साक्षात्कार और इस साक्षात्कार से दिव्य आनन्द की प्राप्ति।

(राजयोग–धारणा, ध्यान और समाधि, योग के अन्तरंग साधन हैं)

प्रश्न–78. ध्यान और योग के क्या लाभ हैं ?

उत्तर : 'ध्यान' द्वारा एकाग्रता और मानसिक शान्ति में वृद्धि होती है, जिससे आत्मविश्वास और वैचारिक स्पष्टता की प्राप्ति होती है। 'ध्यान' उद्वेलित मन को शान्त करके तनाव और दबाव को घटाता है। योग द्वारा शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक विकास होने के साथ आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है, जो मनुष्य को ईश्वर के और निकट ले जाती है।

हरबर्ट बेन्सन एम॰डी॰ द्वारा लिखित पुस्तक The Relaxation Response के अनुसार योग/'ध्यान' मानसिक और शारीरिक तनाव को कम कर रक्तचाप का नियन्त्रण करता है। जान केब्ट-जिन, पी-एच॰डी॰ ने यह सिद्ध किया है कि चिंता और कष्ट भी 'ध्यान' द्वारा कम किए जा सकते हैं। डॉ॰ डीन आरनिश जो सैनट्यागो, केलिफोर्निया, अमेरिका के मेडिकल कॉलेज में प्रोफेसर ऑफ मेडिसिन हैं, प्रमाणित कर चुके हैं कि योग, 'ध्यान' और शाकाहारी भोजन से केवल हृदय-रोग रोका ही नहीं जा सकता, बल्कि इसे दूर भी किया जा सकता है। साधारण भाषा में 'ध्यान' उन कारणों को भी दूर कर सकता है, जिससे हृदय-रोग होने की संभावना बनती है। कई अध्ययनों ने प्रदर्शित किया है कि योग और 'ध्यान' के प्रभावकारी अभ्यास द्वारा शरीर का तापमान भी नियन्त्रित किया जा सकता है। यही नहीं, योग/'ध्यान' रोग के प्रतिरोध करने की शारीरिक शक्ति (Immunity) को बढ़ाता है, वायरस तथा बैक्टीरिया जीवाणु से फैलनेवाले रोगों की रोकथाम भी करता है।

वैज्ञानिक अध्ययनों (बेन्सन एच॰ 1982, 1996) ने सिद्ध किया है कि योग शरीर के कोर्टिसोन स्तर को सामान्य बनाए रखकर मेटाबोलिज्म (Metabolism) क्रिया को 60 प्रतिशत तक कम करता है।

योग शारीरिक और मानसिक तनाव को कम करता है, जिससे मानसिक असंतुलन और हृदयरोगों को कम करने में सहायता मिलती है। पतंजलि का अष्टांग-योग ही एकमात्र प्रामाणिक योग है, जिसके द्वारा मस्तिष्क, स्थूल शरीर पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार योग/'ध्यान' द्वारा स्वस्थ दीर्घ आयु का जीवन भोगा जा सकता है, जिसे सुगम जीवन कहते हैं।

ऋषि पतंजलि का अष्टांग योग ही अति प्राचीन वास्तविक मूल योग है, जो चित्त- नियन्त्रण प्रदान करता है, इसी के आधार पर अनेक गुरुओं ने अपने ढंग से नये नाम देकर नई-नई प्रथाएँ आरम्भ कर दी हैं।

प्रश्न-79. हिन्दू पूजा-पद्धति में कौन-सी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं ?

उत्तर : भक्तगण हिन्दू पूजा की रीतियों में सब प्रकार के प्राकृतिक पौधों से प्राप्त वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। *पूजा के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ कपूर, नारियल और फूल हैं। कपूर या काफूर एक बहुत प्रज्वलनशील पदार्थ है, जो 'कपूर वृक्षों' से प्राप्त किया जाता है। कपूर का प्रयोग पूजा की वेदी में अग्नि प्रज्वलित करने के लिए या दीपों में शुद्ध घी या तेल में भीगी बत्तियों को जलाने के लिए किया जाता है। नारियल, बेल और फूल चढ़ावे के रूप में हिन्दू लोग अक्सर प्रयुक्त करते हैं।*

प्रश्न-80. भगवान् का सृजन किसने किया और भगवान् का अस्तित्व क्या है ?

उत्तर : भगवान् अर्थात् ईश्वर या परमेश्वर का कोई सृजनहार नहीं है, भगवान् स्वयं ही सबके स्रष्टा हैं। उन्हें अकाल कहा जाता

है, क्योंकि वे ही समय की सीमाओं से परे हैं। इसीलिए उन्हें शाश्वत, अजन्मा, अनन्त, नित्य और अनश्वर कहते हैं।

भगवान् समय के परे हैं। वे सृष्टि के पहले भी थे और सृष्टि के अन्त होने पर भी रहेंगे। भगवान् अनन्त और शाश्वत हैं, क्योंकि भगवान् अज या अजन्मा हैं, इसलिए उनके अन्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्न-81. लोग मेरा भगवान्, तुम्हारा भगवान्, अथवा उसका भगवान् ऐसा क्यों कहते हैं ?

उत्तर : प्रभु किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है, जो केवल मेरा, तुम्हारा, या उसका हो। ईसाई, मुस्लिम या यहूदी नामक भी कोई अलग से भगवान् नहीं है। केवल 'मत' के माननेवाले लोग, जैसे ईसाई और मुस्लिम ही 'मेरा भगवान्, तुम्हारा भगवान्, और 'उसका भगवान्' कहते हैं। ये शब्द 'मेरा तुम्हारा, या उनका' कहना केवल अज्ञान या अहंकार को ही व्यक्त करते हैं। अहंभाव केवल अज्ञान को स्थायी बनाता है।

भगवान् कोई व्यक्ति नहीं है। सबके एक ही भगवान् हैं जो अजर, अमर, स्वामियों के स्वामी, करुणामय और सर्वव्यापक हैं। ऋषि-मुनि भगवान् के विभिन्न गुणों को कई नामों से वर्णित करते हैं, जैसे ऋग्वेद 1.164.46 में इन्द्र=सर्वशक्तिमान्, सर्वोच्च, ज्योतिर्मय, शक्ति, मित्र, सबका सखा, वरुण=सर्वाधिक वांछित, परमेश्वर, अग्नि=स्वयं ज्योतिर्मय प्रभु, भगवान्=सर्वाधिक प्रिय, और समस्त ज्ञानमय हैं। वे दिव्य हैं, विश्वात्मा हैं, यम हैं, अर्थात् संसार के नियामक हैं, मातृसमान अर्थात् ब्रह्म ही स्रष्टा हैं।

प्रामाणिक वेद और उपनिषद् प्रभु को सर्वाधिक श्रद्धेय, प्रमुख एवं उत्तम नाम 'ओ३म्' से सम्बोधित करते हैं। ओ३म् का अर्थ है 'सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ ब्रह्म (यजुर्वेद 40, 17), अमर, पूज्य (छांदोग्य उपनिषद्-1), जो श्रद्धा और भक्ति के योग्य है।' सभी अच्छे कार्य जो ओ३म् का नाम लेकर किए जाते हैं, परमात्मा

को प्राप्त होते हैं। (देखें कठ उपनिषद्, 3-15)

प्रभु का प्राथमिक, प्राकृतिक और मुख्य नाम 'ओ३म्' है। 'ओ३म्' नाम से परमात्मा के सभी गुणों का प्रादुर्भाव होता है। 'ओ३म्' नाम के अतिरिक्त प्रभु के अन्य नाम दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। (माण्डूक्य उपनिषद्-9)

इसी प्रकार यह कथन 'मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा' विचार करने योग्य है। ऐसे कथन कठिन परिस्थितियों में केवल आशा ही देते हैं। जहाँ तक खाने और सोने का सम्बन्ध है, कोई भी मनुष्य किसी दूसरे के लिए 'खा नहीं सकता', 'सो नहीं सकता', इस तरह का कोई भी काम कर भी नहीं सकता। जो ईश्वर-प्राप्ति का इच्छुक है, उसे स्वयं ही भक्ति करनी होगी। निरुक्त 6.26.1 कहते हैं **'आर्य ईश्वरपुत्रः'** प्रत्येक प्राणी भगवान् की सन्तान है, इसलिए भगवान् और भक्त के बीच मध्यस्थता की कोई आवश्यकता ही नहीं है। पिता और पुत्र के बीच दूसरे की क्या आवश्यकता है? अतः भक्त द्वारा की गई भक्ति से ही भगवान् मिल सकते हैं, किसी अन्य से नहीं।

भगवान् किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है। 'मेरा, तेरा, उसका भगवान् को सम्बोधित करना' मात्र अज्ञानता अथवा अहंकार का ही द्योतक हैं।

प्रश्न-82. हमें भगवान् की पूजा क्यों करनी चाहिए ?

उत्तर : हम भगवान् की पूजा इसलिए करते हैं कि हम अच्छे मनुष्य बनने के लिए भक्ति और समर्पण जैसे आधारभूत गुणों का विकास कर सकें। पूजा करने से हमें भगवान् के दिव्य गुणों का ज्ञान होता है। भगवान् की भक्ति से स्वयं की तथा स्वयं के साथ परिवार, समाज और राष्ट्र की उन्नति होती है, सद्भाव और शान्ति से श्री की भी वृद्धि होती है। भक्ति से मन में सब जीवों के प्रति दया और करुणा के भाव जागृत होते हैं।

भौतिक, मानसिक, शैक्षणिक, शारीरिक, आर्थिक, या अन्य

प्रकार के दु:खों की रोकथाम करने का उत्तम उपाय प्रभु-प्रार्थना ही है। प्रार्थना से हममें आत्म-विश्वास बढ़ता है और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है, जिससे हमें अपनी बुराइयों और बुरी भावनाओं को नियन्त्रित करने में सफलता मिलती है। ईश्वर-भक्ति से हमें मानसिक शान्ति मिलती है, जिससे हमारा जीवन सुगम होकर सुख-समृद्धि की ओर अग्रसर होता है।

मन और शरीर पर नियन्त्रण करने के लिए स्वयं ही प्रभु की भक्ति करें।

प्रश्न-83. क्या भगवान् की पूजा करने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं ?

उत्तर : हम भगवान् की पूजा करते हैं, ताकि हम अधिक अच्छे मनुष्य बन सकें। हमें यह बात समझनी चाहिए कि भगवान् सृष्टि के रचयिता हैं और उन्होंने ऐसे प्राकृतिक नियम बनाए हैं जो प्रत्येक प्राणी के जीवन का निर्धारण करते हैं। मनुष्य अपनी योग्यताएँ जान पाता है और पुरुषार्थ करता है। प्रश्न 63 को भी देखिए! भगवान् के चिन्तन से मनुष्य को मानसिक शान्ति, और आत्मिक बल की प्राप्ति होती है।

जो अपनी रक्षा स्वयं करते हैं और करने में समर्थ हैं, उनकी रक्षा भगवान् करते हैं। ऋषि मनु का स्पष्ट कथन है :

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो, मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

—मनु॰ 8.15

जो व्यक्ति अपने धर्म अर्थात् शुभ सिद्धान्तों और स्वाभाविक उत्तरदायित्वों का त्याग कर देता है, धर्म उसे नष्ट कर देता है। जो लोग अपने अन्तर् के सत्य और औचित्य की भावना की रक्षा करते हैं, उनकी रक्षा धर्म करता है। इसलिए धर्म की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न-84. क्या यह कथन सत्य है— 'जो व्यक्ति भगवान् की

पूजा करता है, भगवान् उसके भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी अपराध क्षमा कर देते हैं ?'

उत्तर : नहीं, प्रभु न्याय में अन्याय नहीं करता। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्म के लिए स्वयं उत्तरदायी है, इसीलिए अच्छे कर्मों और धर्मभाव पर बल दिया जाता है। यही कर्म पुनर्जन्म को नियमित करनेवाली शक्तियाँ हैं। इस तरह स्वर्ग और नरक भी इसी संसार में भोगे जाते हैं। कोई भी व्यक्ति जब कोई कार्य करता है, तो उसे उसके परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि भगवान् के नियम अपरिवर्तनीय हैं अर्थात् जैसी करनी वैसी भरनी।

प्रार्थना एवं ध्यान से हमारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है जो हमें दुष्कर्म करने से रोकता है। उदाहरणार्थ कोई भी सच्चा ईश्वर-भक्त कभी किसी को कोई हानि नहीं पहुँचाएगा। उससे यदि बुरा हो भी जाता है, तो वह उसका परिणाम स्वीकार करने के लिए तैयार रहेगा।

प्रश्न-85. देव, देवता और दिव्यता से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : देवता, देवी या देव शब्द संस्कृत के 'दिव्' धातु से निकले हैं। दिव् का अर्थ है मानव को लाभकारी वस्तुएँ देनेवाला। वास्तव में अंग्रेजी शब्द डिविनिटी (Divinity), डिवाइन (Divine) संस्कृत धातु 'दिव्'-'Div' से ही उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार अंग्रेजी का शब्द डीयटी (deity) संस्कृत के 'देव' शब्द से उत्पन्न हुआ है। 'देव' से लैटिन भाषा का 'डीअटस' (deitus) और अंग्रेजी का डीयटी (deity) बन गया।

कोई भी देव, देवता या Deity, भगवान् नहीं हो सकता, क्योंकि यह शब्द भगवान् के केवल एक गुण का ही द्योतक है और बहुत सीमित अर्थ में प्रभु के एक रूप को ही दर्शाता है। यह बात सबको जाननी चाहिए।

प्रश्न-86. यदि देव/देवता अथवा deity भगवान् नहीं है तो भगवान् कौन है ?

उत्तर : भगवान् सृष्टिकर्त्ता, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वनियन्ता है। वह पूर्ण चेतन, सर्वत्र विद्यमान, अनादि, अनन्त, निराकार, न्यायकारी, अनश्वर, असीम, अनुपम, दयालु, अजन्म, अद्वितीय है। जैसा कि अथर्ववेद (13.4.15-19) में कहा है :

य एतं देवमेकवृतं वेद।
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।
न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।

भगवान् केवल एक ही है, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ, नवाँ या दसवाँ नहीं; वस्तुतः वह अद्वितीय एवं एकमात्र है।

प्रश्न-87. भगवान् अथवा परमात्मा का मुख्य नाम क्या है ?

उत्तर : ईश्वर का प्रमुख पवित्र एवं प्राकृतिक निज नाम ओ३म् है, क्योंकि 'ओ३म्' ईश्वर के सभी मुख्य गुणों को प्रकट करता है। इसीलिए ईश्वर के सभी अन्य नाम गौण हैं। 'ओ३म्' के तीन अक्षर तीन महत्त्वपूर्ण क्रियाओं– रचना, पालन, और संहार के प्रतीक हैं। यदि सभी प्राणी भगवान् की रचना हैं, तो जाति, धर्म, भौगोलिक स्थिति और सांस्कृतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी सभी भगवान् के नाम को उच्चारण करने में समर्थ होने चाहिएँ। अगर भगवान् है और भगवान् ने मनुष्य को उत्पन्न किया है, तब कोई भी मनुष्य जो अपने गले से ध्वनि उत्पन्न कर सकता है,

वह भगवान् के नाम का उच्चारण कर सकता है। पहली ध्वनि गले (vocal cords) की है 'अ', दूसरी ध्वनि होटों (oral cavity & lips open) की है 'उ', और तीसरी अन्तिम व्यंजनात्मक ध्वनि होंट बंद और नाक से (oral cavity & lips closed, nasal) उत्पन्न होती है 'म्'। अतः इन तीनों के मिश्रण से 'ओ३म्' शब्द की रचना होती है। 'ओ३म्' शब्द में भगवान् के सभी गुणों का समावेश है। इसीलिए 'ओ३म्' शब्द प्रभु का सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ नाम है और इसी नाम से उन्हें पुकारना चाहिए जैसा कि वेद ने कहा है :

ओ३म् खं ब्रह्म॥ –यजुर्वेद 40-17

ओम् सर्वव्यापक महान् सार्वभौमिक ब्रह्म है।

माण्डूक्य उपनिषद् ने कहा है :

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपाख्यानम्। माण्डूक्य उपनिषद्-1

सभी वेद और शास्त्र ओ३म् को भगवान् का मुख्य और स्वाभाविक नाम बताते हैं। अन्य सभी नाम दूसरे स्थान पर हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् ने कहा है :

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।–छान्दोग्य उपनिषद्-1

भगवान् अमर/अनश्वर है, उसका नाम ओ३म् है और केवल वही पूजनीय है, अन्य कोई नहीं।

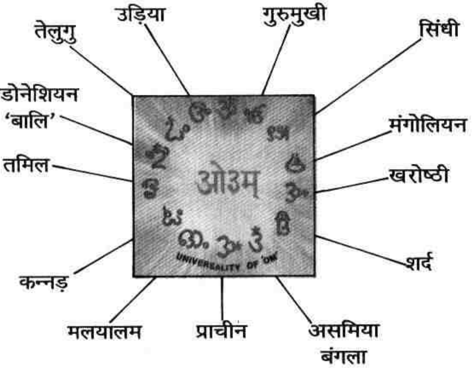
योगदर्शन ने कहा है :

तस्य वाचकः प्रणवः। –पातंजल योगदर्शनम् 1.27

प्रणव–ओम्, परमात्मा के पूर्ण बोध अथवा पूर्ण स्वरूप को अभिव्यक्त करता है।

प्रभु का नाम लेने के लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं। एक शिशु भी ओम् बोल सकता है और उनका नाम इन्हीं स्वर-ध्वनियों (अ-उ-म्) से बनता है।

ओ३म् की सर्वव्यापकता



(लेखक के निर्देशानुसार कलाकार विनोद शर्मा द्वारा ओंकार का चित्रण)

प्रश्न-88. सच्चिदानन्द कौन है, अथवा सच्चिदानन्द से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : भगवान् का कोई लिंग नहीं है, इसलिए यह प्रश्न ही नहीं उठता कि वे स्त्री, पुरुष, अथवा नपुंसक हैं। भगवान् के असंख्य गुण हैं, परन्तु मुख्यतया तीन गुणों से प्रभु को आसानी से समझ सकते हैं। ईश्वर कोई कोरी कल्पना नहीं है; ईश्वर का अस्तित्व है, अतः उनको 'सत्' की संज्ञा दी गई है। ईश्वर शुद्ध चेतन स्वरूप है अर्थात् 'चित्' यानी चेतनता के द्वारा ईश्वर ब्रह्माण्ड की रचना और संचालन करता है। क्योंकि वही ईश्वर आनन्दमय है, अतः प्रतिक्षण 'आनन्द' में रहता है। ईश्वर के तीन प्रमुख गुण हैं : सत् (अस्तित्व), चित् (चेतन), और आनन्द। इन तीनों को मिलाने से सच्चिदानन्द शब्द की उत्पत्ति हुई है।

सत् (अस्तित्व), चित् (चेतन), और आनन्द अभिव्यक्त करने से ईश्वर को सच्चिदानन्द कहा जाता है। जीवित रहते हुए भगवान् को अनुभव करना संभव है। योगियों की पुण्य और शुद्धात्मा ने, समाधि- अवस्था में प्रभु- उपस्थिति के परमानन्द को अनुभव किया है।

प्रश्न-89. आत्मा क्या है और इसके कौन-से मुख्य गुण हैं ?

उत्तर : आत्मा के दो मुख्य गुण हैं- चेतनता और अस्तिता। वास्तव में आत्म का 'चेतन' होना ही अन्त:करण की शक्ति है। इसी शक्ति से शरीर जीवन की सभी क्रियाएँ निभाता है, इसलिए आत्मा का अस्तित्व है। आत्मा में निरन्तर आनन्द का भाव है। आत्मा के निरन्तर आनन्द में रहने की अवस्था को ही मोक्ष कहा जाता है। जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आयु 31,15,36,00,00,00,000 वर्ष है, वैसे ही आत्मा भी 31,15,36,00,00,00,000 वर्ष तक मोक्ष के आनन्द को प्राप्त कर पुन: सृष्टि को लौट आती है।

प्रश्न-90. प्रकृति के प्रमुख गुणों का वर्णन कीजिए!

उत्तर : प्रकृति ही सृष्टि का भौतिक कारण है। पदार्थ द्वारा सृष्टि की रचना होती है और यह अणुओं के मिश्रणों से बनी है। पदार्थ में जीवन नहीं होता; इसका केवल एक ही गुण है--सत्ता। पदार्थ में न तो चेतना है और न ही आनन्द। प्रकृति स्वयं ही भौतिक रूप से विद्यमान है--अस्तिता/सत्ता बनाए रखने में सफल सिद्ध हुई है।

नोट : मीमांसा, वैशेषिक शास्त्र, न्याय शास्त्र, पतंजलि का अष्टांग योग, सांख्य शास्त्र, और वेदान्त-ये छः षड्दर्शन कहलाते हैं। दर्शन-शास्त्र के ये छ: अंग परस्पर सम्बन्धित हैं। इनमें से प्रथम पाँच प्रकृति अथवा अचेतन सत्ता और आत्मा अथवा पुरुष या चेतन सत्ता को शाश्वत अस्तित्वों के रूप में वर्णित करते हैं। पतंजलि के अष्टांग योग में भगवान् को पराचेतन, शाश्वत, धीमान्, प्रकृति और पुरुष दोनों के शासक रूप में वर्णित किया गया है।

वेद और सभी शास्त्र भगवान् को अवैयक्तिक और निराकार मानते हैं। अष्टांग योग के अध्ययन से पुरुष अथवा स्वयं को और सृष्टि-रचना के चरम कारण भगवान् को समझा जा सकता है। विशेषतया सांख्य शास्त्र के अध्ययन से अहं अथवा अहंकार को नियन्त्रित कर आत्म-ज्ञान प्राप्त करने को अग्रसर हो सकते हैं। तत्पश्चात् पुरुष के अस्तित्व को पहचानकर, अनुभव से आत्मज्ञान या आत्मानुभव के उद्देश्य को पूर्ण करके, व्यक्ति अष्टांग योग द्वारा भगवान् को समझ पाने के साथ-साथ प्रभु के अनन्त आनन्द की प्राप्ति इसी जीवन में कर सकता है।

प्रश्न-91. प्रकृति और प्रवृत्ति के भेद बताइए!

उत्तर : आध्यात्मिक अथवा सूक्ष्म अर्थ में प्रकृति स्वभाव की द्योतक है, जबकि प्रवृत्ति से तात्पर्य है—किसी व्यक्ति की जीवन-शैली, उसके झुकाव, उसके व्यसन, उसकी इच्छाएँ इत्यादि। प्रकृति के तीन आधारभूत गुण इस प्रकार हैं :

1. सात्त्विक : पवित्रता, शुद्धि, दया, करुणा, आत्मिक भव्यता आदि गुण सात्त्विक कहे जाते हैं।

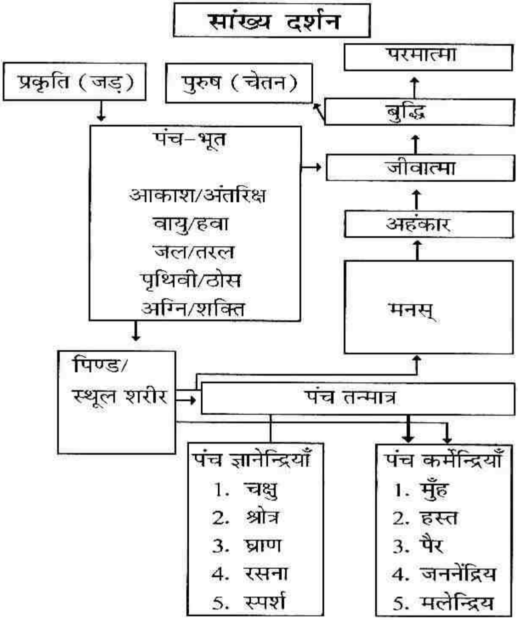
2. राजसिक : निरुद्देश्य चलायमान व क्रियाशील रहना और अहम्मन्यता एवं ठाठ-बाट आदि राजसिक भावनाएँ हैं।

3. तामसिक : अशुद्धता, अहंभाव, दूसरों के प्रति द्वेष, स्वार्थ, ईर्ष्या, अशान्ति, अज्ञान, वैर-भाव, परनिन्दा, विनाशकारिता आदि आसुरिक दुर्भावनाएँ तामसिक कहलाती हैं।

प्रश्न-92. ज्ञान की क्या परिभाषा है ?

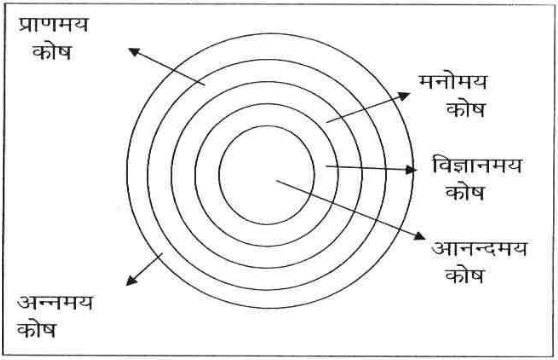
उत्तर : साधारण भाषा में जो हम सब जानते हैं, पहचानते हैं, और अनुभव करते हैं, उसे ज्ञान के नाम से सम्बोधित करते हैं। महर्षि पतंजलि-प्रणीत योगमार्ग के अन्तर्गत ज्ञान व कर्म दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। महर्षि पतंजलि ने इनका उल्लेख क्रमशः वैराग्य व अभ्यास द्वारा किया है। वस्तुओं के यथावत् ज्ञान से ही वैराग्य उत्पन्न हो सकता है। योग-साधना का निरन्तर अभ्यास, कर्म के बल पर ही हो सकता है। योग-मार्ग के पथिक के लिए ज्ञान व

कर्म एक-दूसरे के पूरक हैं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं 'आत्मानुभव के लिए कर्मयोग व ज्ञानयोग मार्ग हैं।' निरन्तर अभ्यास ही कर्मयोग है और ज्ञानयोग ही वैराग्य उत्पन्न कराता है। ये दोनों व्यावहारिक मार्ग समस्त मानव-जीवन की महत्त्वपूर्ण भूमिका बनाते हैं। ज्ञान-मार्ग को सांख्य मार्ग भी कहा जाता है। सांख्यदर्शन में कपिल मुनि ने आत्मा, परमात्मा व प्रकृति के सूक्ष्मतम कणों का परिचय दिया है जिनसे पंचतत्त्व बनते हैं। परमात्मा, आत्मा और प्रकृति के संयोग से इस संसार की उत्पत्ति होती है। आगे दिए गए चित्र से उनके द्वारा बताए तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त होता है।



इन्द्रियाँ वे हैं जो मनस् से संयुक्त होती हैं, जैसे आँखें (नेत्र) इन्द्रियगोलक हैं, जबकि चक्षु तत्सम्बन्धी ज्ञानेन्द्रिय है।

तैत्तिरीय उपनिषद् परमात्मा और प्रकृति के पारस्परिक व्यवहार का वर्णन करता है–'प्रकृति और परमात्मा के संगम से भौतिक संसार की उत्पत्ति होती है। प्रकृति मूलभूत है। सर्वप्रथम अन्नमय कोष अर्थात् वनस्पति जगत् की उत्पत्ति होती है।'



पाँच खोलों से ढका हुआ जीवात्मा

जब प्रकृति-तत्त्व और विकसित होता है, एवं 'प्राण शक्ति' का संचार शरीर में होता है तो 'प्राणमय कोष' की उत्पत्ति होती है–'जीव-जगत्' ही 'प्राणमय कोष' का रूप है। 'प्रकृति'-तत्त्वों के और अधिक विकास से मन का विकास–'मनोमय कोष' के रूप में होता है। 'प्रकृति' के अत्यधिक विकास के फलस्वरूप मानसिक क्रियाएँ भी उन्नत होती हैं जिससे तीन इकाइयों–आत्मा, परमात्मा और पदार्थ–के अन्तर अथवा भेद समझने की बुद्धि

प्राप्त होती है, जिसको ज्ञान कहते हैं। मन की इस अति उन्नत उत्तम अवस्था को ही 'विज्ञानमय कोष' कहते हैं। 'प्रकृति' के विकास की अन्तिम अवस्था 'आनन्दमय कोष' है; परम चेतन परमात्मा को आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा साक्षात् करके आनन्द की प्राप्ति करना ही मानव-जीवन का मुख्य लक्ष्य है।

परमात्मा ने विश्व में विभिन्न श्रेणियों के पदार्थ, वनस्पति-कोष से आरम्भ कर आनन्दमय कोष तक बना रखे हैं। पंचतत्त्व से बने जड़ पदार्थों में, जैसे मिट्टी, पानी, पत्थर आदि का मात्र अस्तित्व, अन्नमय कोष का ही है। पेड़-पौधे में अन्नमय के साथ प्राणमय कोष भी है। पशुओं में इन दोनों कोषों के अतिरिक्त मनोमय कोष भी है; उन्हें सुख-दुःख की अनुभूति भी होती है। मनुष्यों में विज्ञानमय कोष भी है। मानव की बुद्धि सत्य व असत्य के भेद का विवेक रखती है। मानव योगमार्ग पर चलकर अपने-आपको आध्यात्मिक और दार्शनिक विकास के लिए तैयार कर लेता है, तब आनन्दमय कोष तक पहुँचने में भी समर्थ हो सकता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार भगवान् ने सबसे प्रथम पुरुष और स्त्री देहों की रचना की। इस विचार की पुष्टि कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, इंग्लैण्ड के प्रोफेसर हॉकिंग (1999) के इस कथन से होती है--'प्राकृतिक घटनाएँ निश्चित वैज्ञानिक नियमों के अनुसार होती हैं।' प्रोफेसर हॉकिंग और आगे कहते हैं कि 'पृथिवी पर जीवन का शीघ्र आगमन इस बात का द्योतक है कि अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर जीवन के अनायास, स्वयं ही उत्पन्न होने की अच्छी सम्भावना होती है।' महर्षि दयानन्द इस सन्दर्भ में टिप्पणी करते हैं कि 'सृष्टि के आरम्भ में अनुकूल परिस्थितियाँ हिमालय में त्रिविष्टिप् (तिब्बत) में उपलब्ध थीं। महर्षि दयानन्द के अनुसार तिब्बत ही मानव-सभ्यता का उद्गम स्रोत है।

प्रश्न-93. व्यक्ति किस प्रकार से ईश्वर-प्राप्ति कर सकता है ?

उत्तर : पतंजलि के अष्टांग योग (देखें प्र॰ 66) में वर्णित 'ध्यान' के अभ्यास द्वारा प्रत्येक व्यक्ति इसी जीवन में ईश्वर-प्राप्ति कर सकता है।

यजुर्वेद कहता है कि व्यक्ति जीवित अवस्था में ही ईश्वर में लीन हो सकता है जैसा कि नीचे व्यक्त किया गया है :

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति।।

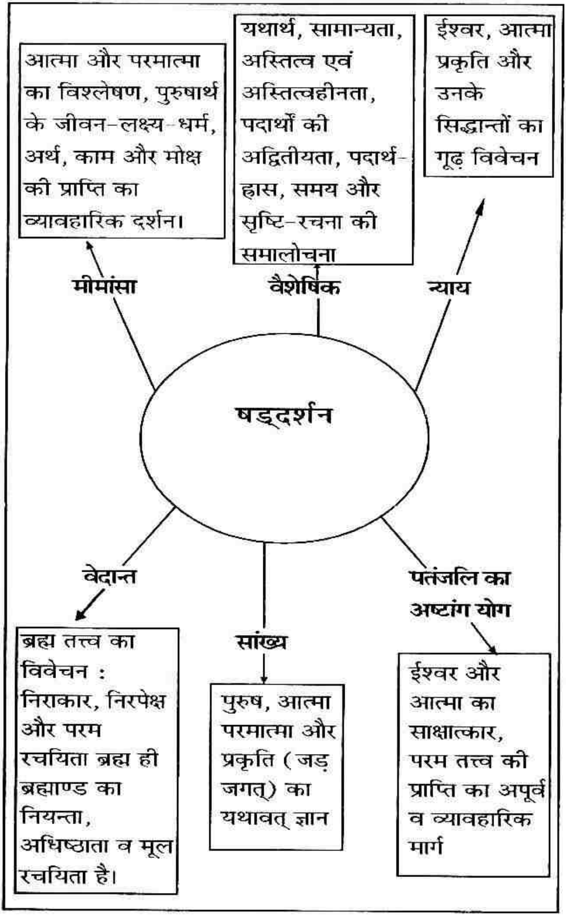
—यजुर्वेद 40.6

सृष्टि के महान् रचयिता की अनुपम कृपा से कोई भी व्यक्ति सत्य और योग के अभ्यास से प्रभु की सार्वभौम उपस्थिति, अर्थात् उस महान् रचयिता की प्रत्येक रचना में सत्य-द्रष्टा का अनुभव करता है और उसके अनुरूप ही व्यवहार करता है। जिस व्यक्ति को ईश्वर की सार्वभौम उपस्थिति के विषय में संशय नहीं रहता, वह सम्यक् दर्शन अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्।। —योगदर्शन 3.51

'अन्ततः बाधाओं को पार करने के पश्चात्, अज्ञान अथवा बन्धन का बीज दग्ध हो जाता है और योगी कैवल्य अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।'

पतंजलि-योग आत्म-साक्षात्कार करने की एक विधि है। पतंजलि के अष्टांग योग के अभ्यास द्वारा आनन्ददायक ईश्वर-प्राप्ति इस जीवन में संभव है। यह अंतःकरण का ज्ञान, आत्मज्ञान अर्थात् आत्मसाक्षात्कार करने का एक रास्ता है जो कि ईश्वर-प्राप्ति की अवस्था को तैयार करता है।


षड्दर्शन
मीमांसा
आत्मा और परमात्मा का विश्लेषण, पुरुषार्थ के जीवन-लक्ष्य-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का व्यावहारिक दर्शन।
वैशेषिक
यथार्थ, सामान्यता, अस्तित्व एवं अस्तित्वहीनता, पदार्थों की अद्वितीयता, पदार्थ-ह्रास, समय और सृष्टि-रचना की समालोचना
न्याय
ईश्वर, आत्मा प्रकृति और उनके सिद्धान्तों का गूढ़ विवेचन
वेदान्त
ब्रह्म तत्त्व का विवेचन : निराकार, निरपेक्ष और परम रचयिता ब्रह्म ही ब्रह्माण्ड का नियन्ता, अधिष्ठाता व मूल रचयिता है।
सांख्य
पुरुष, आत्मा परमात्मा और प्रकृति (जड़ जगत्) का यथावत् ज्ञान
पतंजलि का अष्टांग योग
ईश्वर और आत्मा का साक्षात्कार, परम तत्त्व की प्राप्ति का अपूर्व व व्यावहारिक मार्ग

प्रश्न–94. क्या हिन्दुओं के लिए अवतार अर्थात् भगवान् का मनुष्य–रूप में पृथिवी पर आना एक वास्तविकता है ?

उत्तर : हिन्दू धर्म का प्रमुख ग्रन्थ वेद है। वेदों में स्पष्ट उल्लेख है कि परमात्मा अकाय अर्थात् कायारहित है, अतः प्रभु का मनुष्य–शरीर धारण करना अथवा भगवान् का अवतार लेना केवल एक भ्रांति ही है, इसमें कोई सचाई नहीं है। ब्राह्मण–ग्रंथ, उपनिषद्, आरण्यक, शास्त्र, स्मृति आदि प्रमाणित धर्म–ग्रन्थों में अवतार के सिद्धान्त का कोई भी उल्लेख नहीं है। ईश्वर सर्वव्यापक है। यदि भगवान् का कुछ भाग या अंश मनुष्य का रूप धारण कर लेता है, तो ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, और सर्वदर्शी नहीं हो सकते। केवल आत्मा ही जीव का रूप धारण करती है। ईश्वर आत्मा नहीं है, ईश्वर आत्मा से परे—परमात्मा, अजन्मा, अजर और अमर है। जो लोग ईश्वर के इस शुद्ध स्वरूप को नहीं जानते, 'भगवान्' के गुणों को नहीं समझते, वे ही अवतारवाद को प्रोत्साहन देते हैं। अवतारवाद उन लोगों की अज्ञानता का प्रतीक है, जो अपनी आशा और मनोकामनाओं को जीवित रखने हेतु कपोल–कल्पनाओं का सहारा 'अवतारवाद' से लेते हैं।

अवतारवाद का सिद्धांत परमात्मा की परिभाषा के प्रतिकूल है और यह ईश्वर के प्रति कृतघ्नता ही नहीं अपितु अन्याय ही दर्शाता है। अवतारवाद मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है, जो असुरक्षा की भावनाओं को दबाने में सहायक होती है। अवतारवाद के सिद्धान्त ने हिन्दुओं को कमज़ोर बनाने में बहुत बड़ा भाग अदा किया है। बाहरी आक्रमणकारियों ने जब मंदिरों, शिक्षण–संस्थाओं और दुर्गों को तोड़ा, तब अवतारवाद के समर्थक भगवान् की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे, हारते रहे, बर्बाद होते रहे। उनकी गर्दनें कटती रहीं, पर उनके भगवान् अवतार लेकर उन्हें बचाने नहीं आए! अवतारवाद स्वयं की जिम्मेदारियों को दूसरों पर थोपना सिखलाती है, अतः यह विचारधारा अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने

के समान त्याज्य है। अवतारवाद ने ही दूसरों पर निर्भर होने की वृत्ति को जन्म दिया है। जो लोग पुरुषार्थ करते हैं, वे ही अपने उद्देश्यों में सफल होते हैं। पुरुषार्थ या परिश्रम ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है; अवतारवाद और भाग्यवाद के द्वारा कदापि नहीं।

भविष्य की अनिश्चयता को दूर करने और आशा की किरण की कल्पना करने हेतु ही 'अवतार–कि कोई आकर हमें दुर्गति से तारेगा' का विकार विवेकहीन, कर्महीन मनुष्यों ने उत्पन्न किया। शिरोमणि भारत देश को 'अवतारवाद' ने अकर्मण्यता में ढकेल दिया, जिससे भारत अब तक भी अपनी पूर्व अवस्था में नहीं आ सका।

प्रश्न–95. क्या हिन्दू मूर्ति-पूजा (Idol worship) करते हैं ?

उत्तर : दी अमेरिकन हैरिटेज डिक्शनरी के अनुसार 'मूर्ति' का अर्थ है : एक झूठा भगवान् (Idol, false god)। अत: हिन्दू 'झूठे भगवान्' की पूजा नहीं करते। यजुर्वेद ने स्पष्ट शब्दों में कहा है :

न तस्य प्रतिमा ऽ अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ ऽ इत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा
यस्मान्न जात ऽ इत्येषः।। –यजुर्वेद 32.3

'जिस भगवान् का यश सबसे महान् है, उसकी कोई प्रतिमा या मूर्ति नहीं। ईश्वर सभी प्राणियों का स्रष्टा है, वह सभी ज्योतिर्मय वस्तुओं का जीवनाधार है। उस अजन्मा सर्वव्यापक भगवान् से अधिक शक्तिशाली कोई नहीं। केवल भगवान् ही पूजनीय है।'

उपनिषद् भी प्रभु के गुणों का वर्णन करते हैं :

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके,
न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो,
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।।

–श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.9

'उस परमात्मा का न कोई पति है, न कोई शासनकर्ता, न कोई चिह्न है। परमात्मा ही इस जगत का निमित्त कारण है। वह इन्द्रियकरणों के स्वामी जीवात्मा का भी स्वामी है, वह किसी से न उत्पन्न है, और न उसका कोई स्वामी है।'[1]

क्योंकि भगवान् निराकार, निर्गुण और अनगिनत गुणों वाले हैं, अत: साधारण मानव-मन बगैर पुरुषार्थ या परिश्रम के प्रभु को समझ नहीं पाता, इसलिए हिन्दुओं ने परमात्मा के विभिन्न गुणों को विभिन्न देवताओं के रूप में ढाल लिया है। उदाहरण के लिए ब्रह्मा अनन्त सृष्टि के स्रष्टा हैं, विष्णु सर्वव्यापक सृष्टि के रक्षक हैं और शिव सृष्टि के कल्याणकारक या पुनर्निर्माण करनेवाले हैं। जो लोग भगवान् के सच्चे स्वरूप को समझ नहीं पाते, वे ही अंधविश्वास के कारण प्रभु के कुछ गुणों से युक्त देवताओं की मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा करते हैं। परमात्मा सर्वव्यापक है तो उसकी मूर्ति बनाना और उस मूर्ति की पूजा करना परमात्मा का निरादर करना ही है। देवता भगवान् के कुछ ही गुणों को दिखा सकते हैं। साधारणतया हिन्दू लोग पूजा के समय ध्यान लगाने, मन को एकाग्र करने, या भगवान् के विभिन्न गुणों का आंशिक रूप से प्रतिनिधित्व करने हेतु अलंकृत मूर्तियों का प्रयोग करते हैं, जबकि कोई भी देवता भगवान् नहीं है, और हो भी नहीं सकता। इसीलिए अधिकतर हिन्दू लोग भी मूर्तियों तक ही सीमित न रहकर प्रार्थना, स्तुति, और ध्यान द्वारा परम ब्रह्म परमात्मा की उपासना करने में पूर्ण स्वतंत्र हैं। हिन्दू ध्यान तथा उपासना से अनादि-अनंत ईश्वर के अनुपम आनन्द का अनुभव हृदय में करता है, परन्तु क्रिश्चियन लोग 'जीसस क्राइस्ट' तक ही सीमित रहकर प्रभु-प्राप्ति से वंचित ही रह जाते हैं।

----

1. सुश्री सूर्या देवी चतुर्वेदा, आचार्या 'पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी', टंकारा समाचार, ऋषि बोधांक, मार्च 2005, पृष्ठ 59 ।

दोहरी रणनीति में निपुण क्रिश्चियन लोग अपनी मूर्तियों को Icon/आईकोन अथवा Deity/देवता कहते हैं, पर हिन्दुओं की मूर्तियों को तिरस्कृत रूप से Idol/false god/'झूठा भगवान्' कहकर निन्दा करते हैं। Brain wash technique के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को भी वे यही सिखाते हैं कि हिन्दू लोग 'Idol worshippers'/'झूठे भगवान्' के 'झूठे भक्त' हैं, अत: इनका उद्धार करने हेतु 'जीसस क्राइस्ट' की शरण में लाओ अर्थात् इन्हें क्रिश्चियन बनाओ।

जगप्रसिद्ध आधुनिक समाज-सुधारक महात्मा जैसे गुरु नानक, दादू, कबीर, राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, योगी श्री अरविन्द आदि संतों ने मूर्ति-पूजा के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला विचारों को व्यक्त किया। 'बसवेश्वर लिंगायत' महात्मा का कथन है कि भगवान् के सिवाय कोई देवता नहीं हैं। तमिल योगी शिवक्कीयर, तमिल कवि महात्मा थायुमानवर, और तमिल आचार्य माणिक्कवाचकर इत्यादि महान् भक्तों ने सभी पत्थर और धातुओं से बनी वस्तुओं की, भगवान् या उनके प्रतिनिधि समझकर उनकी पूजा करने की कड़ी निंदा की है।

आदि शंकराचार्य और वैष्णव महात्मा माधवाचार्य ने छांदोग्य उपनिषद् पर लिखे गए विश्लेषण में निर्जीव वस्तुओं की पूजा पर कड़ी आपत्ति की है। उन्होंने कहा—भगवान् की बजाय निर्जीव वस्तु की पूजा करने से कोई सुख-शान्ति नहीं मिलती।

वैष्णव महात्मा स्वामी ब्रह्मानन्द ने भी मूर्तिपूजा की निन्दा की है। वे पुष्कर नगर, राजस्थान में एक सौ पचास वर्ष पहले उत्पन्न हुए थे। दीप माधव आश्रम, ग्राम जाटन, राजस्थान के अस्सी-वर्षीय महात्मा स्वामी माधवानन्द, विश्व में धर्म-प्रचारार्थ हेतु जब जून 1999 में एटलान्टा, अमेरिका में आए थे, तब इस विषय पर बड़े चाव से स्वामी ब्रह्मान्द के द्वारा रचित भक्ति-गीत भी गाए थे।

प्रश्न-96. 'वैदिक-सनातन-हिन्दू' धर्म के मुख्य तत्त्व कौन से हैं ?

उत्तर : 'वैदिक-सनातन-हिन्दू' धर्म के मुख्य तत्त्व निम्न-लिखित हैं :

1) परमात्मा केवल एक ही है, वही सृष्टि का रचयिता और कर्त्ता-धर्त्ता है, वही पूजा के योग्य है।

2) 'वेद' सभी सत्य ज्ञान के-भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत हैं। भगवान् द्वारा मानव-समाज को प्रदत्त 'वेद' दिव्य ज्ञान के उपहार हैं।

3) मानव-जीवन का उद्देश्य है-सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, शाश्वत परमात्मा को पाना अर्थात् प्रकृति की सहायता से आत्मा और परमात्मा का मिलन। आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित परस्पर सम्बन्धित क्रियाएँ संक्षेप में अपेक्षित हैं :

1. **यज्ञ :** सामाजिक और हितकारी, पवित्र-प्रयत्न अथवा कार्य को सर्वव्यापी ईश्वर के समर्पित करना यज्ञ कहलाता है। **साधारणतया त्याग की भावना ही यज्ञ का प्रतीक है।**

2. **धर्म :** भक्ति, लगन, ज्ञान और **स्वार्थ-हीन भावना से जो निष्काम कर्त्तव्य** किया जाता है, वह धर्म कहलाता है।

3. **कर्म :** निःस्वार्थ समाज-सेवा अर्थात् मानवता की सेवा ही निष्काम कर्म है। निःस्वार्थ सेवा का अर्थ ही **निष्काम कर्म** है। योगीराज श्रीकृष्ण ने गीता 3.14 में निष्काम कर्म की **'यज्ञकर्मसमुद्भवः'** के रूप में व्याख्या की है अर्थात् यज्ञ का उद्भव ऐसे निष्काम कर्म से हो, जो सभी के कल्याण की कामना से किया जाता है।

4. **योग** : अष्टांग योग द्वारा मन और शरीर को अनुशासित करके मनुष्य आत्मा के विकास की उच्चतम अवस्था तक पहुँचता है। आत्मा और परमात्मा का मिलन 'योग' है। इसी को समाधि की अवस्था कहते हैं।

5. **मोक्ष** : मोक्ष का अर्थ है : शरीर के बन्धनों से, सर्व इच्छाओं से मुक्ति। इच्छाओं से मुक्ति पाने के पहले 'काम' अर्थात् स्वभावगत इच्छाओं को जानना आवश्यक है। जीवन की यात्रा में मनुष्य को धर्म और अर्थ अर्जन करने के लिए विशेषतया पुरुषार्थ करना पड़ता है। पुरुषार्थ से ही सही मार्गों/कार्यों द्वारा धन कमाया जाता है, ताकि इच्छाओं की पूर्ति हो सके। जब कोई व्यक्ति अपनी स्वाभाविक इच्छाओं को पूरा कर लेता है तो इच्छाओं पर नियन्त्रण करने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसके लिए व्यक्ति को जीवन-यात्रा के चार पड़ाव पार करने पड़ते हैं–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। समाज के चारों वर्णों को, जीवन के चार आश्रमों अथवा जीवन–यात्रा के चार पड़ावों में से निकलना होता है। जो व्यक्ति पंच महायज्ञ अथवा पंच महाकर्म, तथा चार मूल नियमों–यज्ञ (त्याग), धर्म (तप), कर्म (निःस्वार्थ सेवा) अथवा निष्काम कर्म, पातंजल योग (अष्टांग योग) द्वारा समाज के प्रति अपने सर्वोच्च कर्तव्य को निभाता है, वह मानव-जीवन के अन्तिम ध्येय मोक्ष को प्राप्त कर सकता है और बार–बार जन्म लेने तथा मरने के बन्धन–चक्र से छूट जाता है।

6. **पुनर्जन्म** : जीवात्मा का शरीर से छूट जाने के बाद

जन्म लेना, पुनर्जन्म कहलाता है। व्यक्ति पतंजलि के योग द्वारा इस जीवन में ही मुक्त हो सकता है और जन्म-मरण के चक्कर से छूट सकता है।

4) **यज्ञ, धर्म, निष्काम कर्म, और अष्टांग-योग** द्वारा कोई भी मनुष्य बिना किसी और की मध्यस्थता अथवा बिचोलिये के मोक्ष या निर्वाण प्राप्त कर सकता है। अन्य 'मत'-मज़हब वाले मानते हैं कि पीर-पैगम्बर 'मुहम्मद' और रिलिजन वाले 'ईशु पुत्र-जीसस क्राइस्ट' के बिना कोई स्वर्ग नहीं जा सकता-यह केवल एक भ्रांति ही है जो मनुष्य को गुमराह ही करती है।

5) **इस जीवन में ही भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान के उचित मिश्रण से मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करना सम्भव है।**

6) **विचारों की स्वतंत्रता हिन्दू धर्म में सम्भव है** क्योंकि सहनशीलता, सहिष्णुता, और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व सबको समान रूप से प्राप्त है।

7) **समस्त विश्व एक परिवार है। यजुर्वेद 11-5 का वचन है: शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।** इसका अर्थ है कि सभी व्यक्ति अमृत के समान प्रभु के प्यारे पुत्र हैं अर्थात् सभी के अधिकार समान हैं।

इसी कारण से वैदिक-सनातन- धर्म ने कभी भी किसी अन्य संस्कृति, सभ्यता, मत-मज़हब याने रिलिजन इत्यादि पर धर्म के नाम पर आक्रमण नहीं किया और उनकी संस्कृति, सभ्यता, मत-मज़हब याने रिलिजन को नष्ट कर अपने में नहीं मिलाया, जैसे कि अन्य 'मत'-मज़हब याने रिलिजन वाले लोगों ने किया और अब भी खुल्लमखुल्ला कर रहे हैं।

प्रश्न-97. किस प्रकार के व्यक्ति को हिन्दू माना जा सकता है ?

उत्तर : साधारणतया कोई भी व्यक्ति अगर अग्रलिखित सिद्धांतों का पालन करता है तो उसे हिन्दू कह सकते हैं :

1. **ईश्वर या परमात्मा**—समस्त सृष्टि के रचयिता और कर्त्ता-धर्त्ता हैं। ईश्वर ही निराकार, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, सर्वशक्तिमान्, अनुपम, सर्वाधार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक हैं। सबसे बड़े कृपालु सच्चे परमात्मा हैं। उस **परमात्मा का मुख्य नाम ओ३म् है।**
2. **वेद**—सभी ज्ञान-आध्यात्मिक, भौतिक आदि **के मुख्य स्रोत चार वेद हैं जो कि ईश्वरीय ज्ञान हैं।**
3. **यज्ञ** का मुख्य व्यावहारिक रूप है—**'अनवरत विशुद्ध सर्वकल्याणकारी'** त्याग या प्रयत्न। **प्रभुप्राप्ति के लिए यज्ञ प्रथम चरण है।**
4. **धर्म** व्यक्ति के मूल कर्तव्यों और दायित्वों को इंगित करता है। व्यक्ति का स्वयं के प्रति तथा परिवार, मित्रों, समाज और संसार के प्रति क्या दायित्व है—इस ज्ञान की प्रेरणा यज्ञ देता है कि ताकि **परमात्म-प्राप्ति के लिए आत्मज्ञान का अनुभव** हो सके।
5. **निष्काम-कर्म** का सिद्धान्त मनुष्य को अन्तिम रूप-रेखा प्रदान करता है। यज्ञ और धर्म व्यक्ति के कर्मों के माप-दंड हैं। परन्तु **निष्काम कर्म** ही मनुष्य के अगले जन्म को निश्चित करता है।
6. **पंच महायज्ञ** अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ, अतिथियज्ञ (तैत्तिरीय उपनिषद् देखें उ॰ 51) के सिद्धान्त यज्ञार्थी तथा अन्य लोगों के जीवन को श्रेष्ठतर बनाते हैं। **पंच महायज्ञ का दैनिक पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कर्तव्य है। इससे स्वयं का तथा समाज का उत्थान होता है।**
7. **पुनर्जन्म** का सिद्धान्त मनुष्य के कर्म, धर्म और यज्ञ द्वारा निर्धारित एक महान् सत्य है।
8. **योग** के यम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह;

तथा नियम-शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान के पालन से आत्म-बल मिलता है, जीवन पवित्र होता और सही लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। 'भगवान् की भक्ति, सहिष्णुता, और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व' अहिंसा के सिद्धान्तों की ही उपज हैं। **इन सिद्धांतों पर चलने से विश्व का एकमात्र सार्वभौमिक परिवार देखने का सपना साकार होता है,** अर्थात् समस्त विश्व एक विशाल परिवार बन सकता है। यदि व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, और राष्ट्रों के स्तर पर आपसी तालमेल या समन्वय हो सके तो परमात्मा में लीन होने के परम लक्ष्य की प्राप्ति सब को हो सकती है। यम व नियम के अतिरिक्त मनुष्यों को योग के अन्य छः अंगों-आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि का भी निरन्तर अभ्यास करने से दैनिक जीवन में शान्ति प्राप्त होती है।

9. **धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है।** इसका दैनिक जीवन में अर्थ है 'मनुष्य-जीवन उचित ढंग से जिया जाए, जीविका-उपार्जन समुचित-साधनों से हो, जीवन का आनन्द नैतिकता के आधार पर लिया जाए और जीवन की सभी आकांक्षाएँ नैतिक मूल्यों पर आधारित हों। इच्छाओं को संयत करके ही परमानन्द, परम शान्ति, और जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार इसी जीवन में कोई भी मनुष्य बगैर किसी पीर-पैगम्बर-'मुहम्मद' की मध्यस्थता के, अथवा 'ईशु पुत्र-जीसस क्राइस्ट' जैसे प्रभु के एजेन्टों के, अर्थात् बिना किसी बिचौलिये के, मोक्ष या निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

10. **व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा उत्तम मानव बनने के**

लिए संस्कारों के सिद्धांतों पर आचरण करें। देहावसान के पश्चात् दाह-संस्कार करने से पंचतत्त्वों से निर्मित शरीर प्रकृति के पंचतत्त्वों में विलीन हो जाए।

प्रश्न-98. उन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदानों के नाम दीजिए जो 'वैदिक/सनातन' धर्म द्वारा आधुनिक संसार के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए हैं।

उत्तर : मानव-कल्याण के लिए 'वैदिक-हिन्दू-सनातन' धर्म द्वारा अगणित योगदान दिए गए हैं। उनमें से कुछ निम्न-लिखित हैं :

1. स्वतन्त्रता का सदुपयोग :

1. प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी की मध्यस्थता के नैतिक साधनों द्वारा स्वतन्त्रता या मुक्ति प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है।
2. धार्मिक स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार है। जब व्यक्ति शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक रूप से स्वतन्त्र है, तभी मुक्ति की प्राप्ति होती है। व्यक्ति यदि दूसरों की धार्मिक रीतियों में हस्तक्षेप नहीं करता और न ही उनके धार्मिक विश्वासों को चोट पहुँचाता है, तो सभी अपने-अपने ढंग से पूजा करने के लिए स्वतन्त्र हैं।
3. सब प्रकार की इच्छाओं से मुक्त होकर ही आध्यात्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती है जिसे मोक्ष या निर्वाण कहा जाता है। प्रत्येक मनुष्य में ऐसी शक्ति निहित है। यदि वह चाहे तो मोक्ष प्राप्त कर सकता है, और अपनी इस इच्छा को पुरुषार्थ द्वारा पूर्ण कर सकता है।

2. विज्ञान और धर्म का समन्वय :

भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञानों का समन्वय 'वैदिक-सनातन-हिन्दू' धर्म का एक आधारभूत अंग है। वेदों की इस अनुपम

विशेषता की झलक 'योग' और 'आयुर्वेद' में बड़ी स्पष्टता से मिलती है। प्राचीन विद्वानों और ऋषियों द्वारा शून्य और 'बाइनरी पद्धति' की जो परम्परा गणित को दी गई है, वे आधुनिक समय में कम्प्यूटर-प्रणाली के आधार बन गए। अरब देश के लोगों ने भारतीय ऋषियों से 'शून्य' जैसी अद्वितीय संख्या में पारंगत होकर पश्चिम के देशों को गणित का ज्ञान उपलब्ध कराया। वैदिक विद्वानों के इन उपहारों द्वारा ही आधुनिक संसार इक्कीसवीं शताब्दी के 'साइबर' युग में प्रवेश कर सका है।

प्रश्न-99. 'वैदिक-हिन्दू-सनातन' धर्म विश्व को क्या दे सकता है ?

उत्तर : 'वैदिक-हिन्दू-सनातन' धर्म प्राचीन काल से ही विश्व को मूल्यवान् अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्ञान देता रहा है, इसलिए सहस्रों वर्षों के उतार-चढ़ाव को झेलकर आज भी जीवन्त और सशक्त है। संसार को 'वैदिक-हिन्दू-सनातन' धर्म ने कई योगदान दिए हैं, मुख्य निम्न हैं :

1. **सहनशीलता :** शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व। अष्टांग योग के सिद्धान्तों की देन है सह-अस्तित्व और सहनशीलता। इस सिद्धान्त ने विश्व को कई उपहार दिए हैं, जैसे :
   1. संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ सभी धर्मों का समन्वित अस्तित्व है और प्राचीनकाल से ही सभी धर्मों को फलने-फूलने और उन्नत होने के समान अवसर मिले हैं।
   2. भारत ने सदा पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता का समर्थन किया है और किसी भी धर्म के अनुयायियों पर किसी प्रकार के हानिकारक नियन्त्रण नहीं लादे।
   3. पर्यावरण और वनस्पति की रक्षा होने के कारण भारत में तरह-तरह के पेड़-पौधे, फूल और जीव-जन्तु फल-फूल रहे हैं, जबकि दूसरे देशों में बहुत-सी प्रजातियाँ

लुप्त हो गई हैं।

4. भारत द्वारा विदेशी विचारधाराओं, सभ्यताओं, विदेशी मूल के निवासियों और विभिन्न जीवन-शैलियों के प्रति सद्भावना, सदाशयपूर्ण सहनशीलता आज भी विद्यमान तथा जग-प्रसिद्ध है।
5. भारत की जनतान्त्रिक प्रणाली और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता सर्वविदित है।
6. **भारतीय सदा से 'जियो और जीने दो' के आदर्श का पालन करते आए हैं।** संसार के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं जब हिन्दुओं ने दूसरे धर्मों को हानि पहुँचाई हो या उनके अनुयायियों के प्रति हिंसात्मक कार्य, आक्रमण या युद्ध आदि किए हों। हिन्दू सदा से दूसरे धर्मों के प्रति पूर्णतया सहनशील रहे हैं। अहिंसा का सिद्धान्त उन्हें न केवल मानव-जाति के प्रति, बल्कि विश्व के सभी पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं के प्रति भी हिंसा करने से रोकता है। भारत एक ऐसा देश है, जहाँ जलवायु के परिशोधन के लिए पेड़ों की भी श्रद्धा से देखभाल होती है। शाकाहारी भोजन, तथा दैनिक कार्य-व्यवहार में उनके 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श के स्पष्ट दर्शन होते हैं।
7. **स्त्री-समुदाय को 'जगदम्बा' अथवा 'माँ' से सम्बोधित करनेवाला विश्वभर में केवल एक हिन्दू धर्म ही है।** सम्पूर्ण स्त्री-समाज को आदर की दृष्टि से प्रस्तुत करने का रास्ता भी हिन्दू धर्म ही जानता है, इसी कारण हर नगर, हर ग्राम में एक देवी का मंदिर मिलता है, ताकि हर हिन्दू 'परस्त्री' को 'माँ' अथवा 'बहन' समझकर दैनिक जीवन में इस विचारधारा को पोषित करे। **केवल 'वैदिक-हिन्दू-सनातन' धर्म को माननेवाले ही 'परस्त्री**

को 'माँ' अथवा 'बहन' कहकर पुकारते हैं।

2. **ज्ञान-विवेक :** सामान्यतः परमात्मा, आत्मा और प्रकृति-विषयक ज्ञान को लेकर वैचारिक भिन्नता पाई जाती है। अतः इनके बारे में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है–'आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् ही यज्ञ, धर्म, कर्म और योग के दर्शन' का दैनिक जीवन में पालन हो सकता है। भौतिकता और आध्यात्मिकता के मिश्रण द्वारा ही भगवान् से साक्षात्कार होता है। **'भौतिकता और आध्यात्मिकता में समन्वय' वैदिक-हिन्दू- सनातन धर्म की ही देन है।**
3. **स्वस्थ, चिन्तामुक्त जीवन :** दीर्घायु के लिए दैनिक जीवन स्वस्थ और चिन्ता के भार से मुक्त होना चाहिए। ऐसा केवल 'पातंजल योग' की शिक्षाओं पर चलने से सम्भव है। इसके द्वारा 'मृत्यु' को भी अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है और योगी स्वेच्छानुसार इस संसार से विदा लेते हैं।
4. **जीवन का ध्येय :** व्यक्ति का शारीरिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास जीवन के चारों भागों में निरन्तर होता रहता है। भौतिक संसार में सुख से रहने के लिए जीविकोपार्जन नैतिक सिद्धान्तों पर चलकर करने से मानसिक शांति बनी रहती है। भविष्य में आध्यात्मिक ज्ञान के परिवेश में रहने के कारण इच्छाओं का दमन सम्भव है। सामान्यतः लोग मृत्यु का वरण शालीनता और स्वाभिमानता के साथ करते हैं। शुद्ध शाकाहारी जीवन-शैली, शरीर की जीवाणुओं से लड़ने की शक्ति को बढ़ावा देकर, समाज में व्याप्त 'औषधि निर्भरता' को कम करती है, ताकि समाज को रोगों और दुःखों से मुक्त रखा जा सके। केवल स्वस्थ, सुखी, दीर्घ जीवन की कामना ही नहीं, अपितु स्वस्थ-सुखी-दीर्घ जीवन-यापन करना सम्भव भी है।

प्रश्न-100. भगवान् की कृपा, प्रेरणा और आशीर्वाद को पाने के लिए प्रार्थना कैसी हो ?

उत्तर : किसी भी कार्य को शुरू करते समय, प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर के गुणों का ध्यान करने के लिए तीन बार 'ओ३म् तत् सत्' का उच्चारण करे, अर्थात् 'हे सर्वशक्तिमान्, दयालु, सर्वान्तर्यामी ईश्वर! आप सत्य हैं, आप चेतन हैं, हम आपकी उपस्थिति को अनुभव करते हैं।' भगवान् की कृपा, प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए कुछ देर नित्य सब ओर से मन हटाकर ईश्वर में एकाग्र-चित्त होना आवश्यक है। परमेश्वर के गुणों का वर्णन जिन मन्त्रों या वाक्यों में किया गया है उनका जप करना, ईश्वर के मुख्य नाम ओ३म्-'ओ३म् तत् सत्' का उच्चारण मंगलमय और शांतिदायक है।

नोट : किसी भी शुभकर्म को आरम्भ करते समय ओ३म् का भक्ति से शांतिपूर्वक और प्रेमपूर्वक उच्चारण करें। इसी प्रकार कार्य-समाप्ति पर 'ओ३म् स्वस्ति' तीन बार कहें। यह अपने और सबके कल्याण की साधारण प्रार्थना है।

आज भी इण्डोनेशिया ('बाली') के हिन्दू लोग 'ओ३म् स्वस्ति' का तीन बार प्रेमपूर्वक जाप प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए करते हैं।

2

दैनिक पारिवारिक प्रार्थनाएँ

परिवार के सभी सदस्य मिलकर शांति व समृद्धि के लिए प्रतिदिन दो बार प्रार्थना करें। दैनिक प्रार्थनाओं के माध्यम से परिवार के सदस्यों में विनम्रता और निष्ठा, मैत्री और समर्पण–भाव के साथ–साथ अनुशासन भी बढ़ता है। इसके अतिरिक्त परिवारजनों में पारस्परिक स्नेह, सद्भाव और सम्मान की वृद्धि होती है। आगन्तुक, अतिथि, सभी परिवार–जनों, बच्चों, सेवकों और वृद्धों सहित किसी सुविधाजनक स्थान पर एकत्रित हो जाएँ। शुद्धिकरण के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति नियत समय पर प्रार्थना की स्थिति में अर्थात् दोनों हाथ जोड़ नमस्ते की तरह करबद्ध मुद्रा में सीधे बैठें। एक सूत/रुई की बाती से बना घी का दीपक जलाएँ, तत्पश्चात् शांति, सुरबद्धता तथा निष्ठाभाव से निम्न प्रार्थनाओं का जाप करें।

प्रत्येक व्यक्ति श्रद्धापूर्वक दैनिक जप से प्रार्थनाओं को स्वत: ही कण्ठस्थ कर सकता है। शीघ्र स्वास्थ्य–लाभ के लिए निम्नलिखित कल्याणकारी प्रार्थना का जाप भी किया जा सकता है:

नित्य प्रार्थनाएँ

सामर्थ्यवान् बनने की कामना :

1. ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि,
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि,
बलमसि बलं मयि धेहि।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि,
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि,
सहोऽसि सहो मयि धेहि।।

–यजुर्वेद 19.9

परम पूज्य भगवन्। आप अनंत ज्ञान के दिव्य प्रकाश से अलंकृत सर्वोच्च तेजधारी हो। हमें भी इस मेधावी ज्ञान से अलंकृत करो। सर्वशक्तिमान्! हमारे अन्दर शक्ति व शौर्य भर दो। सर्वश्रेष्ठ आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं, हमें ओजस्वी व शक्तिशाली बनाइए। सभी शक्तियों तथा पुरुषार्थ के अधीश्वर! हमारे अन्दर बुराइयों से लड़ने के लिए उत्साह व आत्मबल का संचार कीजिए तथा हमें सन्मार्ग का अनुसरण करते रहने के लिए सामर्थ्यवान् बनाइए।

गायत्री मंत्र :

2. **ओ३म् भूर्भुवः स्वः।**
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।। –यजुर्वेद 36.3

हे परमेश्वर! आप प्राणस्वरूप, दुःखहर्ता, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सुखस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, सृष्टि-रचयिता और सर्वपालक हैं। हम आपके शुद्ध विज्ञानमय, वरणीय, दिव्य ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करते हैं। आप कृपया हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए।

ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना :

3. **विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।**
यद्भद्रं तन्नऽ आ सुव।। –यजुर्वेद 30.3

सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पत्तिकर्त्ता एवं समग्र ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे समस्त दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और दुःखों को दूर कर कल्याणकारी गुण, कर्म व पदार्थ प्रदान कीजिए।

कल्याणकारी मार्ग पर चलने की कामना :

4. **अग्ने नय सुपथा रायेऽ अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम।।** –यजुर्वेद 40.16

स्वप्रकाश, दिव्य तेजधारी प्रभो! आप हमें भक्ति और धर्मयुक्त श्रेष्ठ कल्याणकारी मार्ग पर ले चलो। हे दयानिधान! आप हमारे

सभी कर्मों के ज्ञाता हो, हमारे सभी दुष्कर्मों को दूर कीजिए। हम आपकी विविध प्रकार से स्तुति-प्रार्थना-उपासना व भक्ति करते हैं।

ज्ञान रूपी अमरत्व प्राप्त करने की प्रार्थना :

5. **असतो मा सद्गमय।**
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय॥

—बृहदारण्यक उपनिषद् 1.3.28

महान् प्रभो! हमें असत्य से सत्य की ओर प्रेरित करो। अज्ञान का अन्धकार हटा हमें ज्ञान और सद्बुद्धि प्रदान करो। अज्ञान के मृत्युरूपी बन्धन से छुड़ा हमें अमरतारूपी सत्य ज्ञान देने की कृपा कीजिए।

पूर्ण प्रभु से पूर्णता की कामना :

6. **पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।**
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

—शतपथ ब्राह्मण 4.8.1

महान् उत्पत्तिकर्त्ता, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परमेश्वर! आप सम्पूर्ण हैं, आपकी सम्पूर्ण सृष्टि-रचना पूर्ण है। यदि इस विशुद्ध सम्पूर्णता में से पूर्णता को घटा दिया जाए, तो भी विशुद्ध पूर्णता ही विद्यमान रहती है। महान् उत्पत्तकर्त्ता! आप उसी विशुद्ध पूर्णता से परिपूर्ण हैं। हम निष्ठापूर्वक श्रद्धाभाव से प्रार्थना करते हैं कि हमारा जीवन भी इसी पूर्णता से परिपूर्ण हो।

पारस्परिक बन्धुत्व की प्रार्थना :

1. **ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु।**
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

—तैत्तिरीयोपनिषद् 2.1

सर्वव्यापी भगवन्! हमें संरक्षण देकर दिव्य आनन्द दीजिए। हम अपनी एकता और घनिष्ठता से, सामूहिक रूप से, शक्तिशाली बनें। आपकी प्रेरणा से हमारा परस्पर संवाद, पारस्परिक सोच-समझ गरिमा से परिपूर्ण हो और हमारे मध्य कभी भी पारस्परिक विद्वेष और कटुभाव न पनपे।

दिव्य संरक्षण की अनुभूति की कामना :

2. **गणानां त्वा गणपतिं हवामहे**
प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधीनां त्वां निधिपतिं हवामहे वसो मम।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।

– यजुर्वेद 23.19

हम उस प्रभु का आह्वान करते हैं जो असंख्य तत्त्वों, वस्तुओं, जातियों, प्रजातियों, और गणों का संरक्षक है। हम अपने हृदय के समीप अपनी प्रिय वस्तु के रूप में उस परमात्मा की अनुभूति करते हैं। सभी प्राणियों के अनुपम अग्रणी, सब प्रकार के ज्ञान के स्रोत परमेश्वर! आप सभी जीवों की उसी भाँति रक्षा करते हैं जिस प्रकार एक माँ अपने बच्चे को अपने गर्भ में सुरक्षित रखती है। सकल जगत् के महान् पोषक, गणों के पति संरक्षक प्रभो! आप प्रकृति और उसके सूक्ष्मतम परमाणुओं की भी रक्षा करते हैं। हम भक्तिभाव से सर्वशक्तिमान्, सर्वरक्षक, अद्वितीय गणपति के दिव्य संरक्षण की अनुभूति की कामना करते हैं।*

---

* **वेदों पर व्याख्या करते हुए महीधर ने 'वेदद्वीप' नामक पुस्तक में उपरोक्त मंत्र का अश्लील अर्थ कर वेद, धर्म, और नारी का जीवित रहना ही कठिन कर दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रमाणों और संदर्भों सहित उपर्युक्त शुद्ध अर्थ 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में कर 'वेद, धर्म, और नारी' के यथोचित मान और प्रतिष्ठा को पुनः हिन्दू समाज में प्रतिपादित किया** (देखिए 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' पुस्तक का अध्याय 6)।

सर्वज्ञ सम्पूर्ण देव की आराधना :

3. त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

—पाण्डवगीता 28

सर्वेश सकल उत्पत्तिकर्ता प्रभु! आप ही माता और पिता हो, आप ही मेरे बंधु और सखा हो, आप ही विद्या और धन-सम्पत्ति हो। हे परमेश्वर! आप ही मेरे सर्वज्ञ सम्पूर्ण देवों के देव हो।

सत्य, प्रेम और सद्भावना की याचना :

4. अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।।

—अथर्ववेद 3.30.2

विश्व-विधाता कृपालु भगवन्! आप अपनी कृपा से हमारे मन में परस्पर प्रेम और स्नेह का संचार करो, ताकि संतान भी इस प्रकार अपने माता-पिता की आज्ञाकारी रहें, और परिवार के सभी सदस्यों के मध्य समरसता और सौहार्द का समावेश बना रहे। आपकी दया से परिवार-जनों और पति-पत्नी का परस्पर संवाद सत्य, प्रेम और सद्भाव से परिपूर्ण हो।

परस्पर आनन्दपूर्वक जीवन की चाह :

5. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

—अथर्ववेद 3.30.3

परम दयालु परमेश्वर! हम भाइयों और बहनों के आपसी व्यवहार को उद्देश्यपूर्ण और सफल बनाने के लिए हमारे अंदर परस्पर स्नेह और श्रेष्ठ संवाद का संचार कीजिए। हम सत्याचरण कर, पुरुषार्थ से अपनी आजीविका अर्जित करें और आपस में सब मिल-जुल और बाँट कर, आनन्दपूर्वक उपभोग करें।

दृढ़ और संगठित रहने की अनुकम्पा :

6. समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।।

—अथर्ववेद 3.30.6

पूज्य कृपालु भगवन्! हमारे सामूहिक प्रयासों को सफल बनाइए। आपकी कृपादृष्टि से हम सभी संसाधनों को जुटाकर अपने सहभोज-कक्ष का प्रयोग पारस्परिक सम्बन्धों को और अधिक प्रगाढ़ बनाने हेतु करें। हमें एकता का वर दो जिससे कि हम पहिये की सलाखों की भाँति दृढ़ और संगठित रहें।

संक्षिप्त सार

परम दयालु परमेश्वर! परिवार के सभी सदस्य अपनी श्रद्धा अर्पित करने हेतु एकत्रित हुए हैं। पारस्परिक प्रेम और स्नेह को प्रगाढ़ करने के लिए हमें सद्बुद्धि और समरसता दो ताकि हमारे हृदय विद्वेष से रहित हों और सभी परिवार-जन सौहार्दप्रियता से परिपूर्ण हों। सभी परिवार-जनों और अन्य बंधु-बांधवों का आपसी संवाद एवं व्यवहार सत्यप्रियता, प्रेम और करुणा से ओत-प्रोत हो। सब परिवार-जन विनम्र, सम्माननीय और कर्त्तव्यनिष्ठ हों।

स्वास्थ्य-प्राप्ति की प्रार्थनाएँ

बल और ओज की याचना :

1. तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाहि-
आयुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि
वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्चो मे देहि।
अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण।।

—यजुर्वेद 3.17

अजर-अमर-सर्वाधार भगवन्! मेरे शरीर को दृढ़ता प्रदान करो। मुझे सक्षम, स्वस्थ, शारीरिक बल और दीर्घायु दो। आपकी कृपा-दृष्टि

से मैं स्वस्थ, प्रसन्नचित्त और बलवान् बनूँ। महान् प्रकाशस्वरूप सुचेतन परमेश्वर! हमारे सभी दु:खों और रोगों का निवारण करो ताकि हमें बल और ओज की प्राप्ति हो।

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वस्थ शतायु जीवन :

2. तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।

—यजुर्वेद 36.24

परम हितकारी परमेश्वर! मैं आपके दिव्य गुणों का ध्यान कर आपकी उपासना करता हूँ। अपनी कृपादृष्टि से मुझे पूर्ण आरोग्यता अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य प्रदान कीजिए। मेरे नेत्र, कर्ण, रसना और अन्य शारीरिक अंग सौ वर्ष तक समर्थ रहें। आपकी दया से मैं सौ वर्ष पर्यन्त संकल्पपूर्ण जीवन जीने के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से सशक्त रहूँ। मुझे सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्ण, स्वतन्त्र, समृद्ध और स्वस्थ जीवन प्रदान कीजिए।

ब्रह्माण्ड में शांति की कामना :

3. आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः।
शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।।

—पारस्कर गृह्य सूत्र 1.8.5

सर्वप्रकाशक सर्वेश्वर! आपका तेज सम्पूर्ण द्रव्य-जगत् में शांति फैलानेवाला है। दयानिधान! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वोच्च शांति की स्थापना के लिए ब्रह्माण्ड को और अधिक शांतिमय बनाइए। आपके अनुपम आशीर्वाद से जल और द्रव्य सर्वोच्च शांति प्रदान करने के लिए औषधि का कार्य करें। भगवन्! मुझे भी वही शांति प्रदान कीजिए।

मृत्युंजय मन्त्र :

4. **त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।

—यजुर्वेद 3.60

तीन लोक अर्थात् भूलोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष को धारण और पोषण करनेवाले तेज और शक्ति के प्रदाता, सर्वरोगनाशक और सब के सहायक सर्वेश्वर! जिस प्रकार से पका फल सुगंध कारक व पुष्टिवर्द्धक बनकर स्वतः ही लता के बन्धन से छूट जाता है, उसी प्रकार हम भी जीवन में सुगंध व पौष्टिकता फैलाते हुए सभी प्रकार के दुःखों और बन्धनों (जन्म-मरण आदि) से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करें। हम इस दिशा में पुरुषार्थ करें ताकि हमें दीर्घायु और स्वस्थ जीवन प्राप्त हो।

आरती

ओ३म् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ मैं किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ किसकी।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
पार ब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्त्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्त्ता।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयामय, ऐसी दो सुमति॥
ओ३म् जय जगदीश हरे..............

दीनबन्धु दुःखहर्त्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे॥
ओ३म् जय जगदीश हरे..............

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा॥*
ओ३म् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे॥

भोजन मंत्र

ओ३म् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्यं शुष्मिणः।
प्र प्रं दातारं तारिष ऽ ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

—यजुर्वेद 11.83

अन्न और आरोग्य प्रदान करनेवाले परमेश्वर! हमें यह पुष्टिकारक और बलदायक अन्न प्राप्त कराइये। अन्नदाताओं को उन्नति और समृद्धि दीजिए। सभी प्राणधारियों को स्वास्थ्यवर्द्धक और पौष्टिक आहार की प्राप्ति कराइये।

शान्ति पाठ

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

—यजुर्वेद 36.17

---

* आरम्भ में जब स्वामी शिवानन्द ने आरती लिखी तो उन्होंने आरती को यहीं समाप्त कर दिया था।

सर्वशक्तिमान्, दयालु, शांतिप्रदाता प्रभो! इस द्युलोक में सर्वत्र शांतिमय वातावरण व्याप्त हो। आपकी कृपा से यह ब्रह्माण्ड हमारे लिए सुख-शांतिकारी होवे। इस पृथिवी को शान्ति एवं सुखमय वातावरण से सुशोभित कीजिए ताकि जल मधुमय हो, जड़ी-बूटियाँ व औषधियाँ सुखदायक हों तथा वनस्पतियाँ आनन्दकारी हों। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सुख, शान्ति, सौहार्द और समरसता का समावेश हो। भूलोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष तीनों लोकों में सर्वत्र शान्ति ही शान्ति छाई हो। हे स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे जीवन को भी इसी तरह सुखदायी और शांतिमय कीजिए।

ओ३म् शान्तिः द्युलोक में शान्ति हो!
ओ३म् शान्तिः भूलोक में शान्ति हो!
ओ३म् शान्तिः आध्यात्मिक शान्ति हो!

3

मानव-संस्कृति की आधारमूल संहिता

मनुस्मृति

राजर्षि मनु का 'मानव धर्मशास्त्र'

विश्व का सर्वप्रथम लिखित कानूनों का संविधान

राजर्षि मनु अपने समय के महत्तम वैदिक विद्वान् थे। मनु ने शाश्वत प्राकृतिक नियमों को एक पुस्तक के रूप में क्रमबद्ध किया, जिसे 'मनुस्मृति' के नाम से जाना जाता है। स्मृति का अर्थ है वेद के आधार पर बनाया गया ग्रन्थ, जिसे कण्ठस्थ किया जाए। एफ॰ मैक्सम्यूलर (1886) ने इसको 'पवित्र नियमों का संस्थान' कहा है। मनु ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने लिखित कानूनों का संविधान विश्व को प्रदान किया।

मनु का दूसरा नाम स्वायम्भुव मनु है। मनु ने घोषणा की कि 'वेद' धर्म का प्रामाणिक एवं प्रमुख आधार है (मनु 2.6, 2.13) 'मनुस्मृति' को कानून की सबसे अधिक प्रामाणिक पुस्तक माना जाता है। इस पुस्तक को 'मानव धर्मशास्त्र' के नाम से भी जाना जाता है अथवा 'मानवता की आचार-संहिता' के नाम से भी जाना जाता है। इस कृति को विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों, जैसे—ब्राह्मण-ग्रंथ, ताण्ड्यब्राह्मण (23.16.7), तैत्तिरीय उपनिषद् (2.2.10.2, 3.1.9.4); निरुक्त (3.4) ने मान्य स्थान दिया है। 'मनुस्मृति' की प्रशंसा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम तथा अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने भी की है। जब बाली ने सुग्रीव के राज्य को हड़पकर सुग्रीव की पत्नी को बलपूर्वक अपनी रखैल बनाकर रखा, तब श्रीराम ने

सुग्रीव की सहायता हेतु बाली का वध किया। घायल बाली ने, उस समय श्री राम से पूछा—'मुझे किस अपराध की सजा दी गई है?' राम ने उत्तर दिया—

राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मला स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।

—मनुस्मृतिः 8–318

अर्थात् जो मनुष्य पापकर्म करने पर राजा द्वारा दण्डित किए जाते हैं, व पाप से मुक्त होकर पुण्यात्मा पुरुषों की भाँति सुखी (स्वर्गवासी) होते हैं।

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्विषम्।।

अर्थात् जो चोर अथवा प्राणी स्वयं राजा के पास जाकर अपने पाप को स्वीकार कर लेता है और दण्ड चाहता है, राजा चाहे उसे दण्ड दे अथवा क्षमा कर दे—दोनों अवस्थाओं में वह पापी पाप से मुक्त हो जाता है। परन्तु पापी को पाप का दण्ड न देने से राजा स्वयं उस पाप का भागी हो जाता है।

श्रीराम ने बाली को 'मनुस्मृति' के उदाहरण प्रस्तुत किए।

(वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा 18.30.32)।

आचार्य बृहस्पति, भृगु, नारद (एफ. मैक्सम्यूलर, 1886 द्वारा उद्धृत); गौतम, वसिष्ठ, आश्वलायन, जैमिनि, बौधायन, और अन्य सूत्र-ग्रन्थ सभी 'मनुस्मृति' को उद्धृत करते हैं (प्रो॰ सुरेन्द्र कुमार, 1990)। बौद्ध कवि अश्वघोष ने 'मनुस्मृति' के महत्त्व को स्वीकार किया है। अश्वघोष प्रथम शताब्दी के शासक कनिष्क के समकालीन थे। उनकी पुस्तक वज्रकोपनिषद् में 'मनुस्मृति' के प्रामाणिक संदर्भ अधिकधिक मिलते हैं। सम्राट् कनिष्क सम्राट् विक्रमादित्य के सीधे उत्तराधिकारी थे। उन्होंने मध्य एशिया पर भी शासन किया था। कौटिल्य, आदिशंकराचार्य, तथा आधुनिक काल के महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री अरविन्द (प्रो॰ सुरेन्द्र कुमार, 1990) और

स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति डॉ॰ राधाकृष्णन् ने भी 'मनुस्मृति' की महत्ता स्वीकार की है।

फ्रांस की मैडम लुइस जेकोलियट ने ई॰स॰ 1876 में, **'ला बाइबल डेन्स एल इण्डे'** नामक पुस्तक लिखी, उसमें ईसाइयों और हिब्रू (यहूदी) रेवेलेशन अथवा आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत– 'मनुस्मृति' को सिद्ध कर दर्शाया है। इस पुस्तक में मनु का वर्णन 'मिश्रवासियों के मेनेज; यहूदियों के मोजेज; ग्रीक और रोम के मीनाज; और योरुप के सुकरात, प्लेटो और अरस्तु' के भी पूर्वगामी महान् पूर्वज' के रूप में दिखाया है। इन सब की अग्रगामी परम्परा हिन्दी ही रही है, जो मध्य एशिया की उपनिवेशवादी जनसंख्या के यूनान में अवतरण के साथ आई और वहाँ के लेखकों ने भी अपना लिया। ज्यूरिस्ट मैडम लुइस जेकोलियट ने लिखा–

'6,000 वर्ष पूर्व सुसंस्कृत, सुसभ्य और सघन जनसंख्या वाले भारत ने मिश्र, पर्शिया, फिलिस्तीन, इज्रायल, अरेबिया, यूनान और रोम पर अपनी अमिट छाप छोड़ी, इतनी अमिट जितनी कि इन सभी राष्ट्रों ने अन्य राष्ट्रों पर छोड़ी। ईसा–काल से तीन हजार वर्ष पूर्व महर्षि मनु ने हिन्दू कानूनों का विधान रच दिया था, और यही हिन्दू कानून सम्पूर्ण प्राचीन समुदाय द्वारा अपनाए गए। उदाहरण के रूप में : रोम में इन्हीं कानूनों का लिखित संविधान 'जस्टीनियन की संहिता' बना, जिसे सम्पूर्ण विश्व के आधुनिक संविधानों द्वारा मूलभूत संहिता के रूप में अपनाया गया।

अत: महर्षि मनु को ऐसा प्रथम महानुभाव माना गया है, जिनकी प्राकृतिक कानूनों की संहिता, पूर्व और पश्चिम की दोनों सभ्यताओं का आधार बन गई। महर्षि मनु के सम्मान में फिलिपीन्स संविधान–सभा ने अपने सभागार में उनकी प्रतिमा स्थापित की।

4

सम्राट् विक्रमादित्य व भर्तृहरि ज्ञानी बनाम अज्ञानी

पाश्चात्य इतिहासकारों और भारत में यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के अनुसार सम्राट् विक्रमादित्य ने बृहत् भारत पर 400 ई॰पू॰ में शासन किया। कुछ इतिहासकार इस तथ्य की प्रामाणिकता पर भी शंका करते हैं। उनका मानना है कि विक्रमादित्य का शासन–काल मैगस्थनीज की पुस्तक 'इण्डिका' में बताए काल से बहुत पहले रहा था। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि विक्रमादित्य के नाम से दो सम्राट् हुए हैं, जिन्होंने अलग–अलग समय पर शासन किया। इस पुस्तक में उस विक्रमादित्य का वर्णन किया गया है, जिसके राज्य की सीमाएँ पूर्व में गंधार (आधुनिक अफगानिस्तान) तथा आधुनिक पर्शिया और अरब देश के पूर्वी भागों के पूर्व में फैलीं, उत्तर में मध्य एशिया के उत्तर तक फैली हुई थीं, जैसा कि पुरातत्त्व-खोजों का शिलालेख 4, 13 (श्री राम साठे : 1987) से पता चला है।

सम्राट् विक्रमादित्य के बड़े भाई राजा भर्तृहरि ने ईसा के 80 वर्ष पूर्व मध्य एशिया पर शासन किया था। उनकी बहन मीनावती एक उच्चकोटि की विदुषी थी। भारत के पूर्वी भागों पर अर्थात् आधुनिक बांग्लादेश, कामरूप अर्थात् प्राचीन असम तथा म्याँमार

पर मीनावती का शासन था। मीनावती के शासन की राजधानी ढाका थी। उनका भतीजा राजा गोपीचन्द गुरु जलंधरनाथ का शिष्य था। बाद में गोपीचन्द अपने राज्य को त्यागकर अपने चाचा भर्तृहरि की संगत में चले गए। राजा भर्तृहरि ने अपना राज्य अपनी अत्यधिक प्रिय पत्नी के विश्वासघात से खिन्न हो पहले ही त्याग दिया था। भर्तृहरि-कथा अनुसार उनकी सुन्दर पत्नी 'पिंगला' घुड़सवार-सेना के सेनापति को अनैतिक छद्म रूप से प्यार करती थी। राजा भर्तृहरि पर यह सम्बन्ध तब उजागर हुआ जब उन्होंने एक नागरिक द्वारा उन्हें भेंट किए गए अमर-फल को अपनी पत्नी को प्रेम से दिया। परन्तु रानी पिंगला ने उस फल को छिपा कर अपने प्रेमी घुड़सवार-सेना के सेनापति को दे दिया। घुड़सवार-सेना के सेनापति ने सोचा कि यह अमर-फल उन्हें प्रधान सेनापति को देना चाहिए और इस प्रकार घुड़सवार-सेनापति ने वह अमर फल प्रधान सेनापति को दे दिया। स्वामीभक्त प्रधान सेनापति ने वही अमर-फल प्रेम से राजा को भेंट कर दिया। जब राजा भर्तृहरि को ज्ञात हुआ कि यही अमर-फल तो मैंने अपनी पत्नी को भेंट दिया था, तब राजा भर्तृहरि अपनी पत्नी द्वारा किए गए इस विश्वासघात से बहुत दु:खी होकर, वैराग्य लेकर गुरु गोरखनाथ के शिष्य बन गए। गुरु गोरखनाथ के गुरु का नाम मच्छेन्द्रनाथ था जिनका नाद 'अलख-निरंजन' था। 'अलख-निरंजन' का अर्थ है कि 'ईश्वर एक अवर्णनीय ज्योति:पुञ्ज है।'

राजा विक्रमादित्य को अपने राज्य के साथ-साथ भर्तृहरि और गोपीचन्द के राज्यों की भी देख-रेख करनी पड़ी। इस प्रकार विक्रमादित्य बृहद् भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली शासक बन गए। उनके राज्य की सीमाएँ पश्चिम में अरब देश तथा आधुनिक मध्य-पूर्वी और मध्य एशिया तक फैली हुई थीं। (देखिए संलग्न मानचित्र)। 57 ई०पू० विक्रमादित्य की मध्य एशिया में हुई विजय के उपलक्ष्य में विक्रम सम्वत् का प्रादुर्भाव हुआ।

मक्का में स्थित काबा के एक शिलालेख में सम्राट् विक्रमादित्य का नाम अंकित

श्री भूदेव शर्मा[3] द्वारा अंग्रेजी ई-मेल का हिन्दी अनुवाद:[4]

तुर्की के नगर इस्तम्बूल की "मकतब-ए-सुल्तानिया" पुस्तकालय में सुरक्षित पुस्तक "सयार-उल-ओकुल" (जिसका अर्थ है-स्मरण रखने योग्य शब्द) के पृष्ठ 315 पर लिखा है कि मक्का में स्थित काबा में अरबी भाषा में लिखा एक शिलालेख लगा था। इस शिलालेख, जिसमें सम्राट् विक्रमादित्य (बिक्रमतुल)[5] एवं अरब क्षेत्रों पर उनके साम्राज्य का उल्लेख है, का हिन्दी-रूपान्तर इस प्रकार है-

"वे लोग भाग्यशाली हैं जिनका जन्म विक्रमादित्य के शासन में हुआ। वह एक महान्, उदार, कर्तव्यपरायण एवं अपनी प्रजा के कल्याण के प्रति निष्ठावान् शासक था। परन्तु उस समय हम अरब निवासी ईश्वर से विमुख भोग-विलास में खोए थे। षड्यंत्रों एवं अत्याचार का बाहुल्य था। अज्ञान के अंधकार से देश ढका

----

3. डॉ० भूदेव शर्मा, प्रोफेसर, क्लार्क अटलाण्टा यूनिवर्सिटी, अटलाण्टा, पूर्व कुलपति, हिन्दू यूनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका, ऑरलैण्डो, फ्लोरिडा, अध्यक्ष, वर्ल्ड एसोसिएशन फॉर वैदिक स्टडीज, यू.एस.ए. निवास-2505 ब्रैडफोर्ड स्क्वायर, अटलाण्टा, ज्योर्जिया-30345, यू०एस०ए० Phones: 404-248-9494(Home), 404-880-6912(O); Fax 404-880-6909.

4. Web site http://www.salagram.net/VWH-Kaaba.html provided for Vikramaditya and Arabia by Fanabba@aol.com

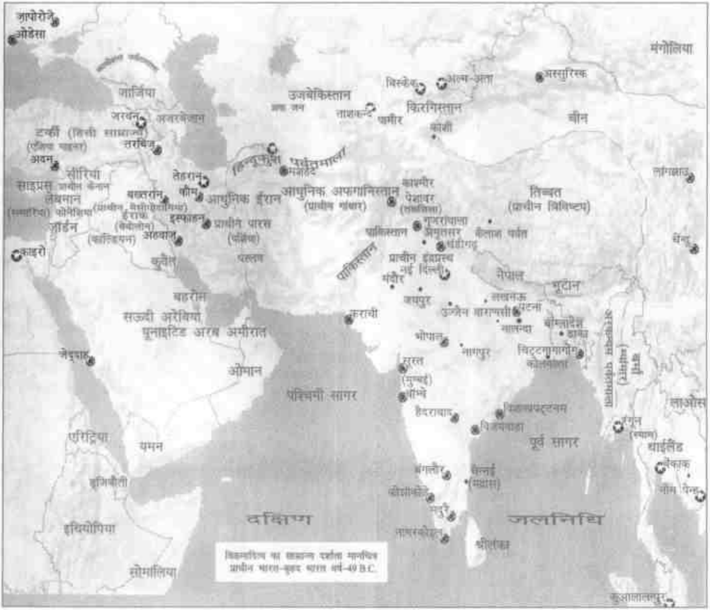
5. नोट-एक देश के स्थानों तथा व्यक्तियों के नाम दूसरे देश में कई कारणों से बदल जाते हैं। सिंधु नदी मध्य-पूर्व में हिन्दू बन गई और योरुप में इंडस। चन्द्रगुप्त का नाम ग्रीस में सौन्द्राकौटस हो गया। भारत में भी ऐसा हुआ है, जब सौक्रटीज का नाम सुकरात तथा प्लेटो का नाम अफलातून हो गया।

था। समूचे देश में अमावस्या का-सा अंधकार था। परन्तु अब परोपकारी सम्राट् विक्रमादित्य के कारण उनकी देख-रेख में शिक्षा का नया एवं सुखद प्रकाश छा गया है। उन्होंने अपने पवित्र धर्म का प्रचार किया है। अपने देश से हमारे देश में ऐसे प्रतिभावान् विद्वान् भेजे हैं, जिनका ज्ञान सूर्य के प्रकाश की भाँति है। इन विद्वानों एवं नीतिज्ञों की कृपा से हम लोगों ने एक बार फिर ईश्वर की सत्ता को पहचाना है। उसकी सत्ता को स्वीकार करके सत्य मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। सम्राट् विक्रमादित्य के आग्रह पर ये विद्वान् हमें शिक्षा एवं उपदेश देते हैं।"

सय्यार-उल-ओकुल पुरातन पश्चिमी एशिया साहित्य का बृहत्तर संकलन होने के लिए प्रसिद्ध है। यह तीन भागों में विभाजित है। पहले भाग में इस्लाम-पूर्व के कवियों की रचनाएँ और उनके जीवन-वृत्त हैं। दूसरे भाग में हजरत मुहम्मद के समय के ठीक बाद से लेकर बनी-उम-मय्या राजवंश के विभव-काल की कविताओं एवं विवरण का संकलन है। तीसरे भाग में उसके बाद तथा खलीफा हारून-अल-रशीद के समय तक के कवियों की सामग्री है।

यह संकलन हारून-अल-रशीद के राजदरबार-कवि अबु आमीर असमयी द्वारा सम्पादित है। इसका प्रथम संस्करण 1864 में बर्लिन से तथा उसके पश्चात् 1932 में बैरूत से प्रकाशित हुआ था।

यह प्राचीन अरब प्रदेश के सामाजिक जीवन, रीति-रिवाज, और मनोरंजन के साधनों पर काफी प्रकाश डालता है। पुस्तक में मक्का नगर तथा वहाँ के काबा के मन्दिर में ओकज नामक वार्षिक उत्सव का विशद वर्णन है। इस बात से पाठकों को यह पुष्टि हो जाएगी कि काबा में वार्षिक हज इस्लाम-पूर्व से चला आ रहा सामाजिक सम्मेलन का रूप है। ओकज का रूप कार्निवाल जैसा नहीं था। यह विद्वानों और समाज के श्रेठ लोगों के तब अरेबिया


ओडेसा
मंगोलिया
जार्जिया
उजबेकिस्तान
किरगिस्तान
चीन
काशी
अजरबेजान
टर्की
तबरिज
अदन
सीरिया
तेहरान
कश्मीर
तिब्बत
साइप्रस
लेबनान
बहरतान
आधुनिक ईरान
आधुनिक अफगानिस्तान
पेशावर
जॉर्डन
इस्फाहन
प्राचीन पारस
गुजरांवाला
अमृतसर
कैलाश पर्वत
काइरो
अहवाज
कुवैत
पाकिस्तान
प्राचीन इंद्रप्रस्थ
नई दिल्ली
नेपाल
भूटान
बहरीन
जयपुर
लखनऊ
सऊदी अरेबिया
कराची
उज्जैन
वाराणसी
नालन्दा
बांग्लादेश
यूनाइटेड अरब अमीरात
भोपाल
नागपुर
ढाका
जेद्दाह
कोलकाता
ओमान
सूरत
(मुम्बई)
पश्चिमी सागर
हैदराबाद
लाओस
रंगून
एरिट्रिया
यमन
विजयवाडा
पूर्व सागर
थाईलैंड
बैंकाक
मंगलौर
चेन्नई
(मद्रास)
इथियोपिया
दक्षिण
जलनिधि
मदुरै
श्रीलंका
सोमालिया
कुआलालम्पुर

में व्याप्त वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक विषयों पर वार्तालाप करने का मंच था। सय्यार-उल-ओकुल इस पर बल देता है कि उस सम्मेलन से जो निष्कर्ष निकलते थे, उनका अरेबिया में व्यापक आदर होता था।

सीरिया के एक जानकार एवं अरबी भाषा के कवि डॉ॰ हवासली, जो आजकल अटलाण्टा में हैं, ने कहा कि इस्लाम के प्रारम्भ (१४०० ईसवी) में ही काबा को साफ कर दिया गया था। उसके बाद से इसमें किसी प्रकार का कोई पुरातन लेख अथवा वस्तु नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि दीवार पर एक भित्ति-चित्र बचा था, वह भी मिटा दिया गया है।

सम्राट् विक्रमादित्य के प्रधानमंत्री चाणक्य, जिसे कौटिल्य के नाम से भी जाना जाता है, बहुत उच्चकोटि के विद्वान् थे। चाणक्य ने विभिन्न विषयों पर कई पुस्तकें लिखी। इनके द्वारा रचित अर्थ-शास्त्र और नीति-शास्त्र का आज भी अनेक विश्वविद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों के रूप में उपयोग होता है। विक्रमादित्य के बड़े भाई भर्तृहरि भी एक बहुत बड़े विद्वान् थे, उन्होंने भी कई पुस्तकों की रचना की। भर्तृहरि द्वारा 'नीति' पर रचित पुस्तक का एक उदाहरण पुस्तक के आरम्भ में प्रस्तुत है।

विक्रमादित्य-राज्य भौगोलिक मान चित्र



5

महान् नीतिज्ञ विदुर एवं 'ज्ञानी' की परिभाषा

महाभारत उस 'महायुद्ध' का नाम है, जो भारत के दो राजवंशों 'कौरवों' और 'पाण्डवों' के मध्य 3138 ई॰पू॰ में हस्तिनापुर अर्थात् आधुनिक दिल्ली के पास लड़ा गया था। इस युद्ध में भारतीय उपमहाद्वीप और मध्य-एशिया सहित पड़ोसी देशों के राजाओं और सेनाओं ने भाग लिया। इसीलिए इस युद्ध को 'महाभारत युद्ध' अथवा बृहत् भारत का महायुद्ध अर्थात् 'महाभारत' कहा जाता है। महान् नीतिज्ञ विदुर ने 'पाण्डवों' को अपने हिस्से में आए राज्य के अधिकार हेतु और महाभारत के युद्ध को टालने के लिए जो वार्तालाप धृतराष्ट्र के साथ नीति और तर्क सहित किए, उनको 'विदुर नीति' कहते हैं।

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते।।

—विदुर-नीति 1.25

ऐसा व्यक्ति जो मननशील, समर्पित और लक्ष्यभेदी है और सृजनात्मक कार्यों में संलग्न रहता है, पण्डित कहलाने का अधिकारी है।

आर्यकर्माणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ।।

—विदुर-नीति 1.26

श्रेष्ठ पण्डित ऐसे विद्वान् लोग होते हैं जो मानवतावादी कार्यों

में गहरी रुचि लेते हैं। गुणी पण्डित जनसमुदाय की खुशहाली के लिए कार्य करने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। पण्डित ऐसे मानवतावादी लोगों से न तो ईर्ष्या रखते हैं और न ही उनकी आलोचना करते हैं।

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते॥

—विदुर-नीति 1.27

पण्डित अर्थात् बुद्धिमान् लोग प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखते। ऐसे विद्वान् उपेक्षा और अपमान किए जाने पर आहत न होकर संतुष्ट ही रहते हैं।

6

हिन्दू संस्कृति के महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक ग्रन्थ

1. षड्दर्शन

संसार के रचने से लेकर आध्यात्मिक ज्ञान को समझाने हेतु जो छः शास्त्र मार्गदर्शन करते हैं, वे षड्दर्शन कहलाते हैं। क्रम से षड्दर्शन निम्न हैं :

1. **मीमांसा दर्शन (पूर्व मीमांसा) :** 'मीमांसा' शब्द का अर्थ 'तर्कपूर्ण विचार करना' है। पूर्व मीमांसा को प्रायः 'मीमांसा' तथा उत्तर मीमांसा को 'वेदांत दर्शन' के नाम से जाना जाता है।

जैमिनी द्वारा रचित मीमांसा दर्शन वैदिक वाक्यों का विश्लेषण करता है, जैसे वेदों में कौन-से वाक्य विधि-वाक्य हैं और कौन-से अर्थवाद-वाक्य? इसका विवेचन मीमांसा दर्शन से ही संभव है। इस दर्शन के बिना वैदिक वाक्यों का विचार असम्भव है। जैसे **'आत्मानमुपासी'**—यह वेद का विधि-वाक्य है, अर्थात् परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए। परन्तु जब तक मानव को परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव का ज्ञान नहीं होता, तब तक वह दृढ़तापूर्वक ईश-उपासना में प्रवृत्त नहीं होगा। इसलिए आगे कहा गया—**'मोक्षकामः पुरुषः परमात्मोपासनेन मोक्षं भावयेत्'** अर्थात् मोक्ष के इच्छुक पुरुष को परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए। अतः मीमांसा-दर्शन में मुख्यतः वैदिक वाक्यों पर तर्कपूर्ण विचार किया गया है। मीमांसा-दर्शन के विषय में यह भ्रान्त धारणा है कि इसमें केवल वैदिक कर्मकाण्ड एवं यज्ञ में पशुबलि का विधान किया गया है, परन्तु यह अनर्थ-परक व्याख्या है।

2. वैशेषिक दर्शन : वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद मुनि विश्व के प्रथम पुरुष थे जिन्होंने 'अणु सिद्धांत' को जन्म दिया। वैशेषिक दर्शन में मुख्यत: जगत् के पदार्थों के धर्म का, गुणों का, तथा उनके संगठन स्वरूप का विवेचन है। इस दर्शन में–द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य तथा विशेष की विवेचनात्मक व्याख्या है।

यदि कणाद और कपिल मुनि नहीं होते, तो हम विज्ञान की वर्तमान स्थिति तक नहीं पहुँच पाते (डॉ॰ सत्यप्रकाश)।

3. न्याय दर्शन : न्याय दर्शन के प्रणेता गौतम मुनि हैं। इस दर्शन में मुख्यरूप से प्रमाणों के आधार पर सत्य का निश्चय किया गया है। समस्त दार्शनिक, धार्मिक, तथा व्यावहारिक नियमन न्याय दर्शन के सिद्धान्तों के द्वारा ही होता है। न्याय दर्शन में पदार्थ व उनके गुणों को जानने की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन है। प्रारम्भ से अन्त तक दर्शन का अधिक भाग 'प्रमाण' के स्वरूप और प्रयोग की प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करता है। न्याय दर्शन का मुख्य विषय 'प्रमाण' ही है।

4. योग दर्शन–पतंजलि का अष्टांग योग : प्राचीन ऋषि-मुनियों ने भौतिक जगत् की छानबीन के साथ आध्यात्मिक जगत् के रहस्यों का भी उद्घाटन किया है। यदि यह कहा जाए कि उपनिषद् एवं वेदान्त आदि में परमतत्त्व ब्रह्म का गूढ़ विवेचन अथवा निष्कर्ष है तो योग उस परमतत्त्व की प्राप्ति का अपूर्व व व्यावहारिक मार्ग दिखाता है। योग इन सिद्धान्तों को दैनिक जीवन में उतारने का मार्ग दर्शाता है।

योग दर्शन में चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में मन की वृत्तियों को अभ्यास के द्वारा नियंत्रित करने का उपाय व समाधि के स्वरूप व समाधि की अवस्था के विषय में बताया है। द्वितीय अध्याय में समाधि-प्राप्ति के साधनों का विस्तृत वर्णन है। तृतीय अध्याय में साधनों के अनुष्ठान से प्राप्त विभिन्न प्रकार की सिद्धियों का विवरण है। चतुर्थ व अन्तिम अध्याय में चित्त के निर्दोष स्वरूप

के वर्णन के साथ कैवल्य (मोक्ष) के स्वरूप का विवेचन है।

उस परम आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव है—इसकी व्यावहारिक प्रक्रिया पतंजलि ऋषि द्वारा योग दर्शन में बताई गई है।

5. **सांख्य दर्शन :** कपिल मुनि द्वारा रचित सांख्य दर्शन अद्वितीय है। संख्या शब्द से 'सांख्य' शब्द की व्युत्पत्ति मानी गई है। सांख्य दर्शन में मुख्य रूप से जड़ प्रकृति को जगत् का मूल उपादान कारण एवं ईश्वर को जगत् का अधिष्ठाता व नियन्ता माना गया है। इसमें 24 तत्त्वों का विवेचन है। प्रकृति (जड़ जगत्) और पुरुष, ईश्वर के विवेक का ज्ञान हो जाना सांख्य है। इसी को मोक्ष या अपवर्ग कहा गया है। सांख्य दर्शन में प्रकृति व पुरुष का समन्वय बताया गया है।

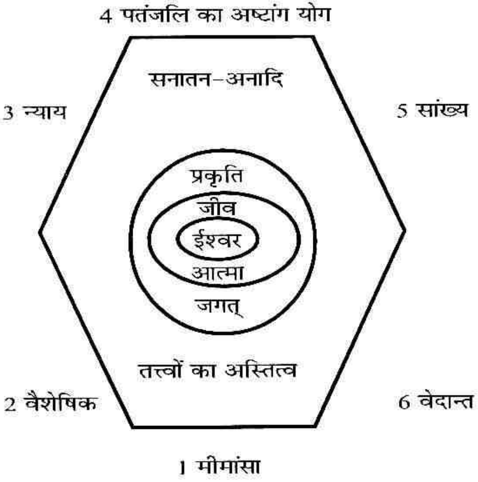
6. **वेदान्त दर्शन (उत्तर मीमांसा) :** बादरायण व्यास रचित 'ब्रह्मसूत्र' को वेदान्त दर्शन भी कहते हैं। वेदान्त में मुख्य रूप से ब्रह्म का विवेचन किया गया है। वेदान्त अथवा उत्तर मीमांसा में 'अन्य ग्रन्थों में विशेषत: उपनिषदों में वेदों के सिद्धान्तों को कैसे प्रस्तुत किया है' इस पर चिन्तन है।

उपनिषदों के कुछ सूत्रों में विरोधाभास प्रतीत होता है, जैसे—**'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (छान्दो० 3.14.1) यह 'सब ब्रह्म ही है', **'नेह नानास्ति किंचन'** (बृहदा० 4.4.19) 'अनेक प्रकार के पदार्थ नहीं हैं', **'सर्वं हि एतद् ब्रह्म'** (माण्डूक्य उपनिषद् 2) 'ये सब पदार्थ ब्रह्म-रूप हैं'। इन वाक्यों में विरोधाभास-सा प्रतीत होता है। अनेक आचार्यों ने इस विरोधाभास को सुलझाने हेतु दार्शनिक प्रयास किए हैं। इन तीनों ग्रन्थों की व्याख्या आचार्य शंकर, रामानुज, निम्बार्क, माध्व, व वल्लभाचार्य आदि आचार्यों ने अपने अनुसार की है, इनको 'वेदान्त या नवीन वेदान्त' के नाम से माना जाता है। इन पाँचों आचार्यों के नाम से वेदान्त के अलग-अलग सम्प्रदाय भी बन गए। इनमें आचार्य शंकर प्रमुख

हैं, जिन्होंने ब्रह्म को ही सत्य, अस्तित्वमय व अनादि माना तथा जगत् को असत्य और मिथ्या, जबकि द्वैतवाद का तात्पर्य 'जड़ व चेतन' दो तत्त्वों की मान्यता से ही है।

उपनिषदों के उक्त वाक्यों की व्याख्या महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'त्रैतवाद'-परक की है, जिसमें ईश्वर, आत्मा (जीव), एवं प्रकृति (जगत्), इन तीनों तत्त्वों को अस्तित्वमय व अनादि स्वीकार किया गया है। ब्रह्मसूत्र की भी ऐसी ही मान्यता है।

षड्दर्शन द्वारा मोक्ष-प्राप्ति अर्थात् ईश्वर-साक्षात्कार :



2. गीता

हिन्दू संस्कृति व दर्शन का श्रीकृष्ण द्वारा कथित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ गीता है। गीता को श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से भी जाना जाता है। महाभारत में 'सर्वशास्त्रमयी गीता' कहकर इसकी श्रेष्ठता को स्वीकारा गया है। आज की मानवता भी बाह्य तथा आंतरिक संघर्ष से जूझ रही है। अगर महाभारत ग्रन्थ बाह्य संघर्ष का द्योतक है, तो गीता आंतरिक अथवा मानसिक क्लेश पर विजय पाने का सुगम उपचार बताती है। आज के मानव को गीता के शब्द 'तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय' जैसे प्रेरणाप्रद आह्वान अपेक्षित हैं।

गीता का विषय 'निष्काम कर्म, ज्ञान, भक्ति, और योग' है। परन्तु गीता मुख्य रूप से हताश व कायरता को प्राप्त अर्जुन को अपने दायित्व, कर्तव्य, अथवा धर्म का अवबोध करानेवाला ग्रन्थ है।

निष्काम कर्म के महत्त्व के प्रतिपादन के कारण गीता को व्यावहारिक रूप से ज्ञान का स्रोत माना जाता है। गीता की प्रसिद्धि समन्वयवादी विचारधारा के कारण भी विशेष रूप से हुई है। इसीलिए महर्षि वेदव्यास ने गीता के विषय में कहा है **'गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः'** अर्थात् गीता का स्वाध्याय मनुष्य को सम्यक् प्रकार से करना चाहिए। कालांतर में मूल ग्रंथ में अनेक हेर-फेर होने के कारण वेदविरुद्ध वाक्यों की भरमार हो गई तथा परस्पर-विरोधी भावों का समावेश होने से भ्रान्त धारणाओं और विकृतियों ने गीता में घर अपना लिया। अतः गीता की प्रमाणिकता और संदेह होने से विद्वानों की दृष्टि में गीता भी एक विवाद का विषय बन गई है।

3. सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

स्वामी दयानन्द सरस्वती (ई॰स॰ 1824-1883) ने विश्व के सभी धर्मों, सम्प्रदायों, मतों, मज़हबों, रिलिजनों की पुस्तकों को पढ़, समझ, मन्थन कर 'सत्य क्या है, उसका प्रकाश' श्री देवेन्द्रनाथ

टैगोर (श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता) के कहने पर, तथा श्री बंकिम चन्द्र, श्री ईश्वर चन्द्र इत्यादि समाजसेवी महानुभावों के द्वारा साधारण व्यक्ति के लिए पुस्तक का महत्त्व सुझाने पर, **'सत्यार्थ प्रकाश'** का प्रथम प्रकाशन 1875 ई॰ में किया। ई॰ 1882 में 14 अध्यायों में दूसरा संशोधित संस्करण भी छपा। अब यह ग्रंथ देशी तथा विदेशी सभी भाषाओं में मिलता है।

दयानन्द बचपन में सच्चे शिव की खोज में घर से निकले थे। अतः जो लोग यथार्थ रूप से 'सच्चे शिव' अर्थात् सच्चे ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। जो जिज्ञासु विश्व के सभी धर्मों, मतों, मज़हबों, रिलिजनों, जैसे हिन्दू, जैन, बौद्ध, चार्वाक, वाममार्गी, ईसाई, मुस्लिम आदि का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं, उनके लिए यह एक अद्‌भुत शोधग्रंथ है। हर हिन्दू की आँखें खोलनेवाली, उसे जागृत करनेवाली एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। प्रत्येक मानव के लिए, चाहे कोई भी धर्म, मत अथवा मज़हब और रिलिजन का हो, उसे 'आदर्श मनुष्य' बनाने के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती की संसार को एक अति उत्तम देन है।

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' चारों वेदों के भाष्य की भूमिका के रूप में लिखा गया ग्रन्थ है। महीधर, उव्वट, सायण आदि विद्वानों ने वेदों की व्याख्या तंत्र, पुराण व वाममार्ग से प्रभावित होकर की थी। इस अनर्गल व मिथ्या व्याख्या की प्रतिक्रिया-स्वरूप ही भारत में नास्तिक दर्शन—चार्वाक और बौद्ध व जैन जैसे अवैदिक मतों का प्रादुर्भाव हुआ। महीधर, सायण आदि के दूषित भाष्य के कारण ही इस समाज में गोमेध, अश्वमेध, नरमेध जैसे शब्दों का वास्तविक अर्थ लुप्त हो गया एवं चार्वाक व वाममार्ग से प्रभावित होकर समाज में विकृतियाँ उत्पन्न हो गईं। यूरोप के कीथ (Keith) तथा अन्य विद्वान् भी महीधर, सायण आदि की वेदों की व्याख्या के कारण, वेदों का सही अर्थ नहीं समझ पाए।

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के विषय में प्रमाण देते हुए निम्नलिखित सिद्धांत प्रतुत किए हैं :

1. वेद अपौरुषेय अर्थात् ईश्वर द्वारा प्रकट किए गए हैं, मनुष्य द्वारा रचित नहीं हैं, ऋग्वेद का निम्न मंत्र इसका प्रमाण है–

   तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
   छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्माद् अजायत॥

   –ऋग्वेद 10.90.9

   उस परमात्मा से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद प्रकट हुए।
2. वेद सभी ज्ञान–विज्ञान आदि विद्याओं के मूल, पूर्ण ग्रन्थ हैं।
3. वेद में प्रयुक्त वैदिक संस्कृत–शब्दों को व्युत्पत्तिपरक (derived from roots) बताया, सामान्य संस्कृत–शब्दों की तरह रूढ़ि शब्द नहीं हैं, जैसे 'अहि' शब्द का सामान्य संस्कृत में अर्थ 'सर्प' होता है, परन्तु वैदिक संस्कृत में इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ 'मेघ' है।
4. वेद–मंत्रों के तीन प्रकार के अर्थ हैं : आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक (आधियाज्ञिक)।
5. संहिता–ग्रन्थों में किसी प्रकार के ऐतिहासिक पात्रों या घटनाओं का वर्णन नहीं है। जो शब्द अथवा नाम ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं, वे केवल प्रतीकात्मक हैं, उदाहरण के तौर पर 'वृत्र' शब्द का अर्थ ऐतिहासिक रूप से असुर होता है, पर वैदिक अर्थ 'मेघ' है।
6. मंत्र और सूक्त का जो कथित देवता है, उसका तात्पर्य मंत्र और सूक्त के विषय–मात्र से है। वेदों के व्युत्पत्तिपरक भाष्य करने से अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि शब्द परमात्मा के गुणों/अर्थ को प्रकट करते हैं, इससे 'अनेक ईश्वरवाद'

(Polytheism) जैसी भ्रान्त धारणाएँ समाप्त हो गईं।

7. सायण, महीधर तथा कीथ आदि की भ्रांतियों और अशुद्धियों का निराकरण कर ज्ञानी लोगों को विशुद्ध ज्ञान उपलब्ध कराने का श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को है, जिन्होंने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' ग्रन्थ लिखा। इस कारण यह ग्रन्थ बहुत मान्यता रखता है। इस भूमिका-ग्रन्थ के बाद उन्होंने ऋग्वेद व यजुर्वेद का भाष्य भी लिखा।

7

विकृत कालक्रम

प्रत्येक प्रकार की अशुद्धि दो कारणों से ही प्रतिपादित होती है—अज्ञानवश अथवा सोची-समझी रणनीति द्वारा। अज्ञानता से प्रेरित अशुद्धि को शिक्षा, समझदारी, सूझ-बूझ और उचित सामाजिक हस्तक्षेप द्वारा शुद्ध किया जा सकता है, लेकिन सोची-समझी रणनीति द्वारा प्रतिपादित अशुद्धि लगातार फलती-फूलती रहती है, क्योंकि अहितकारी तत्त्व उन्हें प्रचारित-प्रसारित कर स्थायी बना देते हैं। इस प्रकार से ये अशुद्धियाँ राष्ट्रीय जीवन का अंग बन जाती हैं। श्रेष्ठ विद्वान् भी, जो कि ऐसे समाज में पले हों जहाँ अशुद्धियाँ मान्य हों, इन मस्तिष्क-प्रदूषक सूक्ष्म तत्त्वों को नहीं ढूँढ पाते। केवल दुर्लभ, आप्त और समर्पित विद्वान् ही ऐसी अशुद्धियों का पता लगा सकते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक कर्त्तव्य बनता है कि वह इन अशुद्धियों को सही करने के लिए तथा वास्तविक तथ्यों को ऊपर लाने के लिए इस कार्यक्षेत्र में आगे बढ़े।

अमेरिका के उच्च विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले कई महत्त्वपूर्ण गलत तथ्यों में से कुछ का वर्णन यहाँ किया जा रहा है। जार्जिया उच्च विद्यालय की दसवीं की विश्वसाहित्य पाठ्यपुस्तक में से उद्धृत कुछ परिभाषाएँ नीचे दी गई हैं। यह पाठ्यपुस्तक और इस प्रकार की अन्य पाठ्यपुस्तकें सम्पूर्ण पाश्चात्य सभ्यता के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं। इस पाठ्यपुस्तक में प्रतिपादित किए गए कुछ तथ्य इस प्रकार हैं :

1. 'आर्यों' को एक जाति माना गया है और इसे भारतवर्ष

पर आक्रमणकारियों के रूप में चित्रित किया गया है।

2. आक्रमण लगभग 1500 ई॰पू॰ में किया बताया गया।
3. वैदिक काल 1500–500 ई॰पू॰।
4. ऋग्वेद की रचना 1000 ई॰पू॰।
5. महाभारत का समय 400 ई॰पूर्व॰ से 400 ई॰ पश्चात्।
6. रामायण–काल 200 ई॰पूर्व॰ से 200 ई॰ पश्चात्।
7. व्यास का अर्थ संग्रहकर्त्ता अथवा नियोजक।
8. कृष्ण को एक पंथ के नेता के रूप में दर्शाया गया है।
9. पाठ्य–पुस्तक में लेख की टिप्पणी 'मानवरूपी भगवान्'।
10. पौराणिक कथाओं को विशुद्ध अलंकारी विचारों और भावनाओं के विपरीत केवल शब्दार्थ रूप में ही लिया गया है।

पाठ्यसामग्री निष्पक्ष दृष्टि से सर्वथा गलत है। सामाजिक विज्ञान के इन विचारों के विरोधी पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सामग्री तथा अन्य प्रतिरोधी तथ्यों को इसमें शामिल नहीं किया गया है। अतएव, उपर्युक्त पुस्तक के लेखकों की टिप्पणियाँ और व्याख्याएँ एकपक्षीय, अशुद्ध और इतिहास-विरुद्ध हैं। आश्चर्यजनक, लेकिन सत्य यह है कि विश्व के सर्वाधिक स्थिर लोकतांत्रिक राष्ट्र में इन पुस्तकों को विपणन, विक्रय तथा राजनीति व कूटनीतिक नीतियों को ध्यान में रखकर मान्यता देने हेतु लिखा गया है, किन्तु तथ्यों को किसी भी चतुराई से छुपाया नहीं रखा जा सकता।

तथ्य इस प्रकार हैं :

1. आस्ट्रिया और जर्मनी जैसे कुछ देशों ने पश्चिम की भाँति 'आर्य' शब्द का दुरुपयोग किया है। संस्कृत भाषा में आर्य का अर्थ श्रेष्ठ होता है और इस शब्द का अभिप्राय किसी जाति, पंथ, मत अथवा वर्ण से नहीं है। यह गुणात्मक है और व्यक्ति के गुणों को इंगित करता है। विशुद्ध नामांकन आर्यन नहीं, आर्य है।

योगी अरविन्द के अनुसार 'आर्य शब्द सुव्यवस्थित जीवन की एक विशेष नैतिक और सामाजिक नियमबद्धता, साहस, दृढ़ता, पवित्रता, मानवता, दयाभाव, निर्बलों का संरक्षण, स्वतन्त्रता, सामाजिक कर्त्तव्यनिष्ठा, जिज्ञासु, बुद्धिमान् और विद्वानों के प्रति आदर-भाव और सामाजिक परिपूर्णता को व्यक्त करता है। किसी भी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं जिसका इतिहास इससे अधिक महान् रहा हो।

आर्यों ने कभी भी भारतवर्ष पर आक्रमण नहीं किया। वे हिमालय-क्षेत्र तथा हिमालय से निकली नदियों के किनारों तथा तटों पर बसे भारत के मूल निवासी हैं। लाखों वर्ष पूर्व हिमालय से उत्पन्न तथा हिमालय से निकली नदियों में 'विस्तृत सरस्वती नदी' के सूख जाने पर आर्य सरस्वती-क्षेत्र से वर्तमान अफगानिस्तान (गन्धार) होते हुए पश्चिम की ओर चले गए। यह सब-कुछ उपग्रह- तकनीक, सांस्कृतिक, मानव-शरीररचनाशास्त्र और भारतीय ज्ञान-विषयक शोधों द्वारा भली-भाँति अन्वेषित किया जा चुका है। अभी हाल ही में सन् 1996 में 'विश्व वैदिक अध्ययन संस्था' (The World Association for Vedic Studies) ने, 1996 में, 'पुन: सिंधु-सरस्वती युग और प्राचीन भारतवर्ष की यात्रा' विषय पर एटलाण्टा, जार्जिया, अमेरिका में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया था। इस सम्मेलन में सांस्कृतिक ऐन्थ्रोपॉलोजी, पुरातत्त्वविज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषा, धर्म और विभिन्न विज्ञानों के सुप्रसिद्ध आचार्यों एवं विद्वानों ने भाग लिया। इन विद्वानों ने, जिनकी संख्या तीन सौ से अधिक थी, निष्कर्ष निकाला कि 'हाल में पुरातत्त्व-खोजों द्वारा यह पूर्ण रूप से स्थापित किया जा चुका है कि भारतीय उपमहाद्वीप पर सभ्यता का उद्भव 5000 ई॰पू॰ से अस्तित्व में रहा, जो कि 1000 ई॰पू॰ तक अनवरत रूप से चलता रहा। आर्यों के आक्रमण-सिद्धान्त की पुष्टि में किसी भी प्रकार का कोई समर्थन नहीं मिलता।' [17]

कुछ ही समय पूर्व (ई॰ सन् 1998) डॉ॰ राजाराम और डॉ॰ नटवर झा जिन्हें सिंधु-सरस्वती के मैदानों में हुई हड़प्पा-खुदाई से प्राप्त 2000 मोहरों की सफलतापूर्वक जाँच करने का सुयश प्राप्त हुआ है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के डॉ॰ रिचर्ड मेडोज, जो कि 'हड़प्पा पुरातत्त्व अनुसंधान प्रोजेक्ट' के निदेशक हैं, ने हड़प्पा-सभ्यता के बर्तनों के नमूनों के काल को 3500 ई॰पू॰ बताया है। मेडोज ने इससे आगे कहा कि मिट्टी के बर्तनों पर पाए गए सिन्धु-अभिलेख अन्य सभी प्राप्त अभिलेखों से पुराने हैं। डॉ॰ राजाराम, जो नासा (नेशनल एरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन : अमेरिकन राष्ट्रीय हवाई और अन्तरिक्ष प्रबंधन) के विशेषज्ञ एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता के भी विशेषज्ञ और परामर्शदाता रहे हैं, उन्होंने मिट्टी के बर्तनों पर पाए गए अभिलेखों को पढ़ने में सफलता प्राप्त की है। उन्होंने इन अभिलेखों को 'इला वरतते वर' पढ़ा है, इसका अर्थ यह बताया है कि 'सरस्वती नदी समृद्ध भूमि को चारों ओर से घेरे हुए थी।' डॉ॰ राजाराम ने मई 1999 में आगे कहा कि 'यदि ऋग्वैदिक अवधारणाएँ 3500 ई॰पू॰ से पहले ही अस्तित्व में थीं तो विद्वानों को 'मेसोपोटामिया को सभ्यता का पालना' बतानेवाली भ्रांत धारणाओं, तथा अन्य भारतीय इतिहास के भ्रांत विचार जैसे 'आर्यों द्वारा आक्रमण सिद्धांत' पर पुनः विचार करना होगा। 'आर्यों द्वारा आक्रमण' के झूठे आवरण को उपर्युक्त ही असत्य सिद्ध किया जा चुका है। [19]

डॉ॰ जोनाथन मार्क केनोयेर, जो कि विसकोनसिन-मेडिसन (Wisconsin-Madison, USA) विश्वविद्यालय के 'एलवेहजीम (Elvehjiem) कला संग्राहालय' में मानवविज्ञान के प्रोफेसर तथा प्रबंधकर्त्ता हैं, ने 'हड़प्पा पुरातन अभिलेख और नई खोजें (1999)' पर अमेरिकन सेन्टर इस्लामाबाद, पाकिस्तान में अपना व्याख्यान देते समय उपर्युक्त विचारों को पुनः बलपूर्वक व्यक्त किया। प्रो॰ केनोयेर ने कहा, 'हमें दक्षिण एशियाई उद्‌भव-स्थली को

प्रतिस्थापित करनेवाले स्वस्ति के चिह्न प्राप्त हुए हैं।' प्रो० केनोयर ने जोर देकर आगे कहा कि हमें हड़प्पा-स्थली पर ऐसी सामग्री मिली है, जिसका उद्भव मिश्र की सभ्यता में हुए भारोत्तोलन सामग्री के उद्भव से पूर्व सिन्धु घाटी में हुआ था। [20]

'राष्ट्रीय भूभौतिकी अनुसंधान संस्थान हैदराबाद, भारत' के भूतपूर्व प्रो० डॉ० जे०जी० नेगी ने अप्रैल 1999 में कहा कि पुरातत्त्व और पुरातन जलवायु-विज्ञान के अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि भूमि की ऊपरी परतों में हुई हलचल से, प्राचीन भारतवर्ष में सिंधु-सरस्वती का बहाव बदलने तथा जल विलुप्त होने से सिंधु घाटी की सभ्यता की मोहनजोदड़ो बस्तियों का विनाश हुआ था। उन बस्तियों का विनाश 'आर्यों के आक्रमण' जैसी भ्रान्त धारणाओं से नहीं हुआ था। [17]

कई आधुनिक भारतीय विद्वानों ने जैसे कि महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी रामतीर्थ, योगी अरविन्द और नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शोध कर यह निष्कर्ष निकाला है कि आर्यों का मूल निवास-स्थान हिमालय और नदी के तटों पर था। [1-4, 6-8, 10-12]

यह बताना यथोचित रहेगा कि 10 अपैल, 1866 को एक बहुत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना घटित हुई थी। लंदन, इंग्लैण्ड में एक गुप्त सभा का आयोजन किया गया था, जहाँ पर 'आर्यों द्वारा भारत पर आक्रमण के सिद्धांत को घड़ने के लिए' एक षड्यन्त्र की रचना की गई। इस सिद्धांत का उद्देश्य सत्य को छिपाना था, 'ताकि भारतीय यह नहीं कह सकें कि अंग्रेज विदेशी थे। चूँकि भारत पर आरम्भ से विदेशियों का शासन रहा है, अतः भारत ईसाइयों के उदार शासन को भी निभा सकता है। 'एक चतुर पादरी एडवर्ड थॉमस ने लॉर्ड स्टॅगफर्ड की अध्यक्षता में इस झूठे सिद्धांत का प्रतिपादन किया।' [३] यह अपने समय की सबसे बड़ी कूटनीतिक चाल थी। तब से अंग्रेजों द्वारा इसे भारतीय इतिहास के

पाठ्यक्रम का एक भाग बना दिया गया।

2. वैदिक सभ्यता के उद्‌भव से सन् 1998 ई॰ तक 1.96 अरब वर्ष बीत चुके हैं (4, 10-12)। कार्नेल विश्वविद्यालय में खगोल और अन्तरिक्ष विज्ञान के प्रोफेसर कार्ल सेगन ने पृथिवी के जीवन को 4.6 अरब वर्ष तथा सूर्य के जीवन को पाँच अरब वर्ष निर्धारित किया है (15)। इसलिए प्राचीन वैदिक ऋषियों द्वारा दिए गए आंकड़ों से किसी को चौंकने की कोई आवश्यकता नहीं है।

3. सभी हिन्दू–जैन, बौद्ध और सिक्ख जानते हैं कि रामायण-काल का समय महाभारत-काल से पूर्व है (देखिए प्रश्न 7) और इसके विपरीत नहीं है जैसा कि जार्जिया उच्च विद्यालय की दसवीं की विश्व-साहित्य की पाठ्य-पुस्तक में निर्दिष्ट किया गया है। **यह अशुद्धि केवल जार्जिया तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि इसे सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत में पढ़ाया जाता है।** रामायण काल–त्रेतायुग, महाभारत काल द्वापरयुग से लाखों वर्ष पूर्व हुआ था। महाभारत को द्वापरयुग में लिखा गया था। श्रीकृष्ण का निर्वाण, भौतिक शरीर का त्याग, द्वापरयुग के अन्त तथा वर्तमान कलियुग की शुरुआत को प्रकट करता है। तब से सन् 2003 ई॰ तक 5,105 वर्ष बीत चुके हैं (8, 10-13)।

4. जार्जिया उच्च विद्यालय की दसवीं कक्षा की विश्व-साहित्य की पाठ्यपुस्तक के लेखक के अनुसार व्यास का अर्थ संग्रहकर्त्ता अथवा व्यवस्थापक होता है, जबकि वेदव्यास उस ऋषि का नाम है जिसने महाभारत–युद्ध की ऐतिहासिक घटनाओं को लिखा था (10-13)।

5. यह सत्य है कि श्रीकृष्ण ने कभी किसी नए पंथ को नहीं चलाया। श्रीकृष्ण के भक्तों को वैष्णव कहा जाता है। वैष्णव धर्म हिन्दुओं का प्रमुख अंग है। वैष्णव किसी भी प्रकार का Cult अथवा किसी विशेष गिरोह का नाम नहीं है (9, 14)।

संसार के कुल एक अरब संख्या वाले हिन्दुओं में से 50 करोड़ हिन्दू वैष्णव सम्प्रदाय अथवा हिन्दू धर्म के मुख्य अंग से सम्बन्धित हैं। सुप्रसिद्ध महानुभाव महात्मा गांधी भी एक वैष्णव थे। जार्जिया उच्च विद्यालय की दसवीं की विश्व-साहित्य की पाठ्यपुस्तक के लेखक ने स्पष्ट रूप से वैष्णव हिन्दुओं के लिए Cult अथवा किसी विशेष गिरोह का नाम देकर हिन्दू इतिहास को अपमानित करने का प्रयास किया है। इन लेखकों ने विशेष गिरोह के नाम 'जिस जोन्स', 'डेविड कोरेश' को 'Cult' अथवा 'विशेष गिरोह' की भाँति नाम देकर, वैष्णव सम्प्रदाय को भी 'कृष्ण Cult' अथवा 'कृष्ण गिरोह' के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। समकालिक अमेरिकन समाज में 'Cult अथवा किसी विशेष गिरोह' शब्द को भद्दे अर्थों में प्रयोग किया जाता है। शाब्दिक रूप से 'Cult अथवा किसी विशेष गिरोह' शब्द का प्रयोग बहुत ही संकुचित झक्की गिरोह की विचारधारा को इंगित करने के लिए किया जाता है। प्रत्यक्ष रूप से ये लेखक समाजशास्त्र-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं से अनभिज्ञ हैं। पाठ्यपुस्तक के लेखक 'Cult अथवा किसी विशेष गिरोह' शब्द का, 'धार्मिक पंथ' अथवा अलंकरण, धर्म, मत-मतान्तरों में अन्तर समझने में असफल रहे हैं (5)। इन बुद्धिजीवियों का जन्म और पालन-पोषण अमेरिका में हुआ है। इन बुद्धिजीवियों को वर्तमान अमेरिकन समुदायों में 'Cult अथवा किसी विशेष गिरोह' शब्द की परिभाषा के अपमान-जनक प्रभाव के बारे में जागरूक होना चाहिए। या तो ये लेखक अनभिज्ञ हैं अथवा ये कुछ दीर्घकालिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु योजनाबद्ध दूरगामी रणनीति के तहत किशोर और किशोरियों को विकृत इतिहास में विश्वास बनाने के लिए उनके दिमाग को अति सूक्ष्मता से प्रदूषित कर रहे हैं। जन-साधारण का विश्वास है कि यह सब सोची-समझी रणनीति से प्रेरित है।

'हरे कृष्ण' भक्तजनों को 'Cult अथवा किसी विशेष गिरोह'

के अनुगामी के रूप में दर्शाया गया है। 'हरे कृष्ण' भक्तजनों को पिछले 5000 वर्षों के दौरान वैष्णव मानने की उचित परम्परा के विपरीत 'Cult अथवा किसी विशेष गिरोह' का अनुगामी दर्शाया गया है। [14] A.P.A. (अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन–अमेरिकन मानसिक चिकित्सा संगठन) द्वारा 'हरे कृष्ण' को एक 'Cult अथवा किसी विशेष गिरोह' शब्द के रूप में चित्रित किया गया। A.P.A./ए॰पी॰ए॰ की इस अशुद्धि को दूर करवाने में इस पुस्तक के लेखक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही। A.P.A./ए॰पी॰ए॰ अब 'हरे कृष्ण' को प्रकट करने के लिए 'Cult अथवा किसी विशेष गिरोह' शब्द का प्रयोग नहीं करती, बल्कि A.P.A./ए॰पी॰ए॰ 'हरे कृष्ण भक्तजनों को' हिन्दू धर्म के वैष्णव-पंथ का एक अंग मानती है, A.P.A./ए॰पी॰ए॰ ने अपनी गलती के लिए क्षमा-प्रार्थना भी की है।

6. पाठ्यपुस्तकों ने गीता के उन उपदेशों की अवहेलना की है, जहाँ पर श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म तथा लक्ष्य-प्राप्ति के लिए समर्पित और निष्ठावान् बने रहने को कहा है। [9] इसके अतिरिक्त पाठ्यपुस्तकों के लेखकों ने श्रीकृष्ण को एक 'प्रेमी या आशिक' के रूप में चित्रित कर हिन्दू समाज को एक भद्दे रूप में प्रकट किया है। उन्होंने लिखा कि, 'कृष्ण के आकर्षक व्यक्तित्व तथा मनोहारी रूप-रंग ने उनको औरतों का चहेता बना दिया। वास्तविकता यह थी कि विवाहित औरतों ने भी श्रीकृष्ण की बाँसुरी का अनुसरण करने के लिए अपना घर छोड़ दिया।' यह लिखकर पाठ्यपुस्तकों के लेखकों ने विवाहित हिन्दू औरतों के पतिव्रता धर्म की पवित्रता का घिनौना मजाक उड़ाया है।

7. प्राचीन यात्रियों के वृत्तान्तों और 400 ई॰पू॰ में भारतीय महाराजा विक्रमादित्य के यहाँ यूनानी राजदूत मैगस्थनीज द्वारा किए गए विभिन्न संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन का कहीं लेशमात्र वर्णन भी नहीं दिया गया है। मैगस्थनीज की पुस्तिक 'इण्डिका'

उस समय की भारतीय सभ्यता का एक जीता-जागता प्रमाण है। [9] 'इण्डिका' में उस समय चल रहे किसी भी युद्ध का वर्णन नहीं मिलता, न तो राम के युद्ध अर्थात् रामायण काल का और न ही कृष्ण के युद्ध अर्थात् महाभारत का।

8. अमेरिकन पाठ्यपुस्तक के लेखकों की टिप्पणियाँ जैसे कि 'मानव रूपी भगवान्', अवाछित हैं। अमेरिकन पाठ्यपुस्तक के लेखक, महर्षि दयानन्द सरस्वती (1824-1883) की अमर कृति 'सत्यार्थ प्रकाश' 1882 से भी अनभिज्ञ रहे हैं। इस कृति में संसार के मुख्य 'मतों', 'पंथों', 'धर्मों' का तर्कसंगत विश्लेषण और क्रमबद्ध तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस कृति का संसार की लगभग प्रत्येक भाषा में अनुवाद हो चुका है और अंग्रेजी भाषा में इस कृति का 'लाइट ऑफ ट्रुथ' के नाम से प्रकाशन हुआ है [12]। इसमें स्पष्ट रूप से और बड़े जोरदार ढंग से 'मानव रूपी भगवान्-अवतारवाद' का खण्डन किया है। इसमें एक अन्य मत/रिलिजन-ईसाई मत की मुख्य मान्यता, विश्वास/धारणा 'भगवान् के पुत्र' की पूजा का भी विरोध किया गया है। हिन्दू पुनर्जागरण आन्दोलन के पितामह महर्षि दयानन्द सरस्वती की अद्वितीय और निष्पक्ष साहित्यिक कृति 'सत्यार्थ प्रकाश' में सत्य की खोज के प्रति उनकी महान् उत्कण्ठा प्रदर्शित होती है। परन्तु उपर्युक्त भ्रांति-पूर्ण लेखों में, सत्यता प्रकट करने के लिए निष्पक्षता का नितान्त अभाव ही झलकता है।

9. प्राचीन ग्रन्थ, पुराणों [13] के प्रतिसन्दर्भों की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। रामायण और महाभारत काल को निर्धारित करते समय थाई लोगों की विस्तृत सांस्कृतिक एन्थ्रोपॉलोजी के अध्ययनों और बाली, इण्डोनेशियाई लोगों की संस्कृति तथा उनके इतिहास की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया।

10. विश्व-स्तर पर 'एक अरब संख्या से भी ज्यादा संख्या वाले हिन्दुओं' का प्रतिनिधित्व करनेवाले और सात विभिन्न राष्ट्रों

में प्रकाशित होने वाली मासिक समाचार-पत्रिका 'हिन्दुइज़्म टुडे-आज का हिन्दू धर्म' द्वारा हाल ही (दिसम्बर, 1994) में प्रकाशित 'कालचक्र लेख' को भी जार्जिया उच्च विद्यालय की दसवीं की विश्व-साहित्य पाठ्यपुस्तक में सन्दर्भ नहीं दिया गया। [8]

11. आर॰सी॰ मजुमदार द्वारा रचित पुस्तिक 'द एनसिएंट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'/' भारत का प्राचीन इतिहास' [16] में महाभारत का काल 3102 ई॰पू॰ बताया गया है। यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा स्वीकृत है और भारतीय विश्वविद्यालय इसे एक प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथ तथा शंका-समाधान के स्रोत के रूप में प्रयोग करते हैं। इसमें लिखित बहुत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों की पूर्ण-रूप से अवहेलना कर दी गई है।

12. विश्व के एक अरब संख्या से भी ज्यादा संख्या वाले हिन्दू लोग, जार्जिया उच्च विद्यालय की दसवीं की विश्वसाहित्य की पाठ्यपुस्तक 'विश्व साहित्य पुस्तक' के अन्तर्गत भारतीय साहित्य अध्याय 'कालक्रम और ऐतिहासिक क्रमबद्धता' में दी गई व्याख्याओं की प्रामाणिकता को चुनौती देते हैं। यह पुस्तक पूरे अमेरिका में पढ़ाई जाती है और यह पाठ्यपुस्तक हाल्ट, राइनहार्ट और विंस्टन इनकॉर्पोरेशन द्वारा प्रकाशित की गई है। कृपया इस पुस्तक के प्रकाशक को इन अशुद्धियों को ठीक करने हेतु पत्र लिखें।

पता इस प्रकार है :

Harcourt Brace, Customer Service,
6277 Sea Harbour Dirve,
Orlando, Florida, 32887, USA.

इस प्रकार का अशुद्ध 'विश्व साहित्य' सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत् में पढ़ाया जाता है। यह केवल अकेली घटना नहीं है। इन बुद्धिजीवियों की सुनियोजित नीति है-'किसी भी ऐसी विचार

धारा को जो इनकी धारणा के अनुरूप न हो, अविश्वसनीय बना कर, अपमानित करना है।'

वास्तव में 'विश्व साहित्य' को, किसी भी अन्य वैज्ञानिक कृति की भाँति, जिसमें तथ्यों, विरोधी विचारधाराओं और सिद्धांतों को निष्पक्षता से प्रस्तुत किया जाता है, सही करने का समय आ गया है। विश्वसाहित्य की पाठ्यपुस्तक के लेखकों ने, स्पष्ट रूप से, विज्ञान और पुरातत्त्व की खोजों की उपेक्षा की है। इन लेखकों ने, भारतीय और अन्य विद्वानों के युक्तिसंगत विचारों की भी अवहेलना की है। अतएव, इनके लेख अशुद्ध, पक्षपातपूर्ण और अप्रामाणिक हैं, भारतीय जनों को अमान्य हैं। अत: महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों की पूर्ण रूप से निष्पक्षता से प्रस्तुत करने हेतु लिखें :

State Superintendent of Schools, 2054 Twin Towers East Atlanta, Georgia 3034, USA.

शैक्षिक रूप से, इन अशुद्धियों का विद्यालयों और महाविद्यालयों में पढ़ रहे हमारे बच्चों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। हमारे बच्चों को सही कालक्रम ज्ञात है, फिर भी अध्यापक उनके अंकों को काट ही लेते हैं, क्योंकि अध्यापकों को वास्तविकता का ज्ञान नहीं है और शिक्षक पाठ्यपुस्तिका के अनुरूप ही पढ़ाते हैं। विद्यालयों और महाविद्यालयों में ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए शैक्षिक, मानव-शरीररचनाशास्त्र, पुरातत्त्व विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और वैज्ञानिक दृष्टि से अवधारणाओं, अन्तर्विरोधों, प्रतिरोधों और सिद्धांतों की तथ्यों के आधार पर पुन: व्याख्या की जानी चाहिए।

स्रोतसूची–

1. योगी अरविन्द, आर्य, भाग 1, 1963.
2. डेविड फ्राली, गोड्ज, सेजिज, एण्ड किंग्स : एनसिएंट सीक्रेट्स ऑफ एनसिएंट वर्ल्ड सिविलाइजेशन, पैसेज

प्रैस, उटाह 1990.

3. स्वामी ज्योतिर्मयानन्द, 'विवेकानन्द–हिज गॉस्पल ऑफ मैन-मेकिंग विद ए गारलैण्ड ऑफ ट्रिब्यून, एण्ड क्रॉनिकल ऑफ हिज लाइफ एण्ड टाइम विद पिक्चर्स।' एम॰वी॰ नायडू स्ट्रीट, पंचवटी, चेटपुट, मद्रास-600031, इण्डिया, अक्तूबर 1986.
4. दीनबन्धु चन्दोरा, एम॰डी॰, हिन्दू धर्म वैदिक लाइट, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, भारत, नवम्बर 1981.
5. आई॰ रॉबर्टसन: सोशियालॉजी, थर्ड एडीशन, न्यूयार्क, 1987.
6. स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, 'ओरिजिनल होम ऑफ आर्यन्स' आर्यों का मूल निवास, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, जुलाई 1987.
7. डेविड फ्राले, दॅ मिथ ऑफ आर्यन इनवेजन ऑफ इण्डिया/भारत पर आर्यों के आक्रमण की भ्रान्ति, वाइस ऑफ इण्डिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994.
8. टाइम-लाइन, हिन्दुइज़्म टुडे, हिमालय अकादमी, हवाई, यू॰एस॰ए॰, दिसम्बर 1994.
9. चार्ल्स आर॰ बुक्स, द हरे कृष्णाज इन इण्डिया, प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रैस, एन॰जे॰ 1989.
10. के॰एन॰ कपूर, एज ऑफ महाभारत वार/महाभारत युद्ध का काल, वैदिक लाइट, नई दिल्ली, अप्रैल 1871.
11. के॰एन॰ कपूर, डॉन ऑफ इण्डियन हिस्ट्री/भारतीय इतिहास का प्रभात, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, इण्डिया, अप्रैल 1990.
12. महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, 1884.

13. परमहंस जगदीश्वरानन्द सरस्वती, श्रीमद् वाल्मीकि रामायण, गोविन्दराम हासानंद प्रकाशक, नई सड़क, दिल्ली-6, 1998.
14. 'वैस्ट्रन साइकियाट्रिस्ट', हिन्दुइज़्म टुडे, हिमालय अकादमी, हवाई, यू.एस.ए., सितम्बर 1991.
15. सगन, कार्ल, कॉसमोस एण्ड पेल ब्ल्यू डाट, ए॰ डिविजन ऑफ ह्यूमैन फ्यूचर इन स्पेस, द कॉमनवैल्थ क्लब ऑफ केलिफोर्निया, सान फाँसिस्को, यू॰एस॰ए॰, वॉल्यूम 89, जनवरी 16, 1995.
16. मजुमदार, आर॰सी॰; ई॰टी॰एल॰, एन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, मैकमिलन, न्यूयार्क, यू॰एस॰ए॰, थर्ड एडीशन, 17/18, 1967.
17. जे॰सी॰ नेगी, 'इण्डस वैली सिविलाइजेशन डेस्ट्रॉएड बाई टेक्टानिक चेन्जेज', नेशनल जिओफिजिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट, हैदराबाद, इण्डियन एक्सप्रैस, प्रैस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, अप्रैल 5, 1999.
18. प्रोसीडिंग्स ऑफ 1996 इण्टरनेशनल कान्फ्रेंस ऑन 'रिविजिटिंग इण्डस-सरस्वती एज एण्ड एनसिएंट इण्डिया', शर्मा एण्ड घोष, वर्ल्ड एसोसिएशन फॉर वैदिक स्टडीज, अटलांटा, यू॰एस॰ए॰।
19. राजाराम तथा झा, 'वर्ल्ड्स ओलडेस्ट राइटिंग इन वैदिक'/ 'वेद विश्व की प्राचीनतम कृति है', द टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, गुरुवार, मई 13, 1999.
20. डॉ॰ जोनाथन मार्क केनोयर, ओलडेस्ट राइटिंग सिम्बल, इस्लामाबाद व्याख्यान, पाकिस्तान, मई 28, 1999, विस्कोनसिन, मेडिसन विश्वविद्यालय, यू॰एस॰ए॰।

कलाकार विनोद शर्मा द्वारा लेखक के निर्देशानुसार चित्रण



8

झलकियाँ वैदिक-सनातन-हिन्दू धर्म की

यूनियन गिरिजाघर, एटलाण्टा, जार्जिया, यू॰एस॰ए॰ में सिडनी मेकगील की अनुमति से लेखक डॉ॰ दीनबन्धु चन्दोरा द्वारा **संशोधित हिन्दू धर्म की झलकियाँ :**

1. विभिन्न नाम

1. **वैदिक धर्म :** प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित कर्त्तव्य और उपदेश जो वेदों में निहित हैं, उनको जीवन में उतारना वैदिक धर्म कहलाता है।
2. **सनातन धर्म :** जीवन, समाज, सृष्टि और ब्रह्माण्ड को चलानेवाले शाश्वत प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित उपदेशों का पालन करना सनातन धर्म है।
3. **हिन्दू धर्म :** हिन्दूकुश तथा हिमालय पर्वतों की शृंखला के इर्द-गिर्द, एवं उसके पूर्व और दक्षिण दिशा में रहने वाले लोग, जो आदिकाल से उपर्युक्त वैदिक धर्म के सनातन उपदेशों और कर्त्तव्यों का पालन करते आ रहे हैं, हिन्दू कहलाते हैं और इन उपदेशों पर आधारित 'धर्म' को हिन्दू धर्म कहा जाता है।

2. धर्म

'धर्म' संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है : व्यक्ति के स्वयं, परिवार, समाज, प्रकृति, के प्रति न्यायोचित कर्त्तव्य। व्यावहारिक दृष्टि से इसका अर्थ ऐसे कार्य करने से है, जो व्यापक स्तर पर समाज के लिए हितकारी हो। 'धर्म' शब्द का कोई

समानान्तर अंग्रेजी-अनुवाद नहीं है। सबसे निकट का अंग्रेजी भाषा का शब्द 'रिलिजन' है जो कि सामान्य रूप से 'धर्म' शब्द के बदले में प्रयोग किया जाता है।

'धर्म' शब्द 'मत-मज़हबों' और 'रिलिजन' का पर्यायवाची शब्द नहीं है।

3. पुरुषार्थ : हिन्दू धर्म का संदेश

व्यक्ति अपनी उन्नति के लिए न्यायोचित प्रयासों को अपनाने में स्वतंत्र है, और पुरुषार्थ द्वारा सफलता प्राप्त कर अपने भविष्य का निर्माण कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति में लक्ष्य प्राप्त करने की पूर्ण क्षमता होती है, तथा वह पुरुषार्थ के द्वारा अपनी उचित आवश्यकताएँ/अभिलाषाएँ पूर्ण कर सकता है।

हिन्दू धर्म का मुख्य संदेश : *प्रत्येक व्यक्ति स्वयं पुरुषार्थ द्वारा लक्ष्य प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है, अत: अन्य व्यक्ति/बिचौलिए की कोई आवश्यकता नहीं है।*

4. आवश्यकताएँ/अभिलाषाएँ : तृप्ति की दो मूलभूत कामनाएँ-

A. i. सुख अर्थात् काम इच्छाएँ।

ii. धन अर्थात् अर्थ।

काम अर्थात् इच्छाओं को धन द्वारा प्राप्त/पूर्ण किया जा सकता है।

सदाचार द्वारा संचित धन से स्थायी सम्पत्ति तथा लौकिक सफलताओं को प्राप्त किया जा सकता है। सदाचार द्वारा संचित धन 'धर्म को ध्यान में रखकर' ही अर्जित किया जाता है।

काम अर्थात् इच्छाओं की पूर्ण तृप्ति के बाद, इच्छाओं से इतना लगाव नहीं रहता, अत: उन्हें अपने वश में करने अर्थात् जीतने के प्रयत्न से अन्तत: व्यक्ति स्वयं संयम प्राप्त कर लेने की आवश्यकता समझता है, और अपने जीवन के इस मोड़ में व्यक्ति सन्मार्ग/सद्बुद्धि का सहारा लेता है, जिसे 'धर्म' कहते हैं।

B. iii. सद्बुद्धि से सद्-विचारों की प्राप्ति होती है। सदाचार और सेवा 'धर्म' के अन्तरंग अंग हैं। 'धर्म' मानव को बोध अथवा आत्मज्ञान द्वारा मोक्ष-प्राप्ति हेतु जागृत करता है।

iv. इच्छाओं से निवृत्त होने पर सभी बन्धनों से मानव मुक्त हो जाता है। इसी को साधारण भाषा में 'मोक्ष की प्राप्ति' कहते हैं।

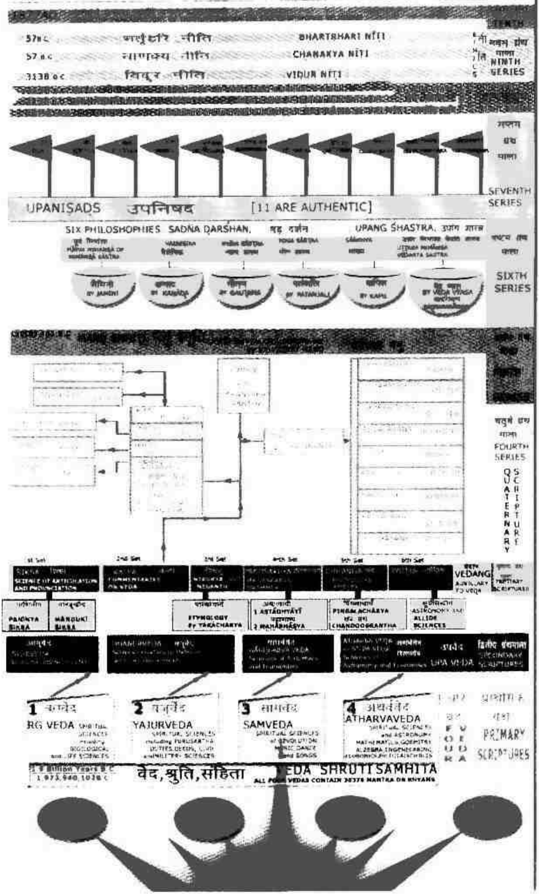
'काम, अर्थ, धर्म, और मोक्ष' की प्राप्ति न केवल सम्भव है बल्कि वेद में दिए गए मार्ग का अनुसरण करने से इन्हें वर्तमान जीवन में सुगमतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। धर्म से प्राप्त अर्थ, और अर्थ से क्रमशः एक के पश्चात् एक स्वतः सफलतापूर्वक प्राप्त होते रहते हैं, कारण जीवन का आधार 'धर्म' है, इनका सही क्रम भी 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' है।

5. आत्मा

प्रत्येक व्यक्ति अथवा प्राणी के अन्दर एक अनंत प्रकाश-पुंज का केन्द्र-**'आत्मा'** है। प्रत्येक व्यक्ति को 'प्रकाश-पुंज आत्मा' का भान तथा 'परम चेतन ब्रह्म/परमेश्वर' जो सृष्टिकर्त्ता और विश्व-नियंत्रक है, उनको जानने के लिए सतत मनन करने की अति आवश्यकता है, अतः निम्नलिखित गूढ़ विचारों पर अनुभूति करें :

1. 'अनंत प्रकाश-पुंज के केन्द्र' का बोध अथवा ज्ञान प्राप्त करने हेतु चित्त की वृत्तियों को रोकना, स्वार्थ-परायणता से लोट-पोट अज्ञानता और अहंकार का जो आवरण है, उसको हटाना अत्यन्त आवश्यक है।
2. प्रकृति के सच्चे नियमों की अनुभूति करना ही स्वयं को पहचानना है। इसी आत्म-ज्ञान से 'मुक्ति-मार्ग' का ज्ञान होता है। इसी आत्म-ज्ञान को 'पतंजलि के अष्टांग योग मार्ग' द्वारा इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है।

आर्य (वैदिक–सनातन) ग्रंथ माला क्रमांक
EXPANSION OF ĀRŚA [*VEDIC-SANĀTAN*] SCRIPTURE



6. योग के आठ अंग

1. **यम** : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।
2. **नियम** : शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान।
3. **आसन** : स्थिर सुखपूर्वक बैठना।
4. **प्राणायाम** : श्वास-नि:श्वास को रोकना।
5. **प्रत्याहार** : सांसारिक विषयों से मन को हटाना।
6. **धारणा** : मन को एक बिन्दु पर भौंहों के मध्य केन्द्रित करना।
7. **ध्यान** : मन को विचारशून्य बनाना।
8. **समाधि** : परमात्मा की उपस्थिति का बोध।

7. योग के मार्गों पर आचरण जीवन के निम्नलिखित चार आश्रमों में किया जा सकता है—

1. **ब्रह्मचर्य आश्रम** : प्रथम आश्रम, विद्यार्थी जीवन, 25 वर्ष,
2. **गृहस्थ आश्रम** : द्वितीय आश्रम, गृहस्थ जीवन, 25 से 50 वर्ष,
3. **वानप्रस्थ आश्रम** : तृतीय आश्रम, सेवा-निवृत्ति की योजना, और जीवन के लक्ष्यों को पूर्ण करने की अवस्था, 50 से 75 वर्ष,
4. **संन्यास आश्रम** : चतुर्थ और अन्तिम आश्रम, परम शान्ति की प्राप्ति के लिए समाज की नि:स्वार्थ सेवा, पूर्ण मोहभंग और समस्त सांसारिक त्याग, 75 से 100 वर्ष।

8. धार्मिक ग्रंथ

अ . मूल धार्मिक ग्रंथ : वेद

उपर्युक्त सभी व्याख्याओं का आधार वेद हैं। वेद का अर्थ

'ज्ञान' है। वेद की अनुभूति सृष्टि–रचना के आरम्भ में चार परम समाधिस्थ ऋषियों को हुई थी। यह वैदिक ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मौखिक उच्चारण (पाठ) द्वारा प्राप्त होता रहा। मौखिक उच्चारण (पाठ) की प्रक्रिया को श्रवण और वेदों को श्रुति कहा जाता है।

i. ऋग्वेद की अनुभूति **'अग्नि'** ऋषि को हुई थी।

ii. यजुर्वेद की अनुभूति **'वायु'** ऋषि को हुई थी।

iii. सामवेद की अनुभूति **'आदित्य'** ऋषि को हुई थी।

iv. अथर्ववेद की अनुभूति **'अंगिरा'** ऋषि को हुई थी।

चार वेदों के 20,349 मंत्र हैं। आदि काल में जब इन मंत्रों को पुस्तक के रूप में लिखा गया था, तो 'संहिता' नाम दिया गया। केवल 'संहिता' को ही वेद कहा जाता है।

आ. सहायक धार्मिक ग्रंथ

(1) उपवेद

सब सत्य विद्या, कला और विज्ञान के भंडार 'उपवेद' का उद्‌भव वेदों से हुआ। ये निम्न हैं :

i. **आयुर्वेद**–आयुर्वेद की उत्पत्ति ऋग्वेद से हुई है। इसमें आयु, स्वास्थ्य और उपचार–विज्ञान निहित है।

ii. **धनुर्वेद**–धनुर्वेद की उत्पत्ति यजुर्वेद से हुई। इसमें नागरिक तथा सैन्य विज्ञान, सुरक्षा और राजकार्य निहित हैं।

iii. **गान्धर्ववेद**–गान्धर्ववेद की उत्पत्ति सामवेद से हुई। इसमें संगीत–विज्ञान, कलाएँ, साहित्य और दर्शन निहित हैं।

iv. **अर्थवेद**–इसकी उत्पत्ति अथर्ववेद से हुई। इसे **शिल्पवेद** भी कहा जाता है। इसमें विज्ञान, खगोल, ज्योतिष, यांत्रिकी, गणित, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान निहित हैं।

(2) अंग/वेदांग

वेदों की भाषा और साहित्य को समझने के लिए **'अंग/वेदांग'**

आवश्यक हैं। **'अंगों'** में शब्द-विन्यास और व्याकरण निहित हैं। ये 6 पुस्तक-मालाएँ हैं जिनका वर्णन नीचे दिया गया है :

प्रथम पुस्तकमाला : 'शिक्षा'—सही शब्द-संयोग और उच्चारण का विज्ञान। इसमें पाणिनीय, प्रातिशाख्य और मांडुकी शिक्षा निहित हैं।

द्वितीय पुस्तकमाला : कल्प (वेदों की समालोचना)

1. **ब्राह्मण ग्रंथ :** इनमें धार्मिक क्रियाएँ और संस्कार-कर्म निहित हैं तथा ये वैदिक मंत्रों की व्याख्या करने में भी सहायक हैं। प्रत्येक वेद के निर्धारित समालोचनात्मक ब्राह्मण-ग्रंथ हैं। ऋग्वेद के ऐतरेय और सांख्य, यजुर्वेद का शतपथ, सामवेद का ताण्ड्य ब्राह्मण और अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण समालोचना-ग्रंथ हैं।
2. **सूत्रग्रंथ :** ये धार्मिक संस्कारों के काव्यात्मक ग्रंथ हैं और इनमें मुख्य गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, श्रौतसूत्र, और शुल्बसूत्र हैं। आश्वलायन, गोभिल, पारस्कर, कौषीतकी, कात्यायन और बौधायन भी मान्य सूत्रग्रंथ हैं।
3. **आरण्यक :** ये ब्राह्मण-ग्रंथों के सहायक ग्रंथ हैं इनके विषय संस्कार तथा आध्यात्मिक चिन्तन हैं। आरण्यक-ग्रंथ ब्राह्मण-ग्रंथों के ही भाग हैं, जो कि आध्यात्मिक ज्ञान की मुख्यतया व्याख्या करते हैं।

तृतीय पुस्तकमाला : निरुक्त और निघण्टु : यास्काचार्य द्वारा वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति-विषयक (शब्दकोष और भाषा-विज्ञान) व्याख्या।

चतुर्थ पुस्तकमाला : प्रातिशाख्य अथवा व्याकरण : अष्टाध्यायी और महाभाष्य व्याकरण—यौगिक शब्द, संयोजक और अन्य धातु-पाठ; यौगिक शब्द; गणपाठ : संयोजक; उणादिकोष : उपसर्ग और प्रत्यय।

पंचम पुस्तकमाला : छन्द : पिंगलाचार्य का छंदोग्रंथ, छंदविद्या और काव्यरचना की कला तथा विज्ञान बहुत प्रसिद्ध हैं।

षष्ठ पुस्तकमाला : ज्योतिष : खगोल विज्ञान, अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, भूगोल, भौतिक विज्ञान और भूगर्भ-विज्ञान, उदाहरणार्थ **'सूर्य सिद्धांत'**।

सत्य सनातन नियम : हीरे, मोती, अन्य 'कीमती धातुएँ', 'कीमती पत्थर' कभी भी कर्मफल को बदल नहीं सकते। नक्षत्र विद्या ज्योतिष-विद्या नहीं है। कोई भी 'कीमती पत्थर' भविष्य के किसी परिणाम अथवा दुष्प्रभावों को दूर नहीं कर सकता।

(3) उपनिषद् :

उपनिषद् का अर्थ है भगवान् के समीप बैठना। उपनिषद्-ग्रंथों में आत्मा, परमात्मा और ईश्वर-प्राप्ति के आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों सम्बंधी उल्लेख हैं। निम्नलिखित 11 प्रामाणिक उपनिषद् हैं :

i. **ईश :** ईश्वर-विषयक।
ii. **केन :** 'किसको किसने शासित किया' विषयक।
iii. **कठ :** जिज्ञासु मस्तिष्क और आत्मा विषयक सामग्री।
iv. **प्रश्न :** महात्मा पिप्पलाद द्वारा जिज्ञासु प्रश्न और उत्तर।
v. **मुण्डक :** आत्मा और परमात्मा विषयक चर्चाएँ।
vi. **माण्डूक्य :** आत्मा और परमात्मा विषयक चर्चाएँ।
vii. **ऐतरेय :** पवित्र-आत्मा विषयक चर्चाएँ।
viii. **तैत्तिरीय :** आत्मा और आत्म-प्रदेश विषयक गुणात्मक चर्चाएँ।
ix. **छांदोग्य :** मोक्ष और ईश्वर-प्राप्ति विषयक चर्चाएँ।
x. **बृहदारण्यक :** स्वयं और सृष्टि के सापेक्ष सम्बन्धों की चर्चाएँ।
xi. **श्वेताश्वतर :** सृष्टि-रचना के कारण और वृत्तान्त और आत्मा, परमात्मा तथा ईश्वर-प्राप्ति का विज्ञान।

(4) उपांग/षड् दर्शन :

जीवन को कैसे जियें, संसार को कैसे देखें, तथा सृष्टि की

रचना कैसे हुई—जो शास्त्र इन प्रश्नों का उत्तर दिखाते हैं, उनको दर्शन कहते हैं। इस प्रकार का चिन्तन 6 निम्नांकित पुस्तकों में वर्णित है जिन्हें उपांग भी कहते हैं—

i. **पूर्वमीमांसा अथवा मीमांसा दर्शन :** जैमिनी द्वारा विश्लेषित और प्रयोग- विज्ञान से आत्मा और परमात्मा—दर्शन, कर्म का विश्लेषण, वेद का नित्यत्व।

ii. **वैशेषिक दर्शन :** प्रशस्तपाद की समालोचना सहित कणाद कृत गुणवत्ता, सामान्यता, पदार्थों की अद्वितीयता, परमाणु तथा अन्य जटिल विषयों, अस्तित्वहीनता, अभाव अथवा पदार्थ -ह्रास सहित सृष्टि—रचना, और समय के विज्ञान द्वारा प्रभु और प्रकृति के बारे में जीवन—दर्शन।

iii. **न्याय दर्शन :** वात्स्यायन की समालोचना-सहित गौतम—कृत तर्क, विवेक और यथार्थता का विज्ञान से जीवन—दर्शन।

iv. **योग दर्शन :** पतंजलि कृत पुरुषार्थ और ईश्वर- प्राप्ति के विज्ञान से सुगम जीवन प्राप्त कर सशरीर आत्मा और मन से प्रभु-दर्शन।

v. **सांख्य दर्शन :** कपिल- कृत जड़ और चेतन के विज्ञान से जीवन—दर्शन।

vi. **ब्रह्मसूत्र, उत्तर—मीमांसा अथवा वेदान्त दर्शन :** बादरायण- कृत क्रिया, जड़ पदार्थ, औपचारिकता और सृष्टि—रचना के अन्तिम कारण ब्रह्म के विज्ञान से जीवन—दर्शन। **बादरायण का दूसरा नाम व्यास भी है।**

(5) स्मृति

वेद के आधार पर गठित जिस विधान को कण्ठस्थ किया जाता है, उसे स्मृति कहते हैं। कानून—प्रदाता मनु ने ऐसे सभी प्राकृतिक नियमों और सिद्धान्तों की व्याख्या की है जो कि स्वयं, परिवार, समाज और विस्तृत रूप से मानवता को प्रभावित करते

हैं। मनु की कृति विश्व की अनेक सभ्यताओं के लिए प्रामाणिक कानूनों का एक स्रोत बनी। सभी स्मृतियों में प्रामाणिक सर्वप्रसिद्ध स्मृति 'मनुस्मृति' है।

(6) नीति शास्त्र

सर्वप्रसिद्ध नीतिशास्त्र विदुर-नीति, चाणक्य-नीति और भर्तृहरि द्वारा रचित 'नीति शतकम्' हैं।

(7) आदिकाल का प्राचीन इतिहास

पुराण (सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ) : कुल 18 पुराण हैं। पुराण-ग्रंथ 'जीवन के गूढ़ विषयों और भ्रान्तियों पर व्याख्या' आलंकारिक तथा लाक्षणिक गाथाओं द्वारा करते हैं। महाभारत से पूर्व विभिन्न राज्यों की राज-वंशावलियों की विवेचना भी पुराणों में की गई है।

(8) ऐतिहासिक महाकाव्य

i. **रामायण :** त्रेतायुग में महान् कवि वाल्मीकि द्वारा 18,149,000 ई॰पू॰ रचित श्री राम की जीवन-गाथा।

ii. **महाभारत :** द्वापर युग में श्री व्यास-कृत प्राचीन बृहत् भारत के बृहत् विश्वयुद्ध की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन, 3,139 ई॰पू॰। विश्वयुद्ध 'महाभारत' में श्री कृष्ण ने लक्ष्य सफल करने हेतु सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

(9) गीता

श्री कृष्ण ने विशुद्धता और श्रेष्ठता के साथ उपर्युक्त सूचीबद्ध धार्मिक ग्रन्थों के ज्ञान को सारगर्भित रूप से गीता में सफलतापूर्वक दर्शाया है। शाब्दिक रूप से गीता का अर्थ होता है 'गीत गाना'।

(10) सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

इन अद्वितीय पुस्तकों में सभी हिन्दू धार्मिक ग्रंथों और उपदेशों का सार समाहित है। इसमें संसार के सभी 'मतों/पंथों/धर्मों और रिलिजनों' का तुलनात्मक अध्ययन भी है। बंकिम चन्द्र, ईश्वर-

चन्द्र विद्यासागर, और रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर के कहने पर, स्वामी दयानन्द ने उन लोगों के लिए जो हिन्दू धर्म के शुद्ध रूप को जानना चाहते हैं, एक पुस्तक लिखना आरम्भ किया। हिन्दू धर्म पर यह पुस्तक ई॰ सन् 1877 में 'सत्यार्थ प्रकाश' के नाम से प्रकाशित हुई। इस रचना ने लोगों में बढ़े हुए अंध-विश्वास के भाव को कम किया और हिन्दू धर्म के वास्तविक रूप को प्रस्तुत किया। 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के सिद्धांत प्रमाण-सहित प्रस्तुत किए।

(11) काल गणना–पंचांग

ज्योतिष तथा खगोल-विद्या सम्बन्धी गणनाओं का मान्य ग्रंथ 'सूर्यसिद्धान्त' है। हिन्दू धर्म में विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं का सन्दर्भ 'विभिन्न ग्रहों और नक्षमण्डलों की खगोलीय स्थिति' ही है। खगोलीय सन्दर्भों से भविष्य में भी इन घटनाओं की खगोलीय काल की पुनर्गणना की जा सकती है। उदाहरणार्थ, वर्तमान कलियुग का प्रारम्भ रात को 2 बजकर 27 मिनट और 30 सैकंड पर, प्रथम वर्ष 'प्रमाथि' के प्रथम दिवस से प्रथम महीना आरम्भ हुआ था। उस समय नक्षत्रमण्डलों के साथ सात ग्रहों का योग था। यह वह क्षण था जब श्री कृष्ण ने नश्वर देह को त्यागा, तब से ही वर्तमान कलियुग प्रारम्भ हुआ। ई॰ सन् 2005 तक गणना करने पर वर्तमान कलियुग 5107 वर्ष का होता है। फ्रांसीसी खगोल वैज्ञानिक बैली ने इसकी पुनर्गणना कर इसे सही सिद्ध किया है।

9. तीन मूलभूत सत्ताएँ

1. ईश्वर

i. सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी, सर्वगुणसम्पन्न, अपरिवर्तनीय, निराकार, अजन्मा, दयालु, परम सत्य 'ब्रह्म' अवर्णनीय है, पर इस जीवन में प्रभु अनुभूति से दूर नहीं है।

ii. ईश्वर के बहुआयामी गुणों का चित्रात्मक और प्रतीकात्मक

रूप से विभिन्न प्रार्थनाओं में वर्णन होता है। प्रभु के असंख्य गुण सामान्य जन को समझाने के लिए ईश्वर के विभिन्न गुणों की 33 कोटि अर्थात् 33 करोड़ प्रकार के देवी-देवताओं के रूप में कल्पना की गई है। इस प्रकार 'सार्वभौम त्रय' से ईश्वर के तीन मूलभूत गुणों-'सृष्टि रचयिता, सर्वव्यापक, सृष्टि-पालक और प्रलयकारक/कल्याणकारक' के रूप में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश से सम्बोधित किया है।

2. आत्मा :

आत्मा अर्थात् जीवात्मा : जीव की चेतना और अस्तित्व की ऊर्जा है।

i. **आत्मा** की यात्रा एक साधारण प्रकार के जीवन से आरम्भ होकर, जन्म और पुनर्जन्म से होती हुई तब तक चलती रहती है, जब तक इसे मानव-शरीर नहीं मिलता। इस प्रक्रिया को पुनर्जन्म अथवा देहधारण कहते हैं। उदाहरणार्थ 'पुनर्जन्म-जन्म-पुनर्जन्म का क्रम' अनन्त काल तक, अर्थात् जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो, चलता ही रहता है।

ii. आत्मा की **यात्रा निष्काम कर्म,** कर्मफल के नियमों, कारण और प्रभाव, तथा 'जैसी करनी, वैसी भरनी' के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होती है।

iii. आत्मा को अपनी इच्छानुसार कर्म करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है।

iv. आत्मा मनुष्य के रूप में धर्म-मार्ग का अनुसरण कर मोक्ष-प्राप्ति की ओर आगे बढ़ती है।

v. अन्त में प्रत्येक आत्मा पहले कहे गए योग-मार्गों/पुरुषार्थों के माध्यम से, एक निश्चित काल के लिए, ब्रह्म में लीन/संयुक्त हो सकती है।

3. प्रकृति

प्रकृति जड़ पदार्थ है। प्रकृति के अग्रांकित रूप/तत्त्व हैं :

1 ठोस : जैसे पृथिवी, 2 जल : जैसे द्रव पदार्थ, 3 अग्नि : जैसे शक्ति, 4 वायु : जैसे हवा इत्यादि, 5 आकाश : जैसे अन्तरिक्ष। सारा दृश्य जगत इन पंचभूतों से बना है।

10. तीन मूल तत्त्व एवं उनकी विशेषताएँ

1. ब्रह्म की तीन मूलभूत विशेषताएँ हैं जिन्हें सच्चिदानन्द कहा जाता है :
   i. सत् अथवा अस्तित्व,
   i. चित् अथवा चेतना,
   iii. आनन्द अथवा परम सुख।
2. आत्मा की दो मूलभूत विशेषताएँ हैं :
   i. अस्तिता।
   i. चेतनता, पर परम सुख से वंचित।
3. प्रकृति की केवल एक ही मुख्य विशेषता है : अस्तिता। वह परम सुख और चेतनता से वंचित है।

11. तत्त्व-ज्ञान सम्बन्धी अवधारणाएँ

1. **यथार्थता (Reality) अथवा वास्तविकता : तीन प्रकार से कहने का ढंग :**
   i. **द्वैतवाद :** दो चेतन सत्ताएँ 1. जीवात्मा तथा 2. ब्रह्म।
   ii. **अद्वैतवाद :** अर्थात् परमात्मा एक ही है। उसके जैसा दूसरा कोई नहीं है–उसका द्वित्व नहीं है अर्थात् अद्वैत है।
   iii. **त्रैतवाद :** तीन स्वतन्त्र सत्ताओं का अस्तित्व
      1) प्रकृति
      2) आत्मा
      3) परमात्मा अथवा ब्रह्म।
2. **संसार और ब्रह्माण्ड :**
   i. **संसार :** यथार्थ है; वह मिथ्या नहीं है। जगत् आत्मा की पुनर्जन्म-यात्रा के लिए प्रशिक्षण-स्थल है।

ii. **प्रलय** : ब्रह्म की कल्याणकारक लीला, एक के बाद एक लगातार प्रक्रिया, जैसे बीज का प्रलय होने से अंकुर व पौधे की सृष्टि होती है।

12. गुण/प्रवृत्ति

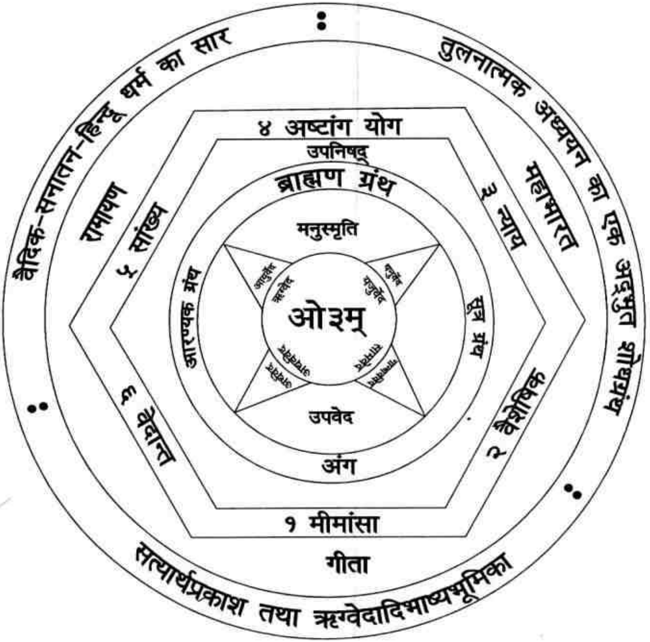
'प्रवृत्ति' : व्यक्ति के आन्तरिक मूलभूत गुण जो कि जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करते हैं, उनको 'प्रवृत्ति' की संज्ञा दी गई है। आन्तरिक मूलभूत गुण जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करते हैं, विशेषरूप से निम्नलिखित प्रवृत्तियों को :

1. **यज्ञ** : व्यक्ति द्वारा तपोमय, परोपकारी, पवित्र और नि:स्वार्थ श्रद्धा-सहित त्यागमय सेवा-प्रयास 'यज्ञ' है।
2. **निष्काम कर्म** : व्यक्ति द्वारा किया गया प्रत्येक 'परोपकारी निष्काम कार्य' ही कर्म कहलाता है।
3. **धर्म** : ऐसे न्यायोचित दैनिक कर्त्तव्य, जिनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति जीवन में समाज के साथ-साथ आगे बढ़ता है।
4. **सुलभ जीवन-पद्धति** : सादा आचार-विचार और रहन-सहन से सात्त्विक खान-पान अपनाकर कर्मशील-पुरुषार्थी बन, सद्भाव-सहयोग द्वारा परोपकार और दान करते हुए, धर्म-परायणता अपनाते हुए, पतंजलि-कृत अष्टांग-योग और मनु द्वारा निर्दिष्ट दैनिक पंच महायज्ञ करते हुए ईश्वर-प्राप्ति करने हेतु सुगम जीवन जीना।

उपर्युक्त आन्तरिक मूलभूत गुण अर्थात् प्रवृत्तियाँ नीचे दिए गए तीन सिद्धांतों द्वारा प्रभावित होती हैं :

1. **सत्त्व गुण** : व्यक्ति जिस पवित्रता, सद्बुद्धि और ज्ञान की वृद्धि करता है, उस आन्तरिक मूलभूत गुण को **'सत्त्व गुण'** कहते हैं। सात्त्विक व्यक्ति गुणवान्, समृद्ध और न्यायप्रिय होते हैं, जिससे कि पवित्र कर्मों के प्रति लगन बढ़ती है। इसका दूसरा नाम सुख भी है।
2. **रजस्** : चंचलता, लालसा और उत्तेजना को बढ़ानेवाला

आर्ष ग्रंथों की झलकियाँ



आन्तरिक मूलभूत गुण **'रजस्'** कहलाता है। राजसिक व्यक्ति प्राय: निरुद्देश्य गतिविधियों में अत्यधिक संलग्न होकर स्वार्थी, अहंकारी अथवा आत्माभिमानी बन जाते हैं, जिससे कि आत्मप्रशंसा वाले विचारों, प्रयासों तथा कार्यों को बल मिलता है। रजस् दु:खात्मक गुण है।

3. **तमस् :** जो आन्तरिक मूलभूत गुण अज्ञानता और मन्दता की वृद्धि करता है, वह **'तमस्'** कहलाता है। तामसिक व्यक्ति जड़ता, स्वार्थीपन और असत्यप्रियता से ग्रसित होता है, जिससे कि दुष्टता अथवा हानिकारक विचारों की समाज में वृद्धि होती है। इसका दूसरा नाम दु:ख है। तमस् गुण मोहात्मक है।

13. दैनिक जीवन में वैदिक-सनातन-हिन्दू धर्म की झलकियों का व्यावहारिक उपयोग

हिन्दू लोग प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं। इसलिए अंधविश्वासों और मध्यस्थों अथवा धर्म के ठेकेदारों का हिन्दू धर्म में कोई स्थान नहीं है। उनका आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है अर्थात् सम्पूर्ण संसार एक बृहत् परिवार है। सभी संस्कृतियों और भाषाओं के माध्यम से भगवान् को ऊपर कहे हुए अष्टांग योग के द्वारा जाना जा सकता है। भगवान् संसार के सभी लोगों के कल्याण के लिए समान उपदेश करता है। इसलिए सौहार्द और सहनशीलता हिन्दू धर्म के मूलभूत घटक हैं।

पंच महायज्ञ—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेव, अतिथियज्ञ, केवल स्वयं के जीवन को ही श्रेष्ठतर नहीं बनाते अपितु सम्पूर्ण समाज के प्रति दायित्व को पूर्ण करते हैं।

यदि हर व्यक्ति कम से कम 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' प्रतिदिन करे तो समाज में कोई भूखा और गरीब नहीं रह सकता। इस यज्ञ का मतलब ही यह है कि 'अपने ऊपर निर्भर रहनेवालों की देखभाल करना।' समाज के सभी अंगों की देखभाल अगर प्रत्येक व्यक्ति

करता है, तो साम, दाम, दंड, भेद की नीति से भी, विदेशी कभी हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन करने में सफल नहीं हो सकते और अभी जो परिस्थितिवश धर्म-परिवर्तन हो रहा है उसकी भी रोकथाम हो सकती है।

अग्नि सभी पदार्थों को प्राकृतिक अवस्था में विभक्त कर देती है, इसलिए हिन्दू मृतक शरीर का दाह करते हैं ताकि सभी तत्त्व उनकी मूलभूत प्राकृतिक अवस्था को शीघ्रता से ग्रहण कर लें।

अनन्त आनन्द की समाधि—मोक्ष को इसी जीवन में बिना मरे, पतंजलि के अष्टांग योग-मार्ग का अनुसरण कर प्राप्त किया जा सकता है। जीवन का उद्देश्य निष्काम कर्म करते हुए 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' के आदर्श को जीवन में ढालना है।

9

पृथिवी की आयु

(AS OF THURSDAY FEB. 17, 2005)

खगोलीय गणनाओं के अनुसार एक कल्प एक हजार चतुर्युगियों में विभाजित है। प्रत्येक चतुर्युगी में चार युग निहित होते हैं : सत्, त्रेता, द्वापर और कलि, जिनमें कि क्रमश: 1,728,000, 1,296,000, 864,000 और 432,000 वर्ष होते हैं। वेद, मनुस्मृति, सूर्य सिद्धान्त, महाभारत और पुराण, सभी इस गणना को सही सिद्ध करते हैं। सूर्य सिद्धांत के अनुसार वर्तमान कलियुग सातवें मन्वन्तर वैवस्वत की 28वीं चतुर्युगी का चौथा युग है। निम्न तालिका सूर्यसिद्धांत और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अनुसार पृथिवी की आयु दर्शित कराती है :

युग	बीते वर्ष	कुल बीते वर्ष
6 मन्वन्तर	6x306,720,000	1,840,320,000
7 मन्वन्तर की 7 संधि	1,728,000	12,096,000
सातवें मन्वन्तर वैवस्वत की 27वीं चतुर्युगी	27x4,320,000	116,640,000
28वीं चतुर्युगी के सत् त्रेता और द्वापर	1,728,000+1,296,000+864,000	3,888,000
कलियुग 2005 ई० तक	5,107	5,107
कुल योग		**1,972,949,107**

Thursday Feb. 17, 2005 अर्थात् विक्रम संवत्, माघ शु० 9 को 5107 कलियुग/ युगाब्द संवत् आरम्भ होता है। Saturday April 9, 2005 अर्थात् शु० 1/वर्ष प्रतिपदा शनिवार चैत्र को विक्रम संवत् 2062 तथा शक संवत् 1927 आरम्भ होता है।

10

पुरातन इतिहास क्रमांक

वैदिक संस्कृति का अरुणोदय

* 1,555,219,729,491 पू॰	ब्रह्माण्ड प्रारम्भ, ब्रह्म संवत्।
* 1,97,29,49,107 ई॰पू॰	सृष्टि संवत्, मनुष्यों और जीवों की रचना। प्रथम स्वयंभू मन्वन्तर का शुभारम्भ, समाधिस्थ चार ऋषियों को वेदों की दिव्य अनुभूति।
* 1,654,131,107 ई॰पू॰	दूसरे स्वारोचिष मन्वन्तर का आरम्भ।
* 1,347,11,107 ई॰पू॰	तीसरे औत्तमि मन्वन्तर का आरम्भ।
* 1,040,691,107 ई॰पू॰	चौथे तापस मन्वन्तर का आरम्भ।
* 733,971,107 ई॰पू॰	पाँचवें रैवत मन्वन्तर का आरम्भ।
* 427,251,107 ई॰पू॰	छठे चाक्षुष मन्वन्तर का आरम्भ।
* 120,531,107 ई॰पू॰	सातवें वैवस्वत मन्वन्तर का आरम्भ।
* 18,149,107 ई॰पू॰	श्रीराम का समय त्रेतायुग (स्वामी जगदीश्वरानंद)।
* 3,138 ई॰पू॰	महाभारत युद्ध।
* 3,102 ई॰पू॰	कलियुग आरम्भ।
* 2,500 ई॰पू॰	तक्षशिला और नालंदा विश्व-विद्यालय।
* 1,801 ई॰पू॰	बुद्ध का निर्वाण (के॰एन॰ कपूर)
* 1,807 ई॰पू॰	बुद्ध का निर्वाण (कोटा वेंकटाचलम्)।
* 1,472 ई॰पू॰	अशोक का राजतिलक (श्री राम साठे)।

* 600 ई॰पू॰	महावीर स्वामी का जन्म।
* 509 ई॰पू॰	आदि शंकराचार्य का जन्म (के॰एन॰ कपूर)।
* 491 ई॰पू॰	आदि शंकराचार्य का जन्म (श्री राम साठे)।
* 57 ई॰पू॰	विक्रमी संवत् का आरम्भ (महाराजा विक्रमादित्य की मध्य एशिया के शकों पर विजय)।
* 27 ई॰पू॰	अगस्तस-प्रथम रोमन सम्राट्।
* ई॰पू॰=ईसा-पूर्व सन्	
7 ई॰	नजरेथ के जीसस क्राइस्ट (ईसु) का सम्भावित जन्म (लाइफ मेगजिन, दिसम्बर 1999)।
78 ई॰	शक संवत् का आरम्भ।
1192 ई॰	भारत में मुस्लिम शासन का आरम्भ।
1674 ई॰	शिवाजी द्वारा स्वतन्त्र हिन्दू राष्ट्र 'महाराष्ट्र' की स्थापना!
1824 ई॰	महर्षि दयानन्द का जन्म।
1857 ई॰	भारत का प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम आरम्भ।
1877 ई॰	सत्यार्थ प्रकाश की रचना।
1926 ई॰	स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान।
1942 ई॰	आजाद हिन्द सेना की स्थापना।
1947 ई॰	भारत का विभाजन और अंग्रेजी राज से स्वतन्त्रता।
1948 ई॰	लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल का निधन।

बुद्ध और महावीर काल :

अंग्रेजी शासनकाल में एक जर्मन मिशनरी मैक्सम्यूलर ने भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन का कार्य किया, ताकि भारतीय इतिहास को ईसाई 'मत-रिलिजन' के सुझाए विश्वासों के अनुसार ढाला जा सके। एक और विख्यात अंग्रेज विद्वान् सर विलियम जॉन्स ने भी इस कार्य में उनकी मदद की। सर जॉन्स और मैक्सम्यूलर ने परस्पर सहमति से पारम्परिक भारतीय पौराणिक तथ्यों, नेपाल और कश्मीर, मगध के शिशुनाग और अन्य राजवंशों जैसे कि सूर्यवंश के कालक्रमों को नकार दिया, क्योंकि इनको मान्यता मिलने पर उनके ईसाई मत के विश्वास कमजोर पड़ जाते। बुद्ध इन्हीं राजवंशों से सम्बन्धित थे।

ईसाई मत के अनुसार और आयरलैण्ड के आर्चबिशप रेव॰ जान अशर द्वारा 1664 ई॰ में की गई गणना अनुसार बतलाया गया कि इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति 23 अक्तूबर, 4004 ई॰पू॰ को प्रातः चार बजे हुई। अन्य प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार और विद्वान् श्री बी॰सी॰ गोल्डस्टकर के अनुसार मैक्सम्यूलर और सर विलियम जॉन्स ने भी आर्चबिशप के ईसाई सृष्टि-रचना के सिद्धांत का समर्थन किया। उस समय अंग्रेजों का शासन था, इसलिए वे संसारभर में अपने विचारों को थोप सकते थे। अधिकतर विद्वानों ने मैक्सम्यूलर और सर विलियम जॉन्स की प्रस्तावित इतिहास की विकृत कालक्रम-गणना को बिना कोई विशेष निरीक्षण किए स्वीकार कर लिया। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने मैक्सम्यूलर और सर विलियम जॉन्स के पक्षपातपूर्ण विचारों के आधार पर भारतीय इतिहास की कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं की तिथियाँ निश्चित कर दीं। ऐसा करने पर उन्होंने विकृत, भ्रष्ट और भ्रान्तिपूर्ण आधुनिक साहित्य की भरमार कर दी जो कि इन्हीं के विकृत तथ्यों को मज़बूत करें और अधिक बढ़ावा दें। जिसने भी इन पक्षपातपूर्ण विचारों का विरोध किया, उसे आधारहीन कहकर उन सबका सामाजिक, शैक्षणिक बहिष्कार कर, अपमानित भी किया।

तब से लेकर आज तक पाठ्यक्रमों में पक्षपातपूर्ण तथ्यों का

ही बोलबाला रहा है, उदाहरणार्थ - 1947 में भारत की स्वतन्त्रता के तुरन्त पश्चात् प्रसिद्ध विद्वान् और इतिहासकार श्री कोटा वेंकटाचलम् ने कांग्रेस को भारतीय इतिहास का शुद्ध और सही कालक्रम भेजा। उसने इस विषय पर अध्ययन और चर्चा करने की प्रार्थना की। दुर्भाग्य से भारतीय इतिहास कांग्रेस ने तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू के दबाव के कारण इस शोध को पूर्ण रूप से खारिज कर दिया।

पौराणिक और बौद्ध साहित्य के अनुसार बुद्ध का निर्वाण मगध के शिशुनाग–राजवंश के राजा अजातशत्रु के शासनकाल में हुआ। बुद्ध शिशुनाग- राजवंश के 31वें/33वें राजा अजातशत्रु के समकालिक थे। बुद्ध का जन्म 1887 ई॰पू॰ हुआ था; बुद्ध को 35 वर्ष की आयु में ज्ञान प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपने जीवन के शेष 45 वर्षों में अपने अनुभवों के आधार पर दिव्य सदुपदेश किया। जब 1814 ई॰पू॰ में अजातशत्रु का राज्याभिषेक हुआ, उस समय बुद्ध की आयु 72 वर्ष थी। वे 80 वर्ष तक जिए। अत: उनका निधन 1807 ई॰पू॰ में हुआ। इसके विपरीत भारत सरकार ने 1956 ई॰ में बुद्ध के जन्म की पच्चीस सौवीं वर्षगाँठ मनाई। श्री राम साठे के अनुसार यह तिथि बर्मा की परम्पराओं के अनुसार बुद्ध के निर्वाण- काल पर आधारित थी -

बुद्ध का जन्म 1887 ई॰पू॰, बुद्ध का निधन 1807 ई॰पू॰

विभिन्न देशों में प्रचलित बुद्ध के निर्वाण की तिथियाँ

श्री लंका की पारम्परिक तिथियाँ	:	483 ई॰पू॰
बर्मा की पारम्परिक तिथियाँ	:	544 ई॰पू॰
भारतीय विद्वानों की अनुसंधानित तिथियाँ		
कोटा वेंकटाचलम्, श्री राम साठे, और थ्यागराज अय्यर द्वारा तिथियाँ	:	1807 ई॰पू॰
के॰एन॰ कपूर	:	1801 ई॰पू॰
प्रो॰ के॰ श्रीनिवास राघवन	:	1800 ई॰पू॰
तिब्बतियन तिथियों में काफी अन्तर है	:	567 ई॰पू॰ से 9000 ई॰पू॰

थाईलैण्ड की पारम्परिक तिथियाँ	:	7000 ई॰पू॰
चीनी पारम्परिक तिथियाँ	:	11000 ई॰पू॰

आदि शंकराचार्य की जन्म-तिथियाँ :

द्वारिका, पुरी और काँची के मठों के द्वारा प्रमाणित पत्र अनुसार	:	509 ई॰पू॰
सर विलियम जॉन्स के ऐतिहासिक पत्रक	:	788 ई॰ सन्

महावीर स्वामी की जन्म-तिथियाँ :

महावीर स्वामी जैन-परिपाटी के 24वें तीर्थंकर थे। उनका जन्म कलियुग की 26वीं शताब्दी अथवा 600 ई॰पू॰ में हुआ था।

कोई भी व्यक्ति आसानी से समझ सकता है कि सर विलियम जॉन्स के ऐतिहासिक कालक्रम-पत्रक निश्चित रूप से भारतीय इतिहास की पुरातनता को कम करने में सफल रहे। इसी कारण से भारत के वर्तमान विभिन्न विश्वविद्यालयों में चल रहे विकृत पाठ्यक्रम महावीर स्वामी और बुद्ध को समकालिक प्रदर्शित करते हैं।

यह भारतीयों के लिए अति दुःख की बात है कि आजकल स्वतन्त्रता-प्राप्ति के 57 वर्षों पश्चात् भी भारतीय पाठ्यपुस्तकों में उपर्युक्त विकृत पाठ्यक्रम के विचारों की ही भरमार है, इस विकृत इतिहास के आधार पर बुद्ध-काल 563 से 483 ई॰पू॰ दिखाया गया है। महावीर स्वामी तथा बुद्ध को समकालिक प्रदर्शित कर भारतीय इतिहास के 1000 स्वर्णिम वर्षों को धूमिल कर दिया।

नोट : इतिहासकार कभी भी किसी कालक्रम पर एकमत नहीं होते। दुर्भाग्य से, अधिकतर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा नेपाली तथा कश्मीरी राजवंशों के कालक्रम, विस्तृत एवं गूढ़ ग्रंथ 'कलियुग राजवृत्तान्त' सहित पुराणों के ऐतिहासिक अभिलेखों को एकपक्षीय तौर पर अस्वीकार कर दिया गया है। तथापि, विभिन्न ग्रहणों की विस्तृत गणनाएँ, ऐतिहासिक महत्त्व की राज-गाथाएँ, राज-दस्तावेज जैसे कि 'लैण्ड गिफ्ट्स अथवा भूमि-स्थानांतर के अभिलेख',

पुरातात्त्विक प्रमाण, विभिन्न संस्कृतियों के ऐन्थ्रोपॉलोजी सम्बन्धी अध्ययन, ऐतिहासिक घटनाओं को पुनर्व्यवस्थित और सुव्यवस्थित करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इन ऐतिहासिक तथ्यों को भी अस्वीकार कर पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके संकीर्ण, मानसिक गुलामी से ग्रसित भारतीय विद्वानों ने हिन्दुओं के साथ अति घोर विश्वासघात किया है।

महत्त्वपूर्ण पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज :

कनार्टक में बीजापुर के आइहॉले जैन मन्दिर के संस्कृत-शिलालेख पर महाभारत-युद्ध, कलियुग के आरम्भ-काल और चालुक्य-नरेश पुलकेशिन के शासन, 508–531 ई० की बिलकुल सही तिथियाँ स्थापित की गई हैं।

11

प्राचीन युग के कालों की तुलना तथा भारत से प्राचीन वैदिक लोगों का विदेश-गमन

(पंडित रघुनन्दन शर्मा, वैदिक सम्पत्ति, 1931)

ई० सन् 2005 तक शोधित

सृष्टि संवत्, मानव का पृथिवी पर प्रादुर्भाव, 1972940107

वैवस्वत मनु 120533107

चीन काल 96002506

खत्ता काल 88840378

कालडियन सृष्टिरचना-काल 21500077

कालडियन काल 470077

ईरान की ओर देशान्तरण 189985

कलियुग-काल 5107

मोजेज-काल 5765

ईरान (पारसी(काल 6019

फोनेशिया की ओर देशान्तरण 30077

मिश्र को देशान्तरण 28659

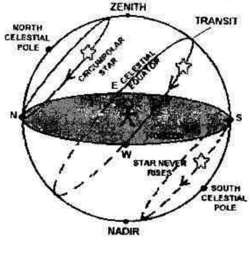
वैदिक लोगों का आधुनिक काल में भारत से विदेश-गमन

जलयान द्वारा अरेबियन, गुयाना, सूरिनाम, दक्षिण अमेरिका आदि देशों को विदेश-गमन .... ई॰ सन् 1845

वैदिक साहित्य-रचना :

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा अन्य ग्रंथों के अनुसार

वैदिक साहित्य-रचना-काल-गणना ई॰ सन् से पूर्व (B.C.)	वेद 1,972,949,107 ई॰पू॰,
	* सूर्य सिद्धान्त 1,953,720,030 ई॰पू॰,
	रामायण 1269077 ई॰पू॰,
	ब्राह्मण ग्रंथ 22077 ई॰पू॰
	महाभारत 3138 ई॰पू॰,



आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा ब्रह्माण्ड का एक मॉडल

सृष्टि से उपलब्ध
मुख्य संवतों का तुलनात्मक अध्ययन

सृष्टि संवत्, 155,521,972,949,107 ब्रह्माण्ड–उत्पत्ति

काल	समय	संवत् / घटना
आदि काल	5.0 अरब वर्ष पूर्व	कार्ल सेगन, यूएस नक्षत्रविद् द्वारा प्रस्तुत सूर्य के वर्ष (सूर्य)
	4.5 अरब वर्ष पूर्व	कार्ल सेगन, यूएस नक्षत्रविद् पृथिवी की आयु (पृथ्वी)
	1.9 अरब वर्ष पूर्व	मानव–जीवन का पृथ्वी पर प्रादुर्भाव
	18,149,107 वर्ष पूर्व	रामायण काल
मध्य काल (ई० पू०)	3761 वर्ष पूर्व →	यहूदी (हिब्रू) वर्ष
	3142 वर्ष पूर्व →	महाभारत युद्ध
	3102 वर्ष पूर्व →	कलियुग संवत्
	2701 वर्ष पूर्व →	चीन वर्ष
	1850 वर्ष पूर्व →	जोराष्ट्रियन
	536 वर्ष पूर्व →	महावीर संवत्
	57 वर्ष पूर्व →	विक्रम संवत्
नवीन काल (ई० सन् के बाद)	ईसा के 81 वर्ष बाद →	शक संवत्
	ईसा के 583 वर्ष बाद →	इस्लामिक
	ईसा के 1472 वर्ष बाद →	गुरु नानक सिख संवत्
	2005 वर्ष →	वर्तमान ई० सन्

आदिकाल से प्राचीन बृहद् भारत से विविध वैदिक जनसंख्या के देशान्तर-गमन का वर्णन इस प्रकार है :

1. खत्त, खत्तिक तथा खतिश भाषाएँ हतुशा के प्राचीन लोगों द्वारा बोली जाती थीं। इस प्राचीन हितिते प्रान्त में हिन्दू-यूरोपियन लोग रहते थे। इनकी लिपि आधुनिक टर्की के बोगझकॉय भाग के हितिते खण्डहरों में पाई गई थी, ऐसा ब्रिटैनिका के विश्व ज्ञानकोष (Encyclopedia) में बतलाया गया है।
2. सांस्कृतिक ऐन्थ्रोपॉलोजी का अध्ययन करने पर, प्राचीन भारतीय सभ्यता को मिश्र के अरबी संगीत में ढूँढा जा सकता है। नील नदी के संगीतकारों की परम्पराएँ भारत के प्राचीन चारण (भाट) कवियों की परम्पराओं के अनुरूप पाई गईं। हाल ही में बनी टॉनी गेटलिफ द्वारा निर्देशित फिल्म 'लच्छो ड्रोम' में भारत से जलयात्रा द्वारा पलायन हुए जिप्सी, बनजारे, भाट इत्यादि लोगों की संस्कृति तथा संगीत, मिश्र की नील नदी के संगीतकारों में अभी भी मिलती है। हाल ही में रियल वर्ल्ड रिकॉर्ड लिमिटेड न्यूयार्क, न्यूयार्क, द्वारा प्रस्तुत की गई कॉम्पेक्ट डिस्क (आडियो सीडी) 'दॅ म्यूजीसिअन्स ऑफ दॅ नील' भारत के राजस्थानी शैली के संगीत को 'चारकोल जिप्सीज, 1995' के अन्तर्गत दर्शाया गया है। इस कॉम्पेक्ट डिस्क (आडियो सीडी) 'दॅ म्यूजीसिअन्स ऑफ दॅ नील' द्वारा अरबी संगीत में राजस्थानी शैली के संगीत की अमिट झलक देखने को मिलती है। भारत से जलयात्रा द्वारा पलायन हुए जिप्सी, बनजारे, भाट इत्यादि लोगों की यह निधि है। वहीं बसने के कारण उनका 'मज़हब तथा भाषा' का परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन हो गया, पर उनकी

राजस्थानी शैली की सांस्कृतिक छवि अभी भी उनके अरबी संगीत में पूर्णतया झलकती है। उपर्युक्त सी०डी० द्वारा प्रस्तुत संगीत-खोज को अमेरिका के नेशनल पब्लिक रेडियो की टिप्पणी द्वारा प्रामाणिक घोषित कर 1998 में प्रसारित किया गया।

3. चालडिएन लोग आधुनिक इराक के एक छोटे-से 'उर' नामक कस्बे के रहनेवाले थे। प्राचीन काल में इराक को मैसोपोटामिया के नाम से जाना जाता था। प्रेमसुख पूनै, एम०डी०, पी-एच०डी०, के अनुसार मैसोपोटामिया को मध्यमोपस्तरणम्, नदियों के मध्य की भूमि कहा जाता था। डॉ० पूनै ने मैसोपोटामिया के उर, इरेछ, एरिडु, किश, अल उबैद तथा सियाल्क अनाउ और सिन्धु-सरस्वती तथा सिन्धु-गंगा के क्षेत्रों की खुदाई से मिली खोपड़ियों की समानता का भी वर्णन किया है। डॉ० पूनै ने अपनी पुस्तक 'ओरिजिन ऑफ सिविलाइजेशन एण्ड लेंग्वेज/सभ्यता और भाषा का उद्‌भव' में व्यक्त किया कि प्राचीन सुमेर खेती-जोत की भूमि थी, जिसके मालिक और कृषक प्रवासी हिन्द-ऋग्वैदिक लोग थे। डॉ० पूनै ने व्यक्त किया कि विभिन्न कबीले जैसे कि 'असुर-आर्यन्स' को असीरियंस के रूप में, तथा अग्गर लोगों को अक्कड़स के रूप में जाना जाने लगा। अमर के अनुगामियों को अमोराइटिस के रूप में, भूपालों को बेबिलोनियंस के रूप में, क्षत्रियों को हिट्टीटिस के रूप में, मित्रानयों को मितैनी के रूप में, मदाई को मीडीस, इयामों को एलमाइट्स और चालडिएन के रूप में जाना जाने लगा तथा पुरुषम् आर्यानम् का संक्षिप्त अपभ्रंश रूप पार्थिअंस बना। वैदिक ज्ञान को पूर्व तथा पश्चिम दोनों दिशाओं में फैलानेवाले तत्त्व हिमालय के सिन्धु-सरस्वती तथा सिन्धु-गंगा क्षेत्रों में ही पले-बढ़े थे।

4. फोनेशिया की भौगोलिक स्थिति आधुनिक लेबनान है।
5. महाभारत व्यक्त करता है कि गंधर्व लोग गंधार में रहते थे, जो कि वर्तमान में अफगानिस्तान है। यह भली-भाँति स्थापित किया जा चुका है कि जिप्सी लोग भारत से गए थे। यह नेशनल ज्योग्राफिक सोसायटी वाशिंगटन डी०सी० द्वारा किए गए अध्ययनों से सिद्ध किया जा चुका है। गंधर्व लोग अथवा जिप्सी लोगों को एक अन्य प्रसिद्ध नाम 'बंजारा' से भी जाना जाता है। 'बंजारा' का अर्थ ऐसे लोग होते हैं जो वस्तुओं के व्यापार के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान एवं एक वन अर्थात् जंगल से दूसरे वन अर्थात् जंगल को पार कर, अलग-अलग जगह सामान बेचने हेतु व्यापारिक दृष्टि से स्थानान्तरित होते रहते हैं। गंधर्व लोग चलते-फिरते व्यापारियों के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। ये अपनी संस्कृति का नाच-गान द्वारा प्रचार-प्रसार करते रहे हैं। यही लोग आधुनिक जिप्सी जाति के पूर्वज हैं।
6. प्राचीन बृहत् भारत से वैदिक लोगों के देशांतर-गमन के विषय में Louis Jacolliot ने 1876 ई० सन् में अपनी पुस्तक "La Bible Dans L' Inde" में लिखा है :

'भारत विश्व का पालना है। उस जगत् माता ने अपने बच्चों को पश्चिम के अन्तिम छोर तक भेजते हुए अपनी भाषा, अपने कानून, अपने नैतिक मूल्य, अपना साहित्य और अपना धर्म, हमारे उद्भव के सदाबहार साक्ष्य के रूप में, हमें विरासत-स्वरूप प्रदान किए हैं।'

'पर्शिया, अरब, मिश्र को पार करते हुए तथा ठण्डे और बर्फीले उत्तर की ओर अपनी राह बनाते हुए, अपनी जन्म-स्थली की तपती हुई मिट्टी से बहुत दूर, भले ही वे वृथा ही अपनी प्रस्थान-स्थली को भूल जाएँ, उनकी चमड़ी का रंग भूरा रहे अथवा पश्चिमी देशों के श्वेत बर्फ के

सम्पर्क में आने से सफेद हो जाए, उनके द्वारा आबाद की गई सभ्यताओं के प्रतापी राज्य नष्ट हो जाएँ तथा संगतराश स्तम्भों के कुछ खडहरों के अतिरिक्त कुछ अवशेष न बचे, पूर्वजों की राख से नए लोग उठ खड़ें हों, पुराने नगरों के स्थान पर नए नगर आबाद हो जाएँ, लेकिन समय और विनाश दोनों मिलकर भी उद्गम-स्थली के सदा सुस्पष्ट वैदिक संस्कृति के अमिट चिह्नों को नहीं मिटा सके।'

विश्व के विभिन्न संवतों की तुलना
पंडित रघुनन्दन शर्मा, वैदिक सम्पत्ति, 1931
(ई॰ सन् 2005 तक शोधित)

Brahmand Era ब्रह्माण्ड उत्पत्ति–Development of present Universe:

Sristi Era सृष्टि संवत् 155,521,972,949,107 or 155 trillion years

*** Kalpa, or Vedic Era of Creation of life on the Earth :**

19,749,107 or 1.9 billion years

Old Chinese Era	:	9,602,501	or	900	million	years
Hittite Era	:	88,840,377	or	800	million	years
Chaldean Era	:	2,150,37	or	200	million	years
Persian Era	:	189,971	or	1	million	years
Finishian Era	:	30,007	or	30	thousand	years
Egyptian Era	:	28,668	or	28	thousand	years
Old Turkish Era	:	7,611				years
Irani/Parsi Era	:	6,009				years
Jewish Era	:	5,765				years
*28th Cycle of Kaliyuga:		5,107 year started on Thursday 17th Feb., 2005 A.D.				
New Chinese Era	:	4,361				years
New Turkish Era	:	4,295				years
Greek Era	:	3,577				years
Roman Era	:	2,754				years

Vikram Era : 2,062 year	Started in North India on Saturday, March 26, 2005.
Shaka Era : 1,928 year	Started on Saturday, April 9, 2005 AD

Christian Era: 2005 years starts on Tuesday January, one

Islamic or Hijri Era : 1427 years

Sikh Nanakshahi Samvat 537 years, start on March 15, 2005 AD

Khalsa Samvat 307 years, start on April 13, 2005 AD

* Kalpa or Vedic Era of origin of life or biological creation: arrival of vegetations, animal and human life on the Earth 1,972,949,107 years and currently interlinked to present 28th cycle of Kaliyuga.

12

सन्दर्भ ग्रन्थ प्रदर्शिका : स्रोत-सूची

1 चार वेद,

2. उपनिषद् और षड् दर्शन,

3. ब्राह्मण और सूत्र ग्रंथ,

4. मनुस्मृति,

5. वाल्मीकि रामायण,

6. महाभारत,

7. गीता,

8. सूर्य-सिद्धांत,

9. सत्यार्थ प्रकाश

10. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका,

12. भर्तृहरि-शतक,

13. विदुर-नीति,

14. चाणक्य-नीति,

15. वैदिक सम्पदा,

16. संस्कार भास्कर,

17. आर्यन् प्रेयर,

18. हितोपदेश।

नोट : उपर्युक्त सभी पुस्तकें गोविन्दराम हासानंद, आर्य साहित्य प्रकाशक से उपलब्ध हैं। पता निम्नांकित है–

1. विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, 4408, नई सड़क, दिल्ली-110006, दूरभाष : 23977216, E-mail:ajayarya@vsnl.com

2. श्री राम साठे: भारत युद्ध, साहित्य निकेतन, 3-705/4, नारायणगुडा, हैदराबाद-500029, मई 1983 ई०।
3. स्वामी विवेकानंद, स्वामी ज्योतिर्मयानन्द द्वारा, 1 एम०वी० नायडू स्ट्रीट, पंचवटी, चेतपुट, मद्रास, भारत-600031, अक्तूबर 1986 ई०।
4. आई० रॉबर्टसन: सोसियॉलोजी, तीसरा संस्करण, न्यूयार्क, न्यूयार्क, यू०एस०ए० 1987 ई०।
5. एच०वी० शेषाद्रि : ऑवर फैस्टिवल्स: द हिन्दू कौंसिल ऑफ केन्या, नैरोबी, केन्या, अप्रैल 1983 ई०।
6. रॉबर्ट ए० जॉनसन : फेमिनिटी लॉस्ट एण्ड रिगेन्ड, हार्पर एण्ड रो, पब्लिशर्स, न्यूयार्क, न्यूयार्क, 1921 ई०।
7. लुइस जेकोलियट : ला बाइबल डान्स एल' इण्डे, लाक्रोइक्स ईटीसी, एडिटर्स, पेरिस, फ्रांस, 1876 ई०।
8. जे०सी० शर्मा : हिन्दू टैम्पल्स इन वियतनाम, नई दिल्ली, दिसम्बर 1997 (चम्पा के मन्दिर, 1992 भी)।
9. द अमेरिकन हेरिटेज डिक्शनरी, हॉगटन मिकिन कम्पनी, बोस्टन, यू०एस०ए० 1985 ई०।
10. श्री राम साठे : डेट्स ऑफ दॅ बुद्ध/बुद्ध का काल, साहित्य निकेतन 3-705/4 नारायणगुडा, हैदराबाद-500029, मार्च 1987 ई०।
11. एस०आर०एन० मुर्थी : वैदिक व्यू ऑफ दॅ अर्थ, जिओलॉजिकल इनसाइट इन दॅ वेदा, के प्रिंट वर्ल्ड लिमिटेड, नई दिल्ली, 1997 ई०।
12. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती : पातंजल राजयोग, एस० चंद एण्ड कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड, नई दिल्ली, 1975 ई०।
13. स्वामी विद्यानन्द सरस्वती : ऑन दॅ वेदाज, ए क्ल्यू टु अंडरस्टैंडिंग ऑफ वेदाज, नई दिल्ली, 1996 ई०।

14. सर मोनियर मानियर विलियम्स : ए संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, ऑक्सफोर्ड, 1899.
15. प्रोफेसर सुरेन्द्र कुमार, विशुद्ध मनुस्मृति, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, भारत, 1999 ई०।
16. एफ० मैक्सम्यूलर : दॅ लाज ऑफ मनु, 1886, लो प्राइस पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1996 ई०।
17. सत्यप्रकाश सरस्वती : अग्निहोत्र, जन ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली– 5, 1935 ई०।
18. प्रोसीडिंग्ज ऑफ 1996 इण्टरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन 'रिविजिटिंग इण्डस–सरस्वती ऐज एण्ड एनसिएंट इण्डिया', शर्मा एण्ड घोष, वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ वैदिक स्टडीज, एटलांटा, जार्जिया, यू०एस०ए०।
19. शिवराम करीकल, वैदिक थॉट एण्ड वैस्टर्न साइकॉलोजी, आर्थी पब्लिकेशन्स, मैंगलौर, 1994 ई०।
20. द म्यूजिसिअंस ऑफ नील, चारकोल जिप्सीज, सीडी, बाक्स, कोर्शम, विल्टशायर रिअल वर्ल्ड रिकॉड्र्स, इनकॉर्पोरेशन, 104 वैस्ट 29वीं स्ट्रीट, न्यूयार्क, न्यूयार्क 10001, यू०एस०ए०।
21. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका।
22. सुहोत्रा स्वामी, सिक्स सिस्टम्ज ऑफ वैदिक फिलासिफीज, भक्तिवेदान्त अकादमी, आइसकॉन, बी०बी०टी० मायापुर, 1997 ई०।
23. रिचर्ड० ए० श्वूडर, हाउ यूनिवर्सल आर वेल्यूज, साईटिफिक अमेरिकन, न्यूयार्क, न्यूयार्क, 10017–1111 अगस्त, पृष्ठ 76, 1999 ई०।
24. प्रेमसुख पुण्य, ओरिजिन ऑफ सिविलाइजेशन एण्ड लैंग्वेज, पीयर्स पब्लिशर्स, इनकॉर्पोरेशन डेटोना बीच, फ्लोरिडा, यू०एस०ए०, 1994 ई०।

25. डॉ॰ रवि प्रकाश आर्य, भारतीय काल गणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप, नई दिल्ली, 1998.
26. रॉबर्ट सुलिवन, 2000 ईअर्स ऑफ क्रिस्चियनिटी, लाइफ, टाइम एण्ड लाइफ बिल्डिंग, न्यूयार्क, न्यूयार्क पृष्ठ 50, दिसम्बर, 1999 ई॰।
27. महर्षि दयानन्द सरस्वती, अपना जन्मचरित्र, इं आदित्यपालसिंह आर्य, डॉ॰ वेदव्रत 'आलोक', अदिति प्रकाशन, 1595, हरध्यानसिंह मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली–110005, 1987 ई॰।
28. युधिष्ठिर मीमांसक, स्वामी विश्वेश्वरानन्द ब्रह्मचारी, पुरुषार्थ–प्रकाशः, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, 1988 ई॰।
29. डॉ॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, संस्कार–चन्द्रिका, विजयकृष्ण लखनपाल, ए॰डब्लू॰ 77/ए, ग्रेटर कैलाश–1, नई दिल्ली–110048, 1990 ई॰।
30. श्री वीरसेन वेदश्रमी, वैदिक सम्पदा, विजय कुमार गोविन्दराम हासानंद, 4408, नई सड़क, दिल्ली–110006, 1996 ई॰।

13

शब्द-सूची

14

परिशिष्ट 1.

लेखक-परिचय

लेखक, पण्डित दीनबन्धु चन्दोरा का जन्म राजस्थान प्रदेश के जोधपुर नगर में हुआ था। सन् 1964 में उन्होंने सरदार पटेल मैडिकल कॉलेज, बीकानेर, राजस्थान से मैडिकल (M.B.B.S) में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। श्री चन्दोरा ने इंस्टीच्यूट ऑफ पोस्ट-ग्रेजुएट मैडिकल एज्यूकेशन एण्ड रिसर्च (PGI) चंडीगढ़ से मैडिसिन में स्नातकोत्तर (एम॰डी॰ मैडिसन) की उपाधि प्राप्त की। अपने शिक्षा-काल के दौरान लेखक ने बहुत-से साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक संगठनों में सक्रिय भाग लिया। डॉ॰ चन्दोरा ने सरदार पटेल मैडिकल कॉलेज, बीकानेर, राजस्थान में मैडिसिन का अध्यापन-कार्य किया और मैडिसन की निजी प्रेक्टिस भी की।

अमेरिका पहुँचने के पश्चात्, लेखक ने पूरे विश्व की विस्तृत रूप से यात्रा की। यूनान, मैक्सिको, नीदरलैण्ड्स, स्विट्जरलैण्ड, ब्रिटेन और संयुक्तराज्य अमेरिका में आयोजित विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सम्मेलनों में अपने शोध-पत्रों को प्रस्तुत किया। डॉ॰ चन्दोरा ने Medical College of Georgia, Augusta and Emory University School of Medicine, Atlanta, Georgia, USA में भी अध्यापन-कार्य किया। लेखक न्यायोचित और धार्मिक प्रयोजनों की सिद्धि में हमेशा अग्रगामी रहा है। सन् 1967 में डॉ॰ चन्दोरा ने अमेरिकन सांस्कृतिक एसोसिएशन को विश्वस्त किया कि ISKCON (इण्टरनैशनल सोसायटी ऑफ कृष्णा कॉनशियसनेस) कोई बेहूदा गिरोह/समुदाय याने cult नहीं

है, बल्कि हिन्दू धर्म का एक भाग है। सन् 1995 में उन्होंने रूसी राष्ट्रपति येल्त्सिन को वैष्णव भक्तों ISKCON सदस्यों पर रूस में हो रहे उत्पीड़न को बंद करने के लिए मनाया। सन् 1986 में, डॉ॰ चन्दोरा ने अपने मित्रों के सहयोग से एटलाण्टा, जार्जिया, अमेरिका में वैदिक मन्दिर की स्थापना की। सन् 1996 में डॉ॰ चन्दोरा (पण्डित शर्मा) ने एटलाण्टा, जार्जिया, संयुक्तराज्य अमेरिका में प्राचीन भारत पर प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 'इण्टरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन एनसिएंट इण्डिया' का सफल आयोजन किया। इस सम्मेलन का उद्घाटन ट्रिनिदाद एण्ड टोबैगो के प्रधानमंत्री श्री बासदेव पाण्डे ने किया था। इस सम्मेलन में ऐन्थ्रोपॉलोजी, पुरातत्त्वशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्म और अन्य सम्बंधित विषयों के तीन सौ से अधिक विश्व-प्रसिद्ध विद्वानों ने भाग लिया। इस सम्मेलन से सन् 1997 में 'दॅ वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ वैदिक स्टॅडीज (WAVES), वैदिक अध्ययन के वैश्विक संगठन' की स्थापना को प्रेरणा मिली। इससे अगस्त 1998 में लॉस एंजलस, केलिफोर्निया, संयुक्तराज्य अमेरिका में द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के सफल आयोजन का मार्ग प्रशस्त हुआ। दूसरे सम्मेलन का मुख्य विषय "New Perspective on Vedic and Ancient Indian Civilization" 'वैदिक और प्राचीन भारतीय सभ्यता पर नए विचार' था। तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन स्टीवेन्श इंस्टीट्यूट, न्यू जर्सी, 2000 में, तथा चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन डार्ट माउथ विश्वविद्यालय, मेसाचुसेट्स में 2002 जुलाई 12-14 को सम्पन्न हुआ। पंचम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन जुलाई 11 से जुलाई 13, 2004 में अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन डी॰सी॰ में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

पण्डित दीनबन्धु चन्दोरा विभिन्न धार्मिक संगठनों द्वारा भी हिन्दू धर्म पर व्याख्यान देने हेतु बुलाए जाते रहे हैं। जीवन के सभी क्षेत्रों का ध्यानाकर्षण करने तथा हिन्दू धर्म के दर्शन को

सरल और सुस्पष्ट रूप में प्रकट करने के लिए लेखक ने 'हिन्दू-शतकम्' की रचना की है।

इस रचना की पूर्णाहुति में श्री आदित्य चन्दोरा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री आदित्य चन्दोरा का जन्म बीकानेर, राजस्थान में मार्च 18, 1969 को हुआ था, तथा अगस्त 1974 में अमेरिका आए थे। अमेरिका में ही अपनी स्नातकोत्तर परीक्षा पास कर ओल्डिज फर्म में Wall Street Trader, ट्रेडर का कार्य आरम्भ किया। परन्तु ट्रेडिंग कार्य धोखाधड़ी से भरपूर होने के कारण उसे त्यागकर न्यूयार्क के फिल इंस्टीट्यूट में ट्रेनिंग कर अपनी स्वयं की चार फिल्में बनाईं।

श्री आदित्य चंदोरा डॉ॰ चन्दोरा के ज्येष्ठ पुत्र थे। वे अपनी पाँचवीं सिने फिल्म की ऐडिटिंग करने July 2002 में रमण नायडू स्टूडियो, हैदराबाद भारत गए। भारत में अपने पितामह से मिलने जोधपुर Sept. I[st], 2003 को जा पहुँचे। सितम्बर एक, ई.स. 2002 को जोधपुर में मोटर साइकिल दुर्घटना से बेहोश होने के कारण दिल्ली अपोलो अस्पताल में वायुयान एम्बुलेंस से ले-जाए गए। पर पाँच सितम्बर को उन्होंने अपनी आँखें, हृदय, यकृत, गुर्दे तथा अपनी जीवन-शक्ति को अन्य जनों को दान कर उनके परिवारों में जीवन की ज्योति जलाकर, अपना नश्वर चोला पीछे छोड़, इस संसार से तैंतीस वर्ष की अल्प आयु में विदाई ले ली।

यह पुस्तक उनकी अमिट यादगार है, ताकि इस पुस्तक को पढ़ सभी अपना जीवन सफल कर, समाज का एवं स्वयं का कल्याण कर सकें।

ओम प्रकाश अरोड़ा, एम॰डी॰,
एटलाण्टा, जार्जिया, यू॰एस॰ए॰